आगम मनीषी

श्री तिलोकचंद जैन द्वारा संपादित

जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर

भाग ० १

आचारा ग सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : आचारा ग सूत्र का परिचय क्या है ?

उत्तर– जैनागमों में प्रमुख शास्त्रों को अ ग शास्त्र कहा है । उनकी स ख्या– १२ कही गई है, जिसमें अभी ग्यारह शास्त्र हक्त । बारहवाँ अ गशास्त्र अभी उपलब्ध नहीं है । शास्त्र की भाषा में उसका विच्छेद हो गया है । इन अ ग शास्त्रों में आचारा ग सूत्र प्रथम अ ग शास्त्र है ।

प्रश्न–२ : इस सूत्र के कितने विभाग है, अध्ययन उद्देशे कितने हक्त?

उत्तर– इस सूत्र के दो विभाग हक्त, जिसे शास्त्र की भाषा में श्रुतस्क ध कहा गया है । इसमें ९+१६ = २५ अध्ययन कहे गये हक्त । उसमें से सातवाँ अध्ययन अभी नहीं है, विच्छेद हो गया है; अत: अभी ८+१६ =२४ अध्ययन हक्त । प्रथम श्रुतस्क ध के सभी अध्ययनों में उद्देशेहक्त। द्वितीय श्रुतस्क ध के १से ७ तक के अध्ययनों में उद्देशे हक्त। शेष में उद्देशे नहीं है । उद्देशों की स ख्या भिन्न-भिन्न है । वह स ख्या २ से लेकर ११ तक है । दोनों विभागों के कुल उद्देशक ४४+२५ = ६९ हक्त । सूत्र के बडे विभाग को श्रुतस्क ध कहा गया है । जिसमें अध्ययन और उद्देशे क्रमश: विभाग और प्रतिविभाग के नाम हक्त । किसी सूत्र में केवल अध्ययन ही होते हक्त । अध्ययनों के अ दर जहाँ प्रति विभाग होते हक्त उन्हें उद्देशक कहा जाता है।

किसी सूत्र में अध्ययन नहीं कहकर सीधे उद्देशे ही कहे गये हक्त। कहीं अध्ययन की जगह शतक, पद, वक्षस्कार, पाहुड, पडिवत्ति शब्द प्रयोग भी हुए हक्त। अत: ये सभी शब्द सूत्रों के अध्ययन, प्रतिअध्ययन के रूप में प्रयुक्त विभागवाची शब्द हक्त, ऐसा समझना चाहिए ।

प्रश्न–३ : आचारा ग सूत्र के रचनाकार कौन है ?

उत्तर– अ ग शास्त्रों की रचना गणधर प्रभु करते हक्त। अत: आचारा ग सूत्र गणधर रचित है । वर्तमान में उपलब्ध ग्यारह अ ग सूत्र सुधर्मास्वामी के बनाये हुए माने जाते हक्त कि तु प्रार भ में ये शास्त्र नाम रहित केवल गणधर रचित ही कहे जाते हक्त । द्वादशा गी सभी गणधर मिलकर बनाते हक्त ।

प्रश्न–४ : क्या सभी गणधर अपनी द्वादशा गी बनाते हक्त ?

उत्तर– ऐसा नहीं होता है । किसी भी शासन में धर्म शास्त्र अलग-अलग नहीं होते अर्थात् ऋषभदेव भगवान के ८४ गणधरों के ८४ आचारा ग सूत्र, ८४ सूयगडा ग सूत्र बने और महावीर भगवान के ११ गणधरों के ९ आचारा ग, ९ सूयगडा ग सूत्र बने, ऐसा कभी भी नहीं समझना चाहिए और किसी भी धर्म में ऐसा होता भी नहीं है । यह कल्पना परम्परा ठीक नहीं है । गणधर अलग-अलग विभागों में, गणों में, शिष्यों को विभाजित करके अध्ययन कराते हक्त वे उनके गण कहे जाते हक्त । गणों के नाम शास्त्र में बताये हक्त वे गणधरों के नाम से नहीं कि तु अन्य नाम से हक्त । जैसे गुजरात में स प्रदायों के नाम आचार्य या गुरु के नाम से न होकर गा वों के नाम से होते हक्त ।

सार यह है कि एक तीर्थंकर के शासन में एक ही आचारा ग सूत्र होता है अनेक नहीं । सभी गणधरों को गणधर लब्धि होती है, वे सभी की सम्मति से और सभी मिलकर एक ही द्वादशा गी बनाते हक्त । अत: प्राचीन काल में अ गशास्त्र गणधर रचित कहे जाते थे । वर्तमान में ये शास्त्र सुधर्मा स्वामी की रचना है, ऐसा कहा जाता है । वास्तव में मूल जैनागम बिना नाम से समुच्चय **गणधररचित** है । क्यों कि किसी एक गणधर की रचना नहीं है, सभी गणधरों की सम्मिलित रचना है और ये मूल शास्त्र सभी गणधरों के लिये आत्मागम भी इसलिए है कि सभी को यह ज्ञान स्वत: उत्पन्न होता है । किसी भी ट्रस्ट आदि के स विधान सभी प्रमुख मिलकर ही बनाते हक्त । श्रमण स घ के नियम विधान सभी प्रमुख स त मिलकर बनाते हक्त । वे स विधान अकेले आचार्य के नहीं कहे जाते । अत: द्वादशा गी सभी गणधरों की एक ही होती है और वह सभी गणधरों की कही जाती है ।

प्रश्न–५ : आचारा ग सूत्र पर व्याख्या किसने बनाई है ?

उत्तर– इस सूत्र पर अनेक व्याख्याएँ बनाई गई है । वर्तमान में प्रचलित प्राचीन व्याख्या शीला काचार्य की मिलती है । उसके आधार पर परा से फिर बाद के अनेक आचार्यों की अनेक भाषाओं में व्याख्याएँ मिलती है । शीला काचार्य के पहले भी इस सूत्र पर तीन व्याख्याएँ प्राकृत भाषा में बनाई गई थी । उन व्याख्याओं को निर्युक्ति, भाष्य तथा चूर्णि कहा गया है । इन तीनों प्राकृत व्याख्याओं को आधार रखते हुए शीला काचार्य ने स स्कृत में व्याख्या की है । ये सभी प्राकृत स स्कृत प्राचीन व्याख्याएँ आज प्रकाशित मिलती है ।

प्रश्न–६ : आचारा ग सूत्र में मुख्य किस विषय का निरूपण है ?

उत्तर– इस सूत्र के दो विभाग–श्रुतस्क ध हक्त । पहले विभाग में साधु के लिये प्रार भिक त्याग-वैराग्य का तथा आध्यात्मिक भावों के विकास का और द्रढ विचारों से तप स यम साधना में आगे से आगे बढने का तथा तत्स ब धी स स्कारो को पुष्ट करने वाला उपदेश है । दूसरे विभाग में साधु जीवन में उपयोगी प्रवृत्ति स ब धी आचार के नियम बताये गये हक्त । यथा– आहार, मकान, विहार, वस्त्र, पात्र, भाषा आदि आदि ।

इसके अतिरिक्त दोनों विभागों के अ त में भगवान महावीर स्वामी के जीवन का वर्णन भी है । पहले श्रुतस्क ध के नवमें अध्ययन में भगवान महावीर की स यम साधना काल के घटितों का वर्णन है । दूसरे श्रुतस्क ध के प द्रहवें अध्ययन में भगवान महावीर का जन्म वर्णन, परिवार वर्णन तथा दीक्षा विधि वर्णन है ।

प्रश्न–७ : प्रथम श्रुतस्क ध के अध्ययनों के नाम क्या है ?

उत्तर– अध्ययनों के नाम और अर्थ इस प्रकार है–

क्रम	नाम	स क्षिप्त अर्थ
१	**शस्त्र परिज्ञा**	**छः काय के जीवों का, उनकी हिंसा और दया का विवेक ज्ञान ।**
२	**लोक विजय**	**स सार स्वरूप और उससे विरक्ति ।**
३	**शीतोष्णीय**	**अनुकूल प्रतिकूल परिस्थिति, कष्ट में समभाव**
४	**सम्यकत्व**	**श्रद्धा एव अटल आस्था की प्रमुखता के वर्णन**
५	लोक सार	आर भ-परिग्रह स सार है, उससे मुक्त स यम है
६	धूत	कर्म धूनने में, क्षय करने में पराक्रम का उपदेश
७	महा परिज्ञा	यह अध्ययन नहीं है ।अनुपलब्ध है ।
८	विमोक्ष	शरीर से और स सार से मुक्त होने की साधना, स थारा ।
९	उपधान	भगवान महावीर की तपोमय जीवन साधना

प्रथम श्रुतस्क ध

प्रथम अध्ययन : शस्त्रपरिज्ञा

प्रश्न–१ : प्रथम अध्ययन में कितने उद्देशक है और उनमें मुख्य क्या वर्णन है ?

उत्तर– प्रथम अध्ययन के सात उद्देशक हक्त ।पहले उद्देशक में समुच्चय जीव स्वरूप, क्रिया और कर्म स्वरूप आदि बताकर फिर शेष ६ उद्देशक में छ:काय की मुख्यता से विषय वर्णन है ।

प्रश्न–२ : लोक में दिशाएँ कितनी है ?

उत्तर– दिशा शब्द से दिशाएँ और विदिशाएँ दोनों विवक्षित की जाने पर आगम में उत्कृष्ट १० दिशाएँ कही गई है । अन्य अपेक्षा से कहीं ४, कहीं ६ और कहीं ८ दिशाएँ भी कही जाती है । वहीं व्याख्याकार १८ दिशाएँ भी अपेक्षा से गिना देते हक्त और १८ द्रव्य दिशा और १८ भाव दिशा यों मिलान भी कर देते हक्त ।

१८ द्रव्य दिशा– चार दिशा+चार विदिशा=८, इन आठ के कल्पित आ तरे(बीच के क्षेत्र) यों ८+८=१६+ऊँची दिशा+नीची दिशा=१८ द्रव्य दिशा । **१८ भाव दिशा–** ४स्थावर+४वनस्पति(अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज, स्क धबीज)+४ शेष तिर्यंच त्रस(बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, प चेन्द्रिय)+चार मनुष्य(कर्मभूमि, अकर्मभूमि, अन्तर्द्वीप, स मूर्च्छिम)+१देव +१नरक, इस प्रकार ४+४+४+४+१+१=१८ । वास्तव में यह एक प्रकार की कल्पना व्याख्या और स ख्या मिलान की तुकब दी मात्र है । जिसे अपेक्षा मात्र से स्वीकार किया जा सकता है, एका तिक ध्रुव सिद्धा त रूप में नहीं । सिद्धा त से तो उत्कृष्ट १० दिशाएँ है और जीव के भेद ४ गति, १४ भेद, २४ द डक आदि स ख्याएँ सैद्धा तिक है ।

प्रश्न–३ : इस स सार में जीवों की मुख्य अज्ञान दशा क्या और क्यों है, ज्ञान दशा कैसे हो सकती है ?

उत्तर– कई प्राणियों को, आत्माओं को कुछ भी भान, ज्ञान नहीं होता है कि मक्त कौन हूँ ? मक्त जीव हूँ ? मेरा क्या स्वभाव है ? मक्त जन्म मरण कर रहा हूँ ? मक्त पहले किस रूप में था ? आगे किस योनि में कहाँ जाऊँगा ? मेरा शुद्ध स्वरूप क्या है ? मेरी स्वाभाविक अवस्था सिद्ध स्वरूप, निर जन, निराकार, स्थिर, अनाहार, अपरिवर्तन, अभ्रमण और ज्ञानमय है ।

यह जन्म मरण, भ्रमण, आकार-विकार आदि वैभाविक, विकृतिक, कर्म-जन्य अवस्थाएँ है ।यह सब ज्ञान अनेक, अन त आत्माओं को नहीं होता है । वे बेभान अवस्था में या स सारावस्था में, आत्मलक्षी ज्ञान से रहित, जन्म मरण और जीवन व्यतीत करने में लगे रहते हक्त । मक्त और मेरा स्वरूप, इस विषय में जानने सोचने का उन्हें भान ही नहीं होता है, अवसर नहीं मिलता है, स योग भी नहीं मिलता है, इसे अज्ञानदशा कहते हक्त ।

कुछेक आत्माओं को उपरोक्त बातों का भान, ज्ञान होता है । उन्हें वह ज्ञान खुद के क्षयोपशम से स्वत: भी हो जाता है और दूसरों के बताने, समझाने से भी हो जाता है अर्थात् ज्ञानी से स्वय प्रत्यक्ष सुनने से या प्रत्यक्ष सुनने वाले के द्वारा पर परा से सुनकर भी हो जाता है । जिससे आत्मदशा का, स सार भ्रमण और कर्म स ब ध का, आत्म स्वभाव का ज्ञान कई आत्माओं को हो जाता है और विशेष में त्रिकाल-ज्ञानी से अन तर या पर परा से सुनकर यह भी ज्ञान हो जाता है कि मक्त पूर्व भव में कहाँ कहाँ, क्या क्या बनकर आया हूँ, भविष्य में यहाँ से मरने के बाद कहाँ जाऊँगा । कभी किसी को जातिस्मरण ज्ञान से भी खुद की पूर्व भव स ब धी अवस्थाओं का ज्ञान हो जाता है ।

प्रश्न–४ : आत्मा के भव भ्रमण का मूल कारण क्या है ?

उत्तर– आत्मा कर्मों के कारण से भव भ्रमण, स सार भ्रमण करती है और उन कर्मों की उत्पादक अर्थात् कर्मों को उत्पन्न कराने वाली जीव की क्रियाएँ है । वे क्रियाएँ यहाँ सूत्र में तीन शब्दों में स क्षिप्त करके २७ कही गई है । जिसमें आधार तीन करण, तीन योग और तीनों काल को बनाया गया है । तीनों कालों के मिलने से ही जीव का समस्त स सार भ्रमण चक्र चलता, बनता है । सूत्र में इन करण, योग और काल तीनों के स योग से २७ भ ग विवक्षित करके पहला, चौदहवाँ और सत्तावीसवाँ ये तीन भ ग मूल पाठ में कहे गये हक्त–

(१) अकरिस्स चाह (२) कारवेसु चाह (३) करओ यावि समणुण्णे भविस्सामि । यहाँ शब्दों में स्पष्ट रूप से करण तीन और काल तीन प्रतिफलित होते हक्त कि तु तीन करण और तीन योग ये अन्य शास्त्र में क्रिया के प्रकार रूप से प्रसिद्ध है । साधु और श्रावक के पापक्रिया के प्रत्याख्यान में भी तीन करण के साथ तीन योग होते

ही हक्त । अत: यहाँ योगों को भी अ तर्भावित समझना उपयुक्त ही है । इस प्रकार तीन शब्दों से २७ क्रियाएँ समस्त कर्मस ग्रह में कारण कही गई है और कर्म से ही स सार भ्रमण चक्र चलता है ।

प्रश्न–५ : इस उपरोक्त वर्णन के आधार से ज्ञानी आत्मा वास्तव में कौन है ?

उत्तर– उपरोक्त वर्णन से जिसने (१) आत्मा के अस्तित्व को समझ लिया है, स्वीकार लिया है, (२) आत्मा के स सार भ्रमण को जान लिया है, मान लिया है और (३) आत्मा कर्मों के अनुसार स सार भ्रमण करती है, (४) क्रियाओं से कर्मों की उत्पत्ति होती है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि १. आत्मा २. लोक ३. कर्म और ४. क्रियाएँ इन चारों को जिसने जान लिया है, मान लिया है अर्थात् इनका जो स्वरूप सर्वज्ञों ने जाना स्वीकारा है उसे जो समझता, स्वीकारता है, वह यहाँ ज्ञानी, प्रबुद्ध आत्मा कहा गया है ।

प्रश्न–६ : ऐसी आत्माएँ क्या एका त ज्ञानी है ?

उत्तर– अपेक्षा से अर्थात् ज्ञान और समझ की अपेक्षा से वे ज्ञानी है कि तु यदि ऐसा ज्ञान समझ हो जाने के बाद भी अर्थात् उक्त आत्म स्वरूप भान हो जाने पर भी, जो उदय भाव में बहते जाते हक्त, जन्म-मरण और कर्म दुख पर परा भोगते रहते हक्त, बढाते रहते हक्त, तो अप्रत्याख्यान की अपेक्षा, अविरति के कारण उनका जानना भी अपेक्षा से अनजाने के समान हो जाता है । अत: ऐसी आत्माएँ भी दूसरी अपेक्षा से– अविरति की अपेक्षा से सही ज्ञानी की गिनती में नहीं गिनी गई है । अत: अपेक्षा से उन्हें भी अपरिज्ञातकर्मा कहा गया है । ऐसे जीव स सार भ्रमण बढाते ही रहते हक्त, क्रियाओं और कर्मों को जानकर उससे अलग नहीं होते हक्त । यह दूसरे प्रकार की अपेक्षित अज्ञानता स्वीकार की गई है अर्थात् ऐसे प्राणी अपेक्षा से सच्चे ज्ञानी नहीं है । यथा– जिन्होंने सर्प, कुत्ते आदि के स्वभाव को जान लिया है, फिर भी कुतूहल आदि के कारण जो उनसे दूर नहीं होकर उनकी छेड-छाड करते हक्त और फिर उन्हीं से दु:खी होते हक्त, तो वे उस विषय में अपेक्षा से अज्ञानी ही कहे जाते हक्त अर्थात् उनका जानना अनजाने के बराबर हो जाता है । इस प्रकार अपेक्षा से ये ज्ञानी और अपेक्षा से अज्ञानी आत्माएँ समझनी चाहिये ।

प्रश्न–७ : उक्त एक प्रकार की ज्ञानी आत्माएँ तथा अन्य अज्ञानी आत्माएँ स सार में पाप क्रियाएँ क्यों करती है ?

उत्तर– इन उक्त एक प्रकार की ज्ञानी आत्माओं को और स सार की अन्य स पूर्ण अज्ञानी आत्माओं को पाप कार्यों के करने में मुख्य कारण इस प्रकार है– (१) ये आत्माएँ अपने प्राप्त जीवन और शरीर के निर्वाह के लिये विविध पाप क्रियाओं को स्वीकार करती है । (२) कई आत्माएँ मान स ज्ञा में प्रवाहित होकर अपनी यश-कीर्ति, मान-सम्मान, पूजा प्रतिष्ठा के लिये पाप क्रियाओं का स्वीकार करती है । (३) कई आत्माएँ मतिभ्रम से, कुस गति से अर्थात् कुधर्म प्रचारकों की स गति से या देखा देखी धर्म के नाम से, भगवान के नाम से और अ त में मोक्ष प्राप्ति का झूठा मार्ग अपनाकर धर्म के लिये, स सार मुक्ति के लिये, विविध पाप क्रियाओं का स्वीकार करती है । यथा– धर्म के नाम से जीवों की बलि चढाना; होम, हवन, द्रव्यपूजा, फूल, पानी, अग्नि आदि की प्रवृत्ति; नाचना, कूदना, ढोल, ताल आदि वाजि त्र बजाना वगैरह पाप क्रियाएँ लोग धर्म की दृष्टि से भी करते रहते हत्त । (४) अपने ऊपर आई हुई आपत्ति, रोग, आत क, उपद्रव आदि को दूर करने के लिये या किसी भी प्रकार से अपने बचाव, सुरक्षा, स्वार्थ के लिये पाप क्रियाओं का ज्ञानी और अज्ञानी प्राणी स्वीकार करते रहते हत्त। पाप क्रियाओं के कारण बताने में शास्त्रकार ने इन चार मुख्य कारणों को चार निम्न शब्दों में कहा है– **(१) इमस्स चेव जीवियस्स (२) परिव दण-माणण-पूयणाए (३) जाईमरण मोयणाए (४) दुक्खपडिग्घाय हेउ ।**

प्रश्न–८ : अ त में श्रेष्ठ ज्ञानी, सच्चा ज्ञानी किसको कहा है ?

उत्तर– प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में यह बताया गया है कि लोक में, स सार में ये समस्त कर्म की जनक क्रियाएँ और क्रियाओं के करने के हेतु-कारण जो बताये गये हत्त उन्हें जानकर, समझकर, स्वीकार कर जो उन क्रियाओं का त्याग कर देता है, क्रिया के हेतुओं से भी ऊपर उठ जाता है अर्थात् शक्य समस्त क्रियाओं, आश्रवों का त्याग करने वाला ही सच्चा और श्रेष्ठ या वास्तविक ज्ञानी है । यह शुद्ध और उच्च अपेक्षा से अ तिम कथन किया गया है । वह अ तिम उद्देशक वाक्य इस प्रकार है– **जस्सेते लोग सि कम्म समार भा परिण्णाया भव ति, से हु मुणी परिण्णाय कम्मे त्ति बेमि ।**

इस प्रकार मुनिजीवन स्वीकार कर पाप क्रियाओं और कारणों का शक्य त्याग करनेवाला स सार त्यागी मुनि और जिनाज्ञा में विचरण करने वाला श्रमण ही सच्चा ज्ञानी कहा गया है ।

प्रश्न–९ : क्या घर छोडकर अणगार बन जाने वाले सभी सच्चे ज्ञानी ही हत्त ?

उत्तर– अणगार बन जाने वालों में भी दो प्रकार जानने चाहिये– (१) स यम का पूर्ण पालन करने वाले स यमवान, पाप से दूर रहने वाले, पाप से लज्जा-परहेज रखने वाले सच्चे साधु, इनको अलग जानो, (२) कुछ आत्माएँ 'हम अणगार हत्त' ऐसा मानते, समझते, बताते हत्त अर्थात् अपने अणगार होने का प्रवाद करते हत्त और अपने को साधु-अणगार मानते, कहते हुए भी अनेक प्रकार से छः काया के जीवों की विराधना वाली प्रवृत्ति करने में लग जाते हत्त, पूर्वोक्त चार में से किसी भी कारण के वशीभूत होकर पृथ्वी, पानी आदि जीवों की हिंसा करने, कराने अनुमोदन या प्रेरणा में लग जाते हत्त, उन्हें अलग जानो । किसी भी हेतु से की जाने वाली पाप क्रियाएँ एव प्रेरणा प्रवृत्तियाँ उस व्यक्ति के अहित के लिये ही होती है या तो फिर अबोधि अर्थात् पुनः तीव्र अज्ञान में डुबाने वाली होती है । इस प्रकार अणगार बन जाने वाली आत्माएँ भी दो प्रकार की जाननी चाहिये । इसके लिये आगम का वाक्या श इस प्रकार है– **लज्जमाणा पुढो पास, 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा, जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहिं.... ।**

प्रश्न–१० : इस प्रकार के कथन मात्र के साधुओं का अर्थात् नाम मात्र के साधुओं की साधना का परिणाम क्या है ?

उत्तर– वैसे साधु अपने कर्म ग्र थी या कर्म जाल से छूटने के लिये तत्पर होकर पुनः आश्रवों के सेवन से कर्म ग्र थी को, कर्म जाल को बढाने वाले हो जाते हत्त, मोह त्याग करके भी पुनः विविध मोह वाले बन जाते हत्त और मोहित हो जाने से जन्म-मरण, स सार भ्रमण करने वाले हो जाते हत्त और स सार भ्रमण करते हुए फिर नरकादि अशुभ गतियों को प्राप्त करते हत्त । इस प्रकार कथन मात्र के उन साधुओं का वह पाप क्रिया वाला आचरण ग्र थ, मोह, मार और नरक का हेतुभूत होता है ।

प्रश्न–११ : वे साधु होकर ऐसे क्यों हो जाते है ?

उत्तर– वे किसी भी प्रकार के ऐहिक = वर्तमान के लक्ष्य में या शरीर

के लक्ष्य में तल्लीन हो जाते है । यों किसी भी इहलौकिक लक्ष्य को प्रमुख कर, स यम लक्ष्य को गौण कर या भुलाकर, अपने इच्छित एव स यम विपरीत अस यम प्रवृत्तियों में धीरे धीरे आसक्त, गृद्ध बन जाते हक्त अर्थात् पारलौकिक, आध्यात्मिक लक्ष्य से हटकर परलक्षी, वर्तमान लक्षी विचारों में उनकी रुचि अधिक हो जाने से ऐसा करते हक्त । इस भाव के लिए और प्रश्न १७ के भावों के लिये आगम शब्द इस प्रकार हैक्त– **एस खलु ग थे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए, इच्चत्थ गढिए लोए, जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहिं...**

प्रश्न–१२ : एकेन्द्रिय स्थावर जीवों की वेदना कैसी होती है ?

उत्तर– स्थावर जीवों की वेदना अव्यक्त होती है अर्थात् अपनी वेदना को वे जीव व्यक्त नहीं कर सकते और अन्य अल्पज्ञानी व्यक्त रूप से उनके दुख को जान नहीं सकते । कि तु विशिष्ट ज्ञानी अपने ज्ञान से जान सकते हक्त और हमें दृष्टा त द्वारा समझा सकते हक्त, बता सकते हक्त । एकेन्द्रियों की इस अव्यक्त वेदना को शास्त्र में दृष्टा त द्वारा इस प्रकार समझाया है– (१) किसी अ धे, बहरे, गूँगे, अप ग अर्थात् हाथ-पाँव रहित अशक्त व्यक्ति को कोई जोर जोर से प्रहार करे और वह हीना ग अ ध व्यक्ति अपने दुःख को किसी प्रकार प्रकट न कर सके, फिर भी उस व्यक्ति को असह्य वेदना होना हमारा अन्तर्मन स्वीकार करता है । ठीक उसी प्रकार सभी अ गोपा गों के अभाव में मात्र शरीर वाले एकेन्द्रिय प्राणियों को भी वेदना होती है । (२) जिस तरह शुद्ध चेतना, व्यक्त चेतना वाले प्राणी या मानव के पाँव की अ गुली से लेकर मस्तक तक के किसी भी शरीर विभाग का कोई छेदन भेदन करे तो उसकी वेदना स्पष्ट दिखती है । वैसे ही पृथ्वी, वृक्ष आदि के छेदन भेदन से उन जीवों को भी वेदना होती है । (३) जैसे कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को तलवार से भले एक ही वार में प्राण रहित कर देता है, इतना शीघ्र मरते हुए भी उस मानव को शरीर की अपार वेदना में मरना पडता है, वह हमें समझ में आ सकता है । वैसे ही शीघ्र मर जाने वाले इन स्थावर प्राणियों को भी मरने की अपार वेदना होती है, क्यों कि वेदना का अनुभव करने वाले चेतन का अस्तित्व उसमें भी है । (४) कोई व्यक्ति किसी को इतना मारे कि वह व्यक्ति बेहोश, मूर्च्छित होकर गिर पडे अथवा कोई बालक बहुत उँचे स्थल से गिरते ही

मूर्च्छित हो जाय, रोने की आवाज भी नहीं करे तो उसे अपार वेदना में होना हम स्वीकार करते हक्त । वैसे ही स्थावर प्राणियों को कष्ट वेदना होती है, उसे ज्ञानियों के वचन से और इन दृष्टा तों से समझकर स्वीकार करनी चाहिए ।

इस प्रकार के दृष्टा त सूचक शब्द दूसरे उद्देशक में दिये गये हक्त। भगवती सूत्र शतक–१९ उद्देशक–३, में स्पर्श मात्र से इन एकेन्द्रिय जीवों को घोर वेदना होती है, यह बताया गया है ।

प्रश्न–१३ : साधु को कैसा होना, कैसा रहना, कैसा बन जाना चाहिये ?

उत्तर– जिसने घर छोड दिया है; सब कुछ स सार का त्याग कर दिया है; उसे सरल, साफ हृदयवाला, सरलता से परिपूर्ण बनकर, सदा मोक्ष के लक्ष्य से स सार मुक्त बनने के उद्देश्य में प्रयत्नशील रहना चाहिये । अन्य कोई भी किसी प्रकार की माया, कपट, प्रप च, चालबाजी, स्वार्थ-वश या द्वेष-ईर्ष्यावश कुछ भी छल प्रप च नहीं करना चाहिये । पवित्र, परम पवित्र हृदयी बनकर मोक्ष साधना में लगे रहना चाहिये । किसी प्राणी, मानव या साधक आत्माओं के प्रति कि चित् भी कलुष भाव, ड ख भाव न रखते हुए, सहज सरल भावों में लीन रहना चाहिये । ऐसी सहजता, सरलता, निष्कपटता, पवित्रता से साधनालक्षी आत्मा को अणगार कहा गया है, कहा जाता है ।

घर छोडकर अणगार बने साधक ने जिस भावना, श्रद्धा, उत्साह और लक्ष्य से घर का त्याग किया है, उसी को कायम रखते हुए, स्थिर रखते हुए, उसे जीवन पर्यंत स यम का पालन करना चाहिये । श्रद्धा, उत्साह एव लक्ष्य में किसी भी प्रकार का विघटनकारी विचार, पहलू, स कट, आपत्ति या बाधा उपस्थित हो जाय तो उसका समाधान स्वय ज्ञान और विवेक युक्त सही चि तन से कर लेना चाहिये या गुरु आदि के सहवास, स गति, स स्कार से उन वैचारिक या परिस्थितिजन्य बाधाओं को समाप्त कर देना चाहिये । उन्हें विचारों से निकाल देना चाहिये और लक्ष्य उत्साह श्रद्धा में पूर्ववत् स्थिर रहना चाहिये । यहाँ शास्त्र में श्रद्धा का शाब्दिक अर्थ, तत्त्व श्रद्धान या आस्था के लक्ष्य को प्रमुख करके बताया गया है कि एकेन्द्रिय जीवों के अस्तित्व की जो श्रद्धा–आस्था स यम ग्रहण के समय में हो उसमें स यम ग्रहण के पश्चात् कभी भी तर्कों में पड कर या मिथ्यात्व मोह के उदय से

अभिभूत होकर इन जीवों के अस्तित्व का, दुःखों का, इनकी विराधनाओं का और इनसे स ब धित स यम विधियों का अपलाप नहीं करना चाहिये तथा उनका वचन या मन से कभी भी अस्वीकार नहीं करना चाहिये । अत्य त विवेक और सावधानी से इन जीवों के प्रति मिली या बनी आस्था को स्थिर रखते हुए, इनसे स ब धित होने वाली विराधनाओं से पूर्णतया दूर रहना चाहिये तथा उससे स ब धित स यम विधियों में दत्तचित्त रहना चाहिये । यहाँ श्रद्धा और अपलाप शब्दों का तात्पर्य यह है कि कभी भी ऐसे वाक्यों से जीवों के या जीव विराधना के या स यम नियमों के निषेध या अवहेलना में नहीं उतर जाना चाहिये । **यथा**–"खान से निकल गया, अब उस पत्थर में या मिट्टी में क्या कैसा जीव है ? नल के पानी में क्या जीव है । अग्नि में तो कोइ जीव रह ही नहीं सकता तो वह कैसे जीव है, हवा तो चलती रहती है, बल्ब में, टयूब में कहाँ से जीव घुसता है, बिजली का साधन तो भगवान के समय था ही नहीं, पानी तो पीने के लिये ही होता है, आकाश से गिरता तभी अचित हो जाता है फिर मुर्दे भी कभी जि दे होते नहीं, तो पानी सचित क्यों होता, कैसे हो जाता ?" इत्यादि ऊपरोक्त ये सारे अश्रद्धा युक्त तार्किक वचन भगवद् कथित जीवों के अस्तित्व का तथा स्वरूप का अपलाप करने वाले हक्त । ऐसे विचार और कथन नहीं करके श्रद्धा को यथावत् स्थिर रखना चाहिये ।

तर्कों से जीवों के अस्तित्व का निषेध करनेवाला व्यक्ति कभी अपने अस्तित्व का भी निषेध करके नास्तिक बन सकता है । उक्त भावों वाले तीसरे उद्देशक के आगम शब्द ये हक्त– **"से जहावि अणगारे उज्जुकडे णियाग पडिवण्णे अमाय कुव्वमाणे, वियाहिए ।" "जाए सद्धाए णिक्ख तो तमेव अणुपालिया,** विजहित्तु विसोत्तिय ।"

यहाँ प्रथम वाक्य में **'अणगारे'** के साथ **वियाहिए** क्रिया को स ब धित करके अर्थ करने से अर्थात् ठीक से शब्दों का अन्वय करके अर्थ करने से सही भावार्थ निकल आता है कि– जो सरलता से भावित होकर अर्थात् सरलता से ओतप्रोत होकर, छल कपट प्रप चों के सेवन से पूर्ण मुक्त होकर, मोक्ष साधना में लगा रहता है, वह सच्चा अणगार कहा गया है ।

दूसरे वाक्य में 'विसोत्तिय ' शब्द है जिसका अर्थ है– श्रद्धा उत्साह

और लक्ष्य में बाधक विचार, रूकावट करने वाले तत्त्व, लक्ष्य में विघटन करने वाले पहलू या परिस्थितियाँ । इसके साथ **'विजहित्तु'** क्रिया पद से इन बाधक तत्त्वों को छोडने का, निकालने का, दूर करने का उपदेश, निर्देश किया गया है ।

प्रश्न–१४ : पानी जीव है या पानी में जीव होते हक्त?

उत्तर– पानी में जो हलते-चलते जीव होते हक्त, उन्हें तो स सार के लोग तथा अन्य धर्मी भी स्वीकारते हक्त कि तु पानी स्वय अप्काय जीवों के अस्तित्व वाला है, यह इस जिन शासन में विशेष रूप से बताया गया है । जिसका अणगारों को विशेष लक्ष्य रखना होता है । अतः भगवान ने अणगारों को पानी के जीवों का होना अलग से विशेष रूप से बताया है । इस भाव को कहने वाले शब्द वाक्य ये हक्त– **"स ति पाणा उदय णिस्सिया जीवा अणेगे, इह च खलु भो ! अणगाराण उदय जीवा वियाहिया ।"**

यहाँ 'णिस्सिया' शब्द का अर्थ है पानी के आश्रय में और 'इह च खलु' का अर्थ है इस जिन शासन में ही ।

प्रश्न–१५ : इन जीवों की विराधना या उपयोग से हिंसा का पाप ही लगता है या अन्य भी ?

उत्तर– हिंसा के सिवाय अदत्त का पाप भी लगता है । इन जीवों की इच्छा या आज्ञा बिना इनके शरीर को अपने उपयोग के लिये ग्रहण करने में अदत्त का पाप लगता है और ग्रहण नहीं करके केवल विराधना ही की जाती हो वहाँ मात्र हिंसा का पाप लगता है । यथा– पानी पृथ्वी वनस्पति आदि को ग्रहण करके खाने पीने के उपयोग में लेने में दो पाप(हिंसा और अदत्त) लगते हक्त । पृथ्वी, पानी, वनस्पति को पैरो से कुचलते हुए चलने में एक हिंसा का पाप लगता है । अदत्त के पाप की भजना–विकल्प को कहने वाला आगम वाक्य है– **'अदुवा अदिण्णादाण ' ।**

प्रश्न–१६ : पानी, वनस्पति आदि का उपयोग तो अणगार भी करते हक्त तो उन्हें भी अदत्त का पाप लगता है ?

उत्तर– पानी, वनस्पति आदि को अनेक प्रकार के शस्त्रों से अचित्त करने की प्रवृत्ति लोग इस स सार में करते रहते हक्त । उन प्रवृत्तियों से अनेक प्रकार के अचित्त पानी आदि बनते रहते हक्त । उनका ज्ञान

करना चाहिये, उनको समझना चाहिये, स सारी लोगों की उन विविध प्रवृत्तियों को विचार पूर्वक जानना, देखना, समझना, अनुभव करना चाहिये कि जिनसे पानी, वनस्पति आदि अचित्त-शस्त्र परिणत हो जाते हक्त, उन्हें समझ कर अचित्त ग्रहण करने वाले अणगार को अदत्त नहीं लगता है । वह जीव युक्त को ग्रहण नहीं करता है । जीव मुक्त और दूसरों के द्वारा दिये हुए अचित्त पानी आदि को ग्रहण करने वाला होता है । यदि वह साधु भी कोई सचित पदार्थ लेकर खावे, उपयोग करे तो वह भी अदत्त पाप से लिप्त होता है । इन भावों का आगम वाक्य यह है- **सत्थ चेत्थ अणुवीई पास, पुढो सत्थ पवेइय । अदुवा अदिण्णादाण ।**

प्रश्न-१७ : किसी धर्मशास्त्र में जिस कार्य की अथवा पानी पीने और स्नान करने की या क दमूल खाने की आज्ञा दी हो, तो उस शास्त्र आज्ञा से उस पानी आदि के जीवों का उपयोग करने वाले को हिंसा या अदत्त का पाप नहीं लगता है ?

उत्तर- किसी के कथन या लेखन से कोई पाप अपाप नहीं हो जाता है । ऐसी गलत समझ, कथन और स कल्प से कर्तव्य-कृत, अकृत नहीं हो सकता । उनकी वह करणता, अकरणता नहीं बन सकती; उस पाप को करते हुए भी वह पाप नहीं करने वाला नहीं बन सकता, किसी के मान लेने से या कह देने से पाप क्रिया करते हुए भी कोई उसके पाप से बच नहीं सकता, जो ऐसा हो जाय तो बडे बडे पाप भी अपाप हो जायेंगे । वास्तव में ऐसा मानना अयथार्थ है ।

प्रश्न-१८ : दो प्रकार की हिंसा कौन सी कही गई है ?

उत्तर- एक प्रमाद मूलक और दूसरी विषयार्थ मूलक । स सार में प्राणी अपने इन्द्रिय विषयों की पूर्ति के लिये और लापरवाही से जीव हिंसा करते हक्त अथवा तो इन दोनों को अर्थ द ड और अनर्थ द ड भी कहा जा सकता है । चौथे उद्देशक का वह वाक्य इस प्रकार है- **जे पमत्ते, गुणट्ठिए से हु द डे त्ति पवुच्चइ ।** अर्थात् जो प्रमादी और विषयार्थी है वह हिंसा की प्रवृत्ति करता है ।

प्रश्न-१९ : 'दीर्घलोक शस्त्र' का क्या मतलब है ?

उत्तर- चौथे उद्देशक में अग्निकाय को दीर्घलोक शस्त्र कहा है । स सार में सबसे ज्यादा वनस्पति जीव है, उसे दीर्घलोक कहा गया

है और उसको नष्ट करनेवाला शस्त्र है अग्नि अर्थात् वनस्पति को जलाने वाली, नष्ट करने वाली अग्नि है इसलिये अग्नि का यह **'दीर्घलोक शस्त्र'** पर्यायवाची शब्द प्रयोग है ।

प्रश्न-२० : अग्नि के जीवों के साथ अन्य किन जीवों की विराधना स भव होती है ?

उत्तर- अग्नि जहाँ जलाई जाती है, वहाँ उस पृथ्वी के आश्रित जीव, तृण, पत्ते, काष्ट, छाण, कचरा आदि जलने वाले पदार्थों के आश्रय में रहे हुए जीवों की विराधना हो सकती है तथा ऊपर से, आकाश में उडने वाले जीव अग्नि में गिरकर भी मर सकते हक्त ।

प्रश्न-२१ : इन्द्रिय विषयों का परिणाम क्या बताया गया है ?

उत्तर- यहाँ पाँचवें उद्देशे में इन्द्रिय विषयों को स सार चक्र कहा गया है और दूसरे अध्ययन के प्रार भ में इन इन्द्रिय विषयों को स सार का मूल कहा गया है । इन दोनों जगह वाक्य का पुनरावर्तन करके कहा गया है अर्थात् जोर दिया गया है कि जो कुछ भी स सार चक्र है, भ्रमण है, वह इन्द्रिय विषय ही है, जो कुछ स सार का मूल है, वह इन्द्रिय विषय ही है । तात्पर्य यह है कि स सार में जिधर देखो उधर रूप या शब्द आदि का स योग भरा पडा है । जिधर देखो उधर प्राणी रूपों या शब्दों में आसक्त हो रहे हक्त, उनके पीछे पडे रहते हक्त, इन्द्रिय सुखों के प्राप्त करने की इच्छा के मूल कारण से ही रात-दिन स सार में लगे रहते हक्त । अत: यह इन्द्रिय विषय ही स सार है ।

इन इन्द्रिय विषयों से गुप्त नहीं रहने वाला, इनसे सावधान नहीं रहने वाला अर्थात् इन इन्द्रियों के विषयों की तरफ लालायित हो जाने वाला साधक जिनाज्ञा के बाहर अर्थात् विपरीत आचरण भी करने लग जायेगा और बार बार इन्द्रिय सुखों का आस्वाद या उपभोग करता हुआ वह अस यम क्रियाओं का एक एक करके आचरण करता ही जायेगा; फिर बहुत प्रमादी बन कर वह इन्द्रिय विषयों की आसक्ति के पीछे पागल या परवश होकर एक दिन स यम भी छोड देगा और गृहवास में चला जायेगा । यह है इन्द्रिय विषयों का परिणाम, भय करता, कि वह स सारी जीवों को तो स सार में भ्रमण करावे ही कि तु स यमी साधक भी यदि सावधानी चूक जाय तो ये शब्द, रूप, रस आदि इन्द्रियों के विषय, सुखभोग की इच्छाओं को तीव्र, तीव्रतम और दीर्घ बनाकर,

उसे भी स यम से पतित कर देते हक्त । इन विषयों को दर्शाने वाले कुछ आगम वाक्य इस प्रकार है– **जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे । एस लोए वियाहिए । एत्थ अगुत्ते अणाणाए, पुणो पुणो गुणासाए, व क समायारे, पमत्ते, गारमावसे ।** यहाँ पर 'व क' का अर्थ अस यम है और 'गार' का अर्थ है गृहस्थ जीवन । 'गुण' का अर्थ है पाँच इन्द्रिय विषय और 'गुणासाए' का अर्थ है गुणों का आस्वाद=उपभोग= सुखभोग=विषय सेवन । किसी भी चीज का बार बार सेवन होने से प्राय: उसकी आसक्ति बढती जाती है । क्यों कि प्रेम, मोह और आसक्ति का, बार बार के सेवन या स योग से बढना स्वाभाविक है ।

अत: गृहत्यागी अणगारों को जीवन निर्वाह के आवश्यक कर्तव्यों के अतिरिक्त इन इन्द्रियों के या इच्छाओं के पीछे नहीं पडना चाहिये । इन पर अ कुश रखना चाहिये और जिनाज्ञा के अनुसार प्रयत्नपूर्वक जीवन जीना चाहिये; तभी उसका स यम या रत्नत्रय सुरक्षित रह सकता है ।

पश्न–२२ : वनस्पति और मानव शरीर में किन-किन लक्षणों की समानता देखने समझने में आती है ?

उत्तर– पृथ्वी आदि चार स्थावर जीवों की अपेक्षा वनस्पति जीवों की चेतना कुछ विशेष विकसित दिखाई देती है । चार स्थावर जीवों के शरीर की अवगाहना नियमत: अ गुल के अस ख्यातवें भाग ही होती है, अधिक नहीं होती । जब कि वनस्पति की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन साधिक हो सकती है । पाँचवें उद्देशक में बताई गई तुलना इस प्रकार है– (१) मनुष्य के जन्म के समान वनस्पति भी उगती हुई तथा अ कुरित होती हुई देखी जाती है । (२) मनुष्य छोटे से बडा होता है, वैसे यह भी बढती हुई देखी जाती है । (३) मनुष्य प्रसन्न रहता है, वैसे यह भी खिली हुई दिखाई देती है । (४) मनुष्य म्लान मुख हो जाता है, वैसे वनस्पति भी मुरझा जाती है । (५) मनुष्य के समान यह भी आहार ग्रहण करती है और आहार से बढती है । (६) मनुष्य सदा परिवर्तित होता रहता है, वैसे वनस्पति में भी विकास परिवर्तन देखे जाते हक्त । (७) एक दिन मनुष्य मर जाता है, वैसे वनस्पति भी एक दिन नष्ट हो जाती है । (८) चय उपचय=हानि वृद्धि भी दोनों में होती है । (९) नये नये रूप अवस्थाएँ दोनों में होती रहती है ।

इस प्रकार वनस्पति की चेतना लक्षण के विकास बताये गये हक्त।

शेष पृथ्वी आदि चार स्थावर जीवों में कोईक चेतना लक्षण देखा या जाना जा सकता है । यथा– १. पृथ्वी को खोदने के बाद वहाँ की पृथ्वी पुन: बढ जाती है । २. गहरे कुए का पानी ठ डी में गर्म और गर्मी में ठ डा पाया जाता है । मनुष्य शरीर भी प्राय: ठ डी मे गर्म और गर्मी में ठ डा पाया जाता है । ३. अग्नि इन्धन के भक्षण से बढती है अन्यथा समाप्त भी हो जाती है । मनुष्य शरीर भी आहार से बढता रहता है, आहार के अभाव में नष्ट हो जाता है । ४. हवा स्वेच्छा से भी गमन करती रहती है । मनुष्य भी स्वेच्छा अनिच्छा दोनों ही प्रकार से गमन करता है ।

इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों में जीव के अस्तित्व को स्वीकार करने, श्रद्धा करने की प्रेरणा रूप यह कथन किया गया है । इससे अश्रद्धा के तर्क का कि चित् समाधान मिलता है क्योंकि ऐसे लक्षण अचित्त पुद्‌गलों में नहीं पाये जाते है ।

प्रश्न–२३ : त्रस जीवों की हिंसा करने के प्रयोजन क्या बताये हक्त ?

उत्तर– छट्ठे उद्देशे में त्रसकाय जीवों की हिंसा करने के ये प्रयोजन बतायेक्त– (१) शरीर के लिये (२) चमडे के लिये (३) मा स (४) खून (५) हृदय (६) पित्त (७) वसा=चर्बी (८) प ख(पक्षियों के) (९) पूँछ (१०) बाल (११) सि ग (गाय आदि के) (१२) विसाण (बारह सि गा आदि के) (१३) दाँत (१४) दाढा (१५) नख (१६) नशें (१७) हड्डी (१८) हड्डी की मज्जा इत्यादि के लिये तथा कभी (१९) कोई प्रयोजन से अथवा (२०) निष्प्रयोजन, इसके अतिरिक्त (२१) इसने मुझे मारा था (२२) मारता है (२३) मारेगा, ऐसे स कल्प से । इस प्रकार यहाँ १८ तो पदार्थों के नाम हक्त और कुल २३ त्रस जीवों की हिंसा करने के प्रयोजन या प्रकार बताये हक्त ।

प्रश्न–२४ : अनेक शास्त्रों में वायुकाय का क्रम चौथा है और यहाँ छट्ठा, ऐसा क्यों ?

उत्तर– वायुकाय अचाक्षुस है अर्थात् चक्षुग्राह्य नहीं है । अत: पहले स्थूल चक्षुग्राह्य जीवों की हिंसा त्याग का कथन करने के बाद, अ त में अचाक्षुस–नहीं दिखनेवाली होने से वायुकाय का वर्णन सभी के वर्णन के बाद में कहा है । वायुकाय को नहीं दिखने की अपेक्षा आत्मा के तुल्य भी बताया गया है । यों वायुकाय अस्तित्व की अपेक्षा रूपी है ।

प्रश्न–२५ : त्रस जीवों में कितने प्रकार के जीवों का समावेश है ?
उत्तर– सामान्य रूप से बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय और प चेन्द्रिय इन चार प्रकार के जीवों का त्रस में समावेश होता है । कि तु यहाँ छट्ठे उद्देशे में अन्य प्रकार से त्रस जीवों को स ग्रहित किया गया है यथा– (१) अ डज=अ डे से उत्पन्न पक्षी आदि । (२) पोतज=थेली (चर्ममय) में उत्पन्न होने वाले हाथी आदि (३) जरायुज=मनुष्य, गाय, भेंस आदि (४) रसज=रस–स्वाद बिगडने से किसी भी चीज में उत्पन्न होने वाले बेइन्द्रिय जीव (५) स स्वेदिम=पसीने से उत्पन्न होने वाले जूँ आदि । (६) स मूर्च्छिम=बाहरी वातावरण के स योग मात्र से स्वतः उत्पन्न होने वाले मक्खी, मच्छर आदि । (७) उद्भिज=भूमि या वनस्पति फोड कर उत्पन्न होने वाले टीड, पत गे आदि । (८) औपपातिक=थोडे से समय में शीघ्र पूर्ण रूप में उत्पन्न होने वाले नारक, देव ।

प्रश्न–२६ : स क्षेप में इस अध्ययन में क्या क्या वर्णन किया गया है ?
उत्तर– प्रथम उद्देशक में समुच्चय सिद्धा त– जीव, कर्म, स सार और स यम तथा सच्चे ज्ञानी का कथन करके फिर दूसरे से सातवें तक के छः उद्देशों में छःकाय जीवों का स्वरूप, उनकी हिंसा और उसका परिणाम बताकर फिर हिंसा त्याग की प्रेरणा और उस त्याग का परिणाम बताया गया है ।

प्रत्येक(छहों) उद्देशों के प्रार भ में त्याग, वैराग्य, स यम, प्रेरणा, अनासक्ति, स सार स्वरूप, आसक्ति, जीवदयाभाव आदि थोडा उपदेश कुछ वाक्यों में स्वत त्र रूप से देने के बाद फिर प्रास गिक क्रम प्राप्त छःकाय जीवों का विषय लिया गया है ।

प्रत्येक उद्देशे के अ त में विराधना(आर भ) करनेवाला वास्तविक ज्ञाता नहीं माना है कि तु पाप का त्याग करने वाले को वास्तविक ज्ञाता माना है । यह शुद्ध नय दृष्टि का कथन करके फिर तीन करण से अर्थात् करना, कराना, अनुमोदन करना रूप हिंसा त्याग के प्रतिज्ञा-मय उपदेश वाक्य कहे हैं । अ त में पुनः एक वाक्य से सभी उद्देशों में सर्वथा हिंसा त्यागी को परिज्ञातकर्मा अर्थात् कर्मों को समझ कर उनसे मुक्त होने वाला कहा है । इस अ तिम वाक्य में पृथ्वी और अग्नि इन दो के लिये उनके कर्म अर्थात् व्यापार का त्यागी होना कहा है । शेष पानी आदि में उनके शस्त्र का त्यागी होना कहा है ।

तात्पर्य यह है कि पृथ्वी को खोदना आदि पृथ्वी स ब धी कर्म–कार्यों का त्याग करना कहा है और अग्नि जलाना आदि अग्नि स ब धी कार्यों का त्याग करना कहा है, जब कि पानी, वनस्पति, त्रस आदि को किसी शस्त्र से नहीं मारने का कहा गया है । **यथा– जस्सेते पुढवि कम्म समार भा परिण्णाया भव ति से हु मुणी परिण्णाय कम्मे त्ति बेमि । जस्सेते उदय सत्थ समार भा...। जस्सेते अगणि कम्म समार भा...। जस्सेते वणस्सइ सत्थ समार भा...। जस्सेते तसकाय सत्थ समार भा... ।**

सातवें उद्देशक में वायुकाय के विषय समाप्ति के बाद पुनः छज्जीवनिकाय के नाम से समुच्चय कथन किया गया है, उसके भी प्रार भ में उपदेश और शिक्षा की बात कही है । जिसमें यह बताया है कि दीक्षा लेकर भी जो आचार में रमण नहीं करके स्वच्छ दाचारी बन जाते हक्त, वे अनेकविध आर भ में पड कर कर्मब ध बढाते हक्त । यह जानकर बुद्धिमान साधक को पाप कार्यों का सेवन नहीं करना चाहिये । फिर अ त में छज्जीवनिकाय हिंसा के त्यागी को परिज्ञात कर्मा उसी पूर्व के वाक्य से कहा गया है । सार यह है कि साधक आत्माएँ तत्त्व-ज्ञानी भी बने और पापों के त्यागी भी बनें ।

प्रश्न–२७ : स यम और स यमी के पर्यायरूप में कौन कौन से शब्द इस अध्ययन में एव आगे के अध्ययनों में मिलते हक्त ?
उत्तर– अध्ययन पहला– मुणी, अणगार, मेहावी, स यत, आय कद सी, दविया, वसुम , ये स यमी अर्थ में प्रयुक्त शब्द हक्त । स यमवाची शब्द इस प्रकार हक्त– अभय , अकुतोभय , आयाणीय , असत्थ , विणय , ये प्रथम अध्ययन में प्रयुक्त शब्द हक्त । आगे के अध्ययनों में भी ऐसे कई शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

अध्ययन दूसरा– धीरो, प डिए, कुसले, समिए, धुवचारिणो, पासगस्स, भिक्खू, आरिएहिं, मइम , वीरे, ये स यमी के शब्द हक्त । अहो विहाराए खम , स कमणे, मोण , अणुघायणस्स, ये स यम के शब्द है ।

अध्ययन तीसरा– णिग्ग थ , अ जू, अतिविज्जो, णिक्कम्मद सी, परम-द सी, अणोमद सी, अणण्णपरम णाणी, महेसी, दूरालइय , उवरयसत्थ, पलिय तकर, विधूतकप्पे, ये स यमी के शब्द हक्त । सव्व , परम , अणण्ण , महाजाण , ये स यम के शब्द हक्त । **अध्ययन चौथा**– उवसम , ब भचेर सि,

सच्च सि, ये स यम के शब्द हक्त । **अध्ययन पाँचवाँ**– विरयस्स, परम चक्खू, वण्णाएसी, माणवा, णरे, वेयवी, णिट्ठियट्ठी, मह , ये स यमी के शब्द हक्त । परियाए, मह , आराम , ये स यम के शब्द हक्त । **शेष अध्ययनों में**– वसु, महामुणी, णगिणा, विद्यूतकप्पे, महावीराण , आगय पण्णाण , भगवओ, उदासीण , णममाणेहिं, णिट्ठियट्ठी, ये स यमी के शब्द हक्त । लूहाओ, यह स यम का शब्द है ।

दूसरा अध्ययन : लोकविजय

प्रश्न–१ : दूसरे अध्ययन में कितने उद्देशे हक्त और उनमें मुख्य किस विषय का वर्णन है ? इसके नाम की सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में छः उद्देशे हक्त । इस अध्ययन के दो नाम प्रतिफलित होते हक्त– (१) लोक विजय (२) लोक विचय ।

१– स सार की मोह माया को तथा प्राप्त शरीर की क्षणभ गुरता को समझना; स्वजन आदि स्वार्थी है; यह जानकर मोह स सार से ऊपर उठकर, उदासीन होकर, वैराग्य भावित स यम जीवन स्वीकार करके साधक सदा के लिये स सार से विजय प्राप्त कर ले । इस प्रकार इस नाम से पराक्रम और पुरुषार्थ की प्रेरणा मिलती है । २– विचय का अर्थ है– चि तन, अन्वेषण । इस अध्ययन में वैराग्य एव धर्म ध्यान के प्रेरक चि तन भरे पडे हक्त । अनित्य, अशरण, स सार आदि भावनाओं को जगह जगह बल दिया गया है । अतः यह अध्ययन आत्मचि तन एव वैराग्य चि तन मूलक होने से इसका 'लोक विचय' नाम भी घटित होता है ।

कषाय रूपी भावलोक में मोह, मान को जीतने का कथन है और विषय रूपी भावलोक में स्त्री एव विषय स ग का कटु विपाक बताया है । पाँच इन्द्रिय विषयों को तो **कामगुण** शब्द से कहा गया है और इन गुणों को स सार का मूल कहा है । इस प्रकार विषय और कषाय रूप भावलोक पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा देना भी इस अध्ययन का मुख्य घोष है ।

प्रश्न–२ : स सार में प्राणी किन-किन का मोह ममत्व करता है और उसके द्वारा किस स्थिति में पहुँचता है ?

उत्तर– माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, पुत्रवधु, मित्र, स्वजन, स ब धी, साथी, घर के सामान, दास, वाहन, मकान, वस्त्र आदि ये मेरे, ये मेरे, ऐसा ममत्व स सारी प्राणी करते रहते हक्त । एक दूसरे के लिये रात-दिन सुख सुविधा स योग और धन जोडने में हैरान परेशान होते रहते हक्त । कर्तव्य अकर्तव्य के विवेक को, समय असमय के विवेक को भी ममत्वी प्राणी भूल जाते हक्त और कई तो इस दुनिया में किसी ने नहीं किया ऐसा कर दिखाने की धुन में, शान में कभी रोगात क, दुर्घटना या वृद्धावस्था के शिकार होकर सुखभोग से भी व चित हो जाते हक्त । धर्माचरण के अभाव में पुण्य क्षय हो जाने पर वे इस भव, परभव दोनों में दुःखी होते हक्त ।

इन्द्रिय शक्तियाँ क्षीण हो जाने पर, यौवन वय बीतकर बुढापा घेर लेने पर, कई चित्तविभ्रम, शून्यचित्त या पागल अथवा विवेक विकल हो जाते हक्त । हँसी-मजाक, खेल, श्रृ गार, सुखभोग के योग्य जब प्राणी नहीं रहता, तब कई परिवार वाले भी वचनों और काया से विविध दुःख देते हक्त । इस प्रकार स सार के मोह में फँसा प्राणी रोग और बुढापे के विविध दुःखों को झेलता है । कदाचित् किसी के पारिवारिक लोग सुख सुविधा करने वाले हों भी तो वह जब अपनी तीव्र रोगात क वेदना और मृत्यु वेदना से दुःखी होता है तब कोई शरणभूत नहीं होता ।

इन दुःख अवस्थाओं को जानकर विवेकी तथा प डित पुरुषों को समय व शरीर की शक्ति रहते हुए ही समय पर आत्म साधना में लग जाना चाहिये अर्थात् सा सारिक मोह ममत्व एव परिस्थितियों में जीवन के अ त तक उलझे हुए नहीं रहना चाहिये ।

प्रश्न–३ : माता पिता आदि स ब धी जन तो बहुत उपकारी होते हक्त तो उनके प्रति घृणा की भावना भरना क्या ठीक है ?

उत्तर– अज्ञान के वश स सारी जीवों में जो मोह दशा होती है उससे ऊपर उठने का, मोहासक्ति के भावों को विरक्ति में बदलने का ही आशय शास्त्र में आये उपदेश का समझना चाहिये । इससे किसी के मोह की ज्यादा उपशा ति होती है, किसी की कम । कोई दीक्षा के लिये तत्पर हो जाता है, कोई गृहस्थ जीवन में आसक्ति और मोहभावना को कम रखता हुआ जीवन जीता है । दोनों अवस्था में वैराग्य के साथ विवेक रखना आवश्यक है । धर्म अविवेक नहीं सिखाता है ।

धर्म, वैराग्य, अनुकम्पा और विवेक को आगे रखते हुए बढता है । निर्दयता या अविवेक यदि कोई करता है तो वह उसकी व्यक्तिगत प्रकृति एव पूर्व स स्कार का दोष है । वास्तव में प्रेम को वैमनस्य में या द्वेष में पलटना धर्मोपदेश का आशय नहीं है, कि तु मोह और अज्ञान दशा को कम करना ही धर्मोपदेश का आशय है । माता पिता की सेवा, क्लेश कषाय से मुक्ति, जीवों के साथ मैत्री भाव, दया भाव का उपदेश या प्रेरणा भी शास्त्र में की गई है । अत: वैराग्य का उपदेश अपनी अपेक्षा से उपयुक्त है । इससे जीव मोह भावों और आसक्ति भावों के कितने ही कर्मब ध से बच जाता है ।

प्रश्न–४ : अरइ आउट्टे से मेहावी खण सि मुक्के, इस आगम वाक्य का भावार्थ क्या है ?

उत्तर– अरति का सामान्य अर्थ है मन की व्यग्रता, व्याकुलता, अस तुष्टी । किसी भी स्थिति, परिस्थिति से मन में शोक स तप्त हो जाना, शोकाकुल हो जाना, किसी भी काम में मन नहीं लगना, आन द और प्रसन्नता की जगह दु:ख और म्लानता में डूब जाना, यह सब अरति भाव है । इस अरति का अर्थात् चित्त की व्याकुलता का, जो साधक ज्ञान स स्कार से निवारण कर देता है, मन से स्वस्थ हो जाता है वह अपने वास्तविक या माने गये समस्त दु:खों से एक बार छूटकर तत्काल सुखी हो जाता है ।

विशेष अर्थ– आध्यात्मिक दृष्टि से जो साधक स यम के किन्हीं कष्टों परीषहों से पराभूत होकर स यम मर्यादा में रहकर भी महा दु:खानुभुति करता है, वह यदि अपनी स यम के प्रति अरति अनान द भाव को हटाकर स यम भाव में रमण करने लग जाय तो उसका वह स यम स ब धी मानसिक समस्त दु:ख पलायन हो जाता है ।

दशवैकालिक सूत्र में बताया गया है कि स यम में रमण करनेवाले को स यम का आचार देवलोक के सुख के समान हो जाता है और स यम में रमण न करने वाले को वही स यमाचार नरक दु:ख के समान लगने लगता है । अत: स यम के प्रति उत्पन्न अरति अर्थात् अरमणता के भावों को दूर कर दिया जाय तो वह आया हुआ और माना हुआ समस्त दु:ख आन द में परिवर्तित हो जाता है; मुख म्लानता प्रसन्नता में परिवर्तित हो जाती है । इसके लिये साधक को कर्म स्वरूप का या

उसके उदय विपाक की विचित्रता का और स यम भावों की महानता का विचार-विवेक करना होगा तथा सहनशीलता एव दृढ मनोबल की स्थिति को ज्ञान वैराग्य से स स्कारित करना जरूरी होगा । इस तरह शुद्ध ज्ञान, चि तन, विवेक, सहनशीलता आदि की प्रबलता करके अरति भावों को दूर कर देना चाहिये । ऐसा करने से स यमी साधक अपने स यम आराधन में सफल हो सकता है और स सारी प्राणी भी उपरोक्त विवेक से कितने ही दु:खों से तथा टेन्शनो से मुक्त रह सकता है ।

श्रमण को इस अरति अवस्था से सावधान रहने के लिये पहले से ही लोभ, लालच, चाहना तथा इच्छाओं के वशीभूत नहीं होना चाहिये । इनको सदा अलोभ भावना और अपरिग्रह भावना से निर्मूल करते रहना चाहिये । क्यों कि यह लोभ या चाहनाएँ आदि भी अरति की स्थिति का सर्जन करने में निमित्त भूत बन सकती है ।

प्रश्न–५ : सा सारिक रुचि से प्राणी कितने तरह के लोगों का पोषण और सावद्यानुष्ठान करता है ?

उत्तर– स्वय के शरीर का, ज्ञातिजन, मित्र, पशु, देवता, राजा, चोर, अतिथि–नवाग तुक, कृपण–भिखारी, श्रमण–सन्यासी आदि का पोषण, अपना पक्ष बल बढाने के लिये करता है अथवा तो भय के कारण या पाप धोने के लिये या अन्य किसी भी आशाओं–आका क्षाओं से सावद्य अनुष्ठानों द्वारा करता रहता है । **अन्य प्रकार से–** अपने पुत्र, पुत्री, धाय, दास, दासी, पुत्रवधू, ज्ञातीजन, कर्मचारी, अतिथि आदि के प्रात:कालीन नास्ता के लिये और शाम के खाने के लिये अथवा उनको देने के लिये, पदार्थों के अर्थात् खाद्य सामग्री के स ग्रह के लिये सावद्यानुष्ठान करता रहता है ।

प्रश्न–६ : गुस्सा और घम ड को कम करने के लिये क्या उपाय है ?

उत्तर– क्रोध और मान एक तरह से नहीं, अनेकों तरह से आत्मा में उत्पन्न होते हक्त तो उनके कम करने के उपाय भी विविध प्रकारों से हो सकते हक्त तथापि यहाँ एक तरीका बताया जा रहा है–

क्रोध की उत्पति के मूल में अधिकतर मान रहता है और मान के मूल में विशेष कर उच्च गोत्र से उपलब्ध सुस योग निमित्त बनते हक्त । वहाँ यह चि तन उपस्थित करना चाहिये कि जीव अनेकों बार जाति, कुल, बल, तप, श्रुत, ऐश्वर्य, रूप और लाभ आदि हीन अथवा

उच्च प्राप्त करता ही रहता है । उच्चता हीनता का यह चक्र सभी प्राणियों में चलता रहता है । मेरी आत्मा कभी अल्पज्ञानी, अविवेकी, हीन अवस्था या नासमझी, मूर्खता, होशियारी अथवा गरीब, अमीर, सुरूप, कुरूप आदि बनी ही है और बनती ही रहेगी । अपना मद या दूसरे का तिरस्कार करना, अन्य की किसी भी गलती या हीन दशा पर गुस्सा करना, अपनी किसी भी गुणस पन्नता में फूलना, अभिमान करना समझदार के लिये उपयुक्त नहीं है । अपनी आत्मा भी कई बार अ धत्व, बधिरत्व, गूँगापन, काणत्व, कूबडापन, अप ग, वामन, श्यामत्व, चित्तकाबरापन आदि अनेकानेक शरीर की हीन अवस्थाओं, हीन योनियों, हीन गतियों अर्थात् नरक निगोद आदि ८४ लाख योनियों में अपार दुःख भोगती भटकती आ रही है । इस प्रकार अपनी और अन्य की सभी अवस्थाओं का विचार उपस्थित रखकर अपने अ दर रहे मान-अभिमान को निर्मूल, निर्बल बनाते रहना चाहिये । वर्तमान में स्वय के अनेक अवगुण, गुणहीनता, अपुण्य आदि को भी सम्मुख रखते हुए गुणों, पुण्यों आदि के मान को पुष्ट नहीं होने देना चाहिये । इस प्रकार मान निग्रह करने से उससे स ब धित उत्पन्न होने वाले क्रोध को स्वत: शा त रहने की प्रेरणा, आत्मा की लघुता के चि तन से या अह कार रहित भावनाओं से मिलती रहेगी ।

इसी भाँति दूसरों की सभी अशुभ अवस्थाओं के साथ उनकी शुभ अवस्थाओं का, अवगुणों के साथ गुणों का, चि तन उपस्थित करते रहने का अभ्यास करते रहने से, वहाँ भी मान कषाय कमजोर होकर गुस्से को उत्पन्न नहीं होने देगा ।

आगे दूसरे चि तन के पहलू को दिखाया गया है कि अपने घम ड गुस्से के प्रतिफल से यदि किसी को वाचिक या कायिक कुछ भी कष्ट दिया जाय तो वहाँ यह चि तन भी करना चाहिये कि सभी प्राणियों को दुःख अप्रिय है, मरना अप्रिय है, सभी सुखेच्छु हक्त, जीना सब को प्रिय है, कटु शब्द या तिरस्कार के वचनों को कोई भी सुनना नहीं चाहता है कि तु इन सभी व्यवहारों से प्राणियों को दुःखानुभव होता है । अत: किसी के सुख को नष्ट करना, दुःख में पटकना, कैसे उचित होगा ? उसका परिणाम स्वय के लिये भी हितकारी नहीं होगा । इस प्रकार के चि तन से भी अपने गुस्से को निष्फल करना चाहिये ।

प्रश्न–७ : धन की अस्थिरता और विनाश किस प्रकार स भव है ?

उत्तर– धन के जाने की अनेक अवस्थाएँ हक्त यथा– १. पाप से स चित अथवा पुण्य प्रबलता से उपलब्ध स पत्ति, भाई, ब धु, भागीदारों मे चली जाती है अर्थात् वे ले लेते हक्त या उन्हें देनी पडती है । २. चोर लुटेरे ले जाते हक्त । ३. राजा–अधिकारीगण ले लेते हक्त । ४. घर वाले लोग स पत्ति खर्च कर दे, खर्च हो जावे, देव–देवी ले जाय । घाटा लग जावे । ५. पानी, भूकम्प से पूर्ण स पत्ति नष्ट हो जाय । ६. अग्नि के निमित्त से स पूर्ण घर के ही जल जाने से, इत्यादि प्रकार से इकट्ठी की हुई स पत्ति चली जा सकती है और अ त में मरने के बाद तो स पूर्ण स पत्ति यहीं रह जाती है कि तु उसके उपार्जन में किया गया पाप और उसके स चित कर्म साथ में ही रहते हक्त, उन्हें कोई नहीं ले जाता है । वे स ग्रहित कर्म अनेक अवस्थाओं कष्टों को प्राप्त कराते रहतेक्त । अत: धन स ग्रह करने वालों को बिन जरूरत के धन स ग्रह में विवेक करना और अ कुश लगाना अत्य त आवश्यक है । धन आदि प्राप्त करने की इच्छा रूप लोभ और प्राप्त के स ग्रहरूप परिग्रह स ज्ञा को सीमित करना चाहिये ।

प्रश्न–८ : "उद्देसो पासगस्स णत्थि" इस वाक्य का क्या आशय है ?

उत्तर– तीसरे उद्देशे के इस वाक्य के पूर्व जो कथन किया है उससे स ब धित यह वाक्य है । वह पूर्ण विषय क्रम इस प्रकार है– जो स यम ग्रहण करके भी उसके पालन में स्थिर नहीं रह पाते हक्त और स यम विपरीत स योगों के प्राप्त होने पर उन्हें स्वीकार कर लेते हक्त, स्वीकार करते जाते हक्त; ऐसे साधक (१) स सार प्रवाह को तिरे भी नहीं है और ऐसी वृत्ति से तिर भी नहीं सकेंगे । (२) स सार के किनारे नहीं पहुँचे हक्त और ऐसी दशा में किनारे पहुँचेंगे भी नहीं (३) वे शिथिल मानस के साधक स सार से पार पाये भी नहीं है और इस तरह पार पायेंगे भी नहीं ।

यह सारा कथन और निर्देश **'पासगस्स'** ज्ञानियों के लिये, सही दृष्टाओं के लिये, आत्म दृष्टि वालों के लिये, विवेक दृष्टि वालों के लिये अथवा स यम का खयाल रखने वाले सावधान साधकों के लिये नहीं कहा गया है । वे सावधान और स यम में स्थिर साधक तो पार पहुँचे हुए ही हक्त और पार जाने वाले ही हक्त ।

प्रश्न–९ : प्राचीन काल में अर्थात् आगम काल में सुबह का नास्ता आदि का प्रचलन था ?

उत्तर– इस अध्ययन के पाँचवें उद्देशे में आहार के स ग्रह करने में जो दो शब्दों का प्रयोग है । **पायरासाए, सामासाए** इसका अर्थ है प्रात: कालीन खाद्यपदार्थ और स ध्याकालीन खाद्यपदार्थ । इससे यह जाना जा सकता है कि सभी उस जमाने में एक बार ही खाने वाले नहीं होते थे । चौथे आरे का अ तिम और पाँचवें आरे का प्रार भ काल होने से अनेकबार आहार की इच्छा होना समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न–१० : साधु को आहार और गोचरी के स ब ध में क्या विवेक होना चाहिये ?

उत्तर– पाँचवें उद्देशे में इस विषयक विविध निर्देश है । १. साधु आहार के उत्पादन की किसी भी सावद्य प्रवृत्ति को स्वय स्वीकार नहीं करे, नहीं करावे । २. उद्गम और उत्पादना के दोषों से युक्त आहार **'आम'** दोष वाला(कच्चा = मूल में ही दोषित) कहा गया है और एषणा दोष वाला आहार **'ग ध'** दोष वाला (मूल चीज ठीक है कि तु ऊपरी दोष वाला) कहा गया है । ऐसे **'आमग ध'** दोष रहित अर्थात् निरामग ध आहार ग्रहण करे । ३. क्रय विक्रय से भी दूर रहे, खरीदना खरीदाना एव अनुमोदन या प्रेरणा नहीं करे । ४. गोचरी जाने वाला भिक्षु स यमपर्याय, ज्ञान, अनुभव एव अभ्यास से युक्त होना चाहिये । जिसके लिये शास्त्र में आठ गुण कहे गये हक्त– (१) कालण्णे– शीत उष्ण काल स ब धी गोचरी का सर्वविध विवेकज्ञान वाला (२) बलण्णे– अपने सामर्थ्य के विवेक से कार्य करने वाला (३) मायण्णे– आहार की मात्रा को समझने वाला । स्वय की और सहवर्ती श्रमणों की अनेकविध पदार्थों की अपेक्षा आहार खुराक का अनुभव रखने वाला । गृहस्थ के घर के अनुसार लेने की मात्रा का विवेक रख सकने वाला (४) खेयण्णे– दूसरों के दु:ख, सामर्थ्य आदि को जानने वाला अथवा क्षेत्र स ब धी समस्त विवेकज्ञान वाला (५) खणयण्णे– अवसर या परिस्थिति के अनुसार स्वय का, अन्य का, क्षेत्र काल का, श्रद्धालु या अश्रद्धालु लोगों का, यों सभी प्रकार से विवेक रखकर कुशलतापूर्वक गोचरी करने वाला (६) विणयण्णे– ज्ञानदर्शन चारित्र रूप स यम पालन करने वाला । गवेषणा रुचि वाला, विनय स पन्न प्रकृति वाला,

साधुओं के साथ और गृहस्थों के साथ नम्रतायुक्त और कुशलतापूर्वक व्यवहार करने वाला (७) समयण्णे– सिद्धा त मे प्रवीण, समस्त शास्त्रों का ज्ञाता, कोई परिस्थिति में शास्त्रानुसार स्वय निर्णय ले सकने वाला । कहीं पर ससमयण्णे, परसमयण्णे ऐसे दो शब्द भी मिलते हक्त । अत: परसमय– अन्य मत के सिद्धा तो का भी अनुभव रखने वाला (८) भावण्णे– दूसरों के भावों को समझने में कुशल अथवा अपने भावों की शुद्धि को रख सकने वाला । गोचरी जाने वाले की योग्यता ऐसी होनी चाहिये । ५. आहार ज्यादा भी मिले तो भी मात्रा से ही ग्रहण करे । परिग्रहवृति आहार में या वस्त्रादि में न बढावे । ६. समय पर ही गोचरी जावे । ७. किसी भी पदार्थ या व्यक्ति आदि का प्रतिब ध नहीं रखे, एका त आग्रह नहीं करे, जिससे कि स्वय या अन्य को हैरान परेशान न होना पडे । ८. राग और द्वेष के विचारों को आहार लाने और खाने में नहीं आने दे । ९. अधिक और मनोज्ञ पदार्थों की सुलभता का घम ड भी नहीं करे । १०. अ तराय होने पर खिन्न भी नहीं होवे । ११. कोई दे या न दे तो नाराज नहीं होवे । कोई अनुदारता से थोडा दे तो भी समभाव रखे । १२. घर से निकल जाने का कह दे तो शा ति से विवेक पूर्वक लौट जावे । १३. परिग्रह वृत्ति नहीं करे कि तु अनुपयोगी, बिन जरुरत का समझ कर अधिक पदार्थ आहार या वस्त्र आदि कोई भी चीज ग्रहण नहीं करे, त्याग कर दे । आहार के स ब ध में कोई भी मूर्च्छा ममत्व नहीं करे । किसी भी प्रकार के कर्मब ध से लिप्त नहीं होवे ।

प्रश्न–११ : साधु का उत्थान और पतन किस तरह होता है ?

उत्तर– सुख की लालसाओं के बढने से अथवा दु:ख से घबरा जाने से, व्याकुल हो जाने से, साधु का साध्वाचार से पतन होता है । स्वय के अप्रमत्तभावों से अर्थात् वैराग्य और ज्ञान की जागृति होने से पुन: उत्थान हो सकता है । पतन के अभिमुख बना साधक पहले एक महाव्रत को दूषित करता है फिर रात्रि भोजन युक्त ६ व्रतों में से किसी भी व्रत के विपरीत आचरण करने में तत्पर हो जाता है अर्थात् एक दोष का प्रार भ होने पर धीरे-धीरे अनेक दोष प्रवेश होने लगते हक्त । मोह कर्मोदय के बलवान होने पर, उसे निष्फल नहीं करने से साधक की ऐसी दशा होती है ।

कि तु जब मोह कर्म उपशा त होता है या उसका उदय जोर कम हो जाता है अथवा अन्य किसी पुरुषार्थ से मोह का क्षय-क्षयोपशम बढता है तो साधक पुनः अप्रमत्त भावों के चि तन में उपस्थित होता है । तब वह विचार करता है कि यह सब मक्तने अपने अस यम भावों से किया है, उसके कर्म ब ध से मक्तमुक्त नहीं हो सकता । इस प्रकार वह ज्ञान दशा में पहुँचता है ।

यहाँ ६ व्रत के स्थान पर ६ काया को परिलक्षित करके भी अर्थघटन किया गया है । तदनुसार साधक प्रार भ में किसी एक काया की विराधना करने लगता है । फिर ६ काया में से किसी की भी विराधना करने में तत्पर होता रहता है ।

यहाँ सूत्र का अर्थ खींचतान करके एका त रुप से किया जाता है जो कि योग्य नहीं है । यथा– एक व्रत दूषित करने वाला नियमतः सभी व्रत दूषित करता है । एक काया की विराधना करने वाला नियमतः सभी काया की विराधना करता है, यह अर्थ समझ भ्रम के कारण चल पडा है । नय युक्त विवेकमय अर्थ-भाव ऊपर स्पष्ट कर दिया गया है । एका तिक अर्थ नहीं करना चाहिये ।

प्रश्न–१२ : सा सारिक प्राणियों को मोह ममत्व त्यागने का उपदेश दिया जाता है कि तु साधु साध्वी कितना मोह ममत्व करते रहते हक्त यथा मेरे शिष्य शिष्या, मेरे श्रावक, मेरे गाँव, मेरे घर आदि करते रहते हक्त, उनके लिये शास्त्र में क्या उपदेश है ?

उत्तर– साधु को ममत्व रखने का और ममत्व की बुद्धि प्रकृति रखने का भी सूत्र में निषेध किया गया है और यह भी कहा गया है कि वही मुनि स यम मार्ग को समझा है जिसका किसी में भी, कहीं पर भी ममत्व भाव नहीं है । यह जान-समझकर बुद्धिमान साधक लोकवृत्ति और लोकस ज्ञा अर्थात् स सार प्रवाहरूप ममता मूर्छाभाव का त्याग करता हुआ स यम में पुरुषार्थ करे । वह पाठ यह है– **जे ममाइय मइ जहाइ, से जहइ ममाइय । से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स णत्थि ममाइय । त परिण्णाय मेहावी, विदित्ता लोग , व ता लोग सण्ण , से मइम परक्कमेज्जासि ।** अतः साधु को शिष्य शिष्या का, श्रावक समाज का त्याग नहीं करना है कि तु इनके प्रति ममत्व बुद्धि का सदा त्याग रखना आवश्यक है । क्यों कि ममता मूर्छा ही परिग्रह है ।

इसके अतिरिक्त साधु को रति अरति रूप मन की च चलता का त्याग करना होता है । वह साधक जीवन में रति भाव और अरति भाव दोनों को नहीं आने दे, नहीं रहने दे, कि चित् भी रति अरति सहन नहीं करे अर्थात् मन को पूर्ण स्थिर तटस्थ समभाव में रखे । मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्दादि पाँचों विषयों के स योग में सहनशील बने । इहलौकिक पुद्गल स योगों में आन द और खेद दोनों से दूर रहे । इस प्रकार मुनि ममता मूर्च्छा भी न करे, ममत्व बुद्धि भी न रखे, मन की च चलता को भी कम करे तथा पौद्गलिक आन द और दुःख दोनों में तटस्थ रहे, आसक्त न बने कि तु सभी प्रकार से, सभी स योगों में अवस्थाओं में कर्म क्षय करने में लगा रहे ।

अ त में यह भी कह दिया गया है कि वह आहार में भी ममत्व भाव न रख कर त्याग भाव रखे । अच्छे एव मनोज्ञ खाद्य पदार्थों का त्याग कर प्रा त, रूक्ष भोजन में स तुष्ट रहे । अ त में उपस हार करते हुए कहा गया है कि उक्त ममत्व, ममत्व बुद्धि, रति-अरति भाव, पुद्गल आन द, इस लौकिक आन द और आहार का आन द ये सभी वृत्तियाँ छोडने वाला मुनि स सार प्रवाह को पार कर सकता है अथवा पार किया है, मुक्त हुआ है, वही वास्तव में विरति भाव में उपस्थित है । इस प्रकार मुनि जीवन में तो ममत्व और ममत्व बुद्धि तथा सूक्ष्मतम ममत्व रूप रति अरति, मन की च चलता, व्यग्रता, आसक्ति सभी के त्यागने का ध्रुव उपदेश है । जो छट्ठे उद्देशे के प्रार भ के सूत्र में है ।

प्रश्न–१३ : प्रवचन के विषय में मुनि को क्या विवेक रखना चाहिये ?

उत्तर– उपदेश देने में स्वार्थ और स कीर्ण भाव न होना चाहिये । उपदेश का इच्छुक व्यक्ति गरीब अमीर कोई भी हो, उपदेश सुनाने में भेद भाव नहीं रखे, रुचि पूर्वक हार्दिक लगन से सुनावे । एक को हर्ष से, एक को दुर्मन से सुनावे, ऐसा न करे ।

उपदेश के विषय का निर्णय और उसका विवेचन विवेक बुद्धि के साथ करे । श्रोता को विरोधभाव उत्पन्न होवे वैसा नहीं बोले, अविवेक से मनमाना उपदेश देना श्रेयष्कर नहीं होता है । सामने वाला व्यक्ति अथवा परिषद की मानस दशा या विचार दशा का अनुभव रखते हुए उनका कुछ हित हो, वह किसी भी तरह कर्म ब ध से या आश्रव से मुक्त हो सके, इस तरह विचार पूर्वक, विवेक पूर्वक

उपदेश देवे । वही साधक सभी अपेक्षाओं से सब प्रकार की बुद्धिमत्ता से विचक्षणता से प्रवर्तन करने वाला है, जो कहीं भी पाप से लिप्त नहीं होता है, कर्म ब धन से मुक्त होने की अन्वेषणा करता है अर्थात् कर्म ब धन से स्वय भी अलग रहे, दूसरों को भी कर्मब ध से दूर करने में प्रयत्नशील रहे; वही स यम का, मोक्ष मार्ग का कुशल ज्ञाता है । इस प्रकार यहाँ मुनि के उपदेश का विवेक ज्ञान बताया गया है ।

प्रश्न–१४ : सामान्यतया मुनि किन विषयों पर उपदेश दे, ताकि किसी को भी विरोधभाव न हो और उनका हित हो ?

उत्तर– इस विषय का कथन छट्ठे अध्ययन के पाँचवे उद्देशक में किया गया है, वह इस प्रकार है– धर्मिष्ट या धर्म से अनभिज्ञ कोई भी व्यक्ति धर्म श्रवण की भावना से उपस्थित हुआ हो उन्हें मुनि (१) **स ति** – समभाव, क्षमाभाव अथवा जीवादि तत्त्वों के अस्तित्वभाव का; धर्म, अधर्म, पाप के स्वरूप का, (२) **विरति**– हिंसा असत्य आदि पाप त्याग एव व्रत नियमों के विश्लेषण का, (३) **उपशा ति**– कषाय त्याग का, (४) **मोक्ष प्रेरक**– स सार मुक्ति दायक विषयों का, (५) **सोय** – भावों की पवित्रता का, (६) **सरलता**– निष्कपटता का, (७) **लघुता**– नम्रता, विनयभाव, अपरिग्रह भाव का, (८) **अहिंसा**– सत्य आदि विषयों का अथवा दृढता पूर्वक, दोषरहित व्रत पालन का, इत्यादि विषयों पर प्रस गानुसार विवेकपूर्वक कथन करे । बोलने में खुद को हैरानी-परेशानी न हो एव सामने वाले श्रोताओं का किसी भी प्रकार से तिरस्कार, अपमान आदि रूप में आशातना, अवहेलना न हो; अन्य भी किसी प्राणी को दुःखदाई हो ऐसा वक्तव्य या प्रवचन साधु न करे । स पूर्ण अनासातनात्मक अर्थात् सर्व जीवों को सुखकारी, स सार से एव कर्म ब ध से तारने वाला, मुक्त कराने वाला उपदेश देवे ।

किसी प्रकार के राग द्वेष की मूल भावना से, हृदयकी कलुषता से, कटुता से, किसी को दुःखकारी उपदेश न करे । उपदेष्टा का हृदय उपदेश के समय पूर्ण पवित्र, शा त, हितकारी और सहजभाव युक्त होना चाहिये ।

तीसरा अध्ययन : शीतोष्णीय

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम और उसकी सार्थकता क्या है ?

उत्तर– 'शीतोष्णीय' इस अध्ययन का नाम है । शीत से अनुकूलताओं का और उष्ण शब्द से प्रतिकूलताओं का सूचन किया है ।

स यम जीवन में प्राप्त होने वाली स सारी रुचि की आकर्षक या उसे बढाने वाली अनुकूलताएँ, शब्द आदि इन्द्रिय विषयों के स योग, शीत परीषह है । कष्ट, उपसर्ग एव प्रतिकूलताएँ ये उष्ण परीषह है । इन दोनों प्रकार के स योगों में स यम भावों को स्थिर रखना, आगे बढाते रखना, इस विषय का इस अध्ययन में अधिकतम उपदेश दिया गया है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में कितने उद्देशे हक्त, उनमें मुख्य क्या-क्या वर्णन है ?

उत्तर– इस अध्ययन में चार उद्देशे हक्त । **पहले उद्देशे में**– सुप्त कौन और जागृत कौन, इस विषय से अध्ययन का प्रार भ है । फिर आदर्श साधुत्व के गुण, समभाव प्रेरणा, दुःख, जन्म-मरण, किसको और कैसे ? उनसे मुक्ति किसको ? पर्यवजात शस्त्र और अशस्त्र का स ब ध, कर्म ही स सार है, उस कर्मों से और उस कर्मों के पीछे रहने वाले पाप और राग द्वेष से मुक्त होने का उपदेश है । **दूसरे उद्देशे में**– पापकर्मों का स ग्रह कौन करता, कौन नहीं करता, धैर्य के साथ कर्म क्षय करने की प्रेरणा, स सारी वृत्ति को चालणी में जल भरने की उपमा; हिंसा से, स्त्रियों से और कषाय से निवृत्त होने का उपदेश देकर अ त में मनुष्य भव के अवसर को अहिंसक बनकर सफल करने की प्रेरणा की गई है । **तीसरे उद्देशे में**– अहिंसकता में अ तरमानस का भाव, स यम की सावधानी और उसके लाभ, लौकिक भ्रमपूर्ण मान्यता और सही समझ, स यम में दृढता, आत्म निग्रह से मुक्ति इत्यादि मुख्य विषय है । **चौथे उद्देशे में**– कषाय त्याग और प्रमाद त्याग तथा उसका उत्तम परिणाम बताया है ।

प्रश्न–३ : अध्ययन में शीत परीषह का विषय किस रूप में है ?

उत्तर– १. जिसने इन्द्रिय विषय– शब्द, रूप, ग ध, रस और स्पर्शों को भली भाँति समझ लिया है; उनसे किस तरह दूर रहना, उनमें रागद्वेष या आसक्ति नहीं करना, यह अच्छी तरह समझ लिया है; वह

आत्मवान=आत्मार्थी है, ज्ञानी है, शास्त्रविद है, धर्मी है, ब्रह्मचारी है । वही विवेक बुद्धि से लोक=स सार की स्थितियों को अच्छी तरह जानता है, वही मुनि कहलाता है । वह सरल, स यमी, धर्म के मर्म को समझने वाला है । २. शब्द रूप आदि इन्द्रिय विषयों की मुनि सदा उपेक्षा ही करता रहे । सदा मृत्यु की आश का रखता हुआ अर्थात् मृत्यु को याद रखता हुआ, स यम पालन करे तो जन्म मरण से मुक्त हो जाता है । ३. कामभोगों से सदा सावधान रहे, अप्रमत्त भावों को उपस्थित रखे । ४. कामभोगों में गृद्ध बने मानव कर्मों का स ग्रह करते है और कर्म स ग्रह से गर्भ में बार बार आते हक्त अर्थात् बार बार जन्म मरण करते रहते हक्त । मुनि यह जानकर भोगों में लुभावित न होवे । ५. स सार में कई प्राणी मजाक और आन द की प्रकृति के एव अज्ञानी होते हक्त । वे मजाक और हिंसादि पाप करके आन द मानते हक्त, खुश होते हक्त, ऐसे बाल जीवों की स गति करने से भी अज्ञान-आन द के स स्कार का खतरा होता है । मुनि ऐसे कर्तव्य वालों से भी सावधान रहे । ६. सा सारिक एव पौद्गलिक आन द में नहीं पडे और स्त्रियों में आसक्त नहीं होवे । ७.अल्प या विशाल कोई भी मनोज्ञ शब्द, रूप आदि विषय स योग मिले तो भी मुनि उनसे विरक्त रहे । वैराग्य भावों को ही आगे रखे । ८. स पूर्ण हास्य विनोद का पूर्णतया त्याग करके मुनि आत्मा का गोपन करता हुआ विचरण करे । ९. मित्र मिले तो उनकी भी आशा नहीं रखे । इन सूत्रों के अर्थ और परमार्थ में सर्वत्र अनुकूलताओं में फँसने से बचने के उपदेश का हेतु रहा हुआ है ।

प्रश्न–४ : उष्ण परीषह स ब धी वर्णन पूरे अध्ययन में किस प्रकार है ?

उत्तर– १. कर्मों के विचित्र उदय आने पर मुनि घबरावे नहीं, तप स यम का धैर्य से पालन करे । ऐसा करते हुए भी प्रतिकूलता समाप्त नहीं होवे तो मुनि सोचे कि पूर्व में पाप कर्म का स ग्रह अत्यधिक कर रखा होगा । उसी के परिणाम से अशुभ कर्मों का अ त नहीं आ रहा है, ऐसा समझकर समभावों से कष्टों को सहन करे; और यह स तोष रखे कि स यम-तप में लीन रहने वाला बुद्धिमान क्रमशः समस्त पाप कर्मों का क्षय कर अवश्य मुक्ति प्राप्त करेगा । –**(उद्देशा २.)**

२. हे साधक ! अपनी आत्मा का ही निग्रह कर अर्थात् आत्मा से ही सहनशील बन, कष्टों से भी आत्मा को अस्थिर नहीं होने दे । ज्ञानयुक्त

अभ्यास के अ कुश से आत्मा को समभावों में रखे । ऐसा आत्मा कुश रखने से दुःखों से एक समय छूट जायेगा । दुःख भी सदा शाश्वत रहने वाला नहीं है । यह जानकर साधक स यम में, स यम परिणामों में सदा सावधान रहे । क्यों कि स यम की विधियों में अर्थात् स यम स ब धी जिनाज्ञाओं में उपस्थित रहने वाला बुद्धिमान, मार =स सार= जन्म-मरण से पार हो जाता हे । ३. ज्ञान और विवेक से सहित=स पन्न मुनि दुःखकारी प्रस गों के प्राप्त होने पर भी कभी दुःखी नहीं होता है, कष्टानुभूति नहीं करता है, कभी भी अशा ति स क्लेश को प्राप्त नहीं होता है । देखो ! ऐसा दृढ मनोबली स यम साधक लोकालोक=समस्त स सार प्रप चों से मुक्त हो जाता है ।

प्रश्न–५ : सुप्त और जागृत के स ब ध में क्या कहा गया है ?

उत्तर– इस स सार में जो द्रव्य से एव भाव से स यम स्वीकार नहीं करते हक्त, सर्व विरति रूप वीतराग मार्ग में नहीं आये हक्त, वे अमुनि= अविरत जीव आत्मोन्नति या भाव दृष्टि से यहाँ अपेक्षा से सुप्त= भाव सुप्त कहे गये हक्त और दूसरे चरण में बताया है कि मुनि आत्म भाव में, स यम भाव में सदा जागृत रहते हक्त । अथवा मुनि वे हक्त जो सदा स यम में सावधान और अप्रमत्त रहते हक्त ।

इस सूत्र से अस यत जीवों को भाव सुप्त कह कर उन्हें स यम भाव के लिये उत्साहित–प्रेरित किया है और जिन्होंने स यम ग्रहण किया है उन्हें सदा अप्रमत्त भाव से स यम पालन में तत्पर रहने की प्रेरणा हेतु कहा गया है कि सतत जागृत रहने वाला मुनि है और सतत जागृत नहीं रहने वाला मुनि नहीं है । वह पाठ इस प्रकार है– **सुत्ता अमुणी, मुणिणो सयय जागर ति ।** यह सूत्र प्रतियों में भिन्न-भिन्न तरह से मिलता है । सही पाठ का निर्णय करना अत्य त कठिन है फिर भी ऊपर अ कित पाठ विशेष ठीक ध्यान में आया है ।

प्रश्न–६ : शीत और उष्ण दोनों परीषहों का एक साथ वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– (१) वह सूत्र इस प्रकार है– **सीओसिणच्चाई से णिग्ग थे, अरइ रइ सहे, फरुसिय णो वेदेइ ।** जो साधक अनुकूल और प्रतिकूल दोनों स योगों को सहन कर के उनमें रहे विषय सुख और पीडा के दुःख की भावना का त्याग कर देता है, दुःख सुख दोनों की अनुभूति

में च चल नहीं होकर दोनों अवस्था से होने वाली परिणामों की च चलता का त्याग कर देता है । उसे यहाँ **शीतोष्ण त्यागी** कहा गया है ।

वह मुनि अरति-रति– स यम तप स ब धी कष्ट से होने वाली अरुचि, अप्रीति के प्रस ग को समभावों से सहता हुआ उन पर विजय प्राप्त कर लेता है; अरति=अनान द=अप्रसन्नता में नहीं डूबता है । इन्द्रिय विषयों के अनुकूल स योगों से उत्पन्न पौद्गलिक सुखों के आन द=रति में भी नहीं डूबता है । उस पर भी समभाव तटस्थता से विजय प्राप्त कर लेता है । वह मुनि समभावो में ऐसा अभ्यस्त हो जाता है कि **फरुसिय ण वेदेइ**– महान कष्ट के उपस्थित हो जाने पर उसका कुछ भी अनुभव=अ तर्मन में कष्टानुभूति नहीं करता है और सहनशीलता से प्रसन्न भावों से उस कष्ट को सहन कर सकता है ।

२. का अरइ के आण दे, एत्थ पि अगहे चरे । शीतोष्ण उभय परीषह को जीतने वाले साधक के लिये अरतिकारक कुछ भी नहीं है । वह किसी भी स्थिति में म्लानमुख नहीं होता है । उसका चित्त क्षुब्ध नहीं होता है । उसके लिये पौद्गलिक आन द में भी हर्षविभोर होना, सुख में फूलना आदि कुछ भी नहीं होता है । इन दोनों ही अवस्थाओं को वह साधक आत्मा ग्रहण नहीं करता हुआ स यम में तटस्थ होकर विचरण करता है ।

प्रश्न–७ : सम्यग्दृष्टि को पाप नहीं लगता है या साधु को पाप नहीं लगता है ?

उत्तर– इस अध्ययन के दूसरे उद्देशे में इस विषयक सूत्र इस प्रकार है– **समत्तद सी ण करेइ पाव । आय कद सी ण करेइ पाव ।** इसके पूर्व वाक्य है– **तम्हातिविज्जो परम ति णच्चा । तम्हा=इसलिये; अतिविज्जो**=अति विद्वान, परम विद्वान, उत्तम ज्ञानी, परमज्ञानी, **परम ति णच्चा**=मोक्षमार्ग को समझकर; **समत्तद सी**=सदा समत्वदर्शी बनकर, सदा समत्व में रमण करने वाला होकर; **ण करेइ पाव** =पाप कर्मों का आचरण नहीं करता है ।

उसी प्रकार आत कदर्शी=कर्मों के आत क को भलीभाँति समझकर, कर्म स्वरूपको समझकर, उनसे सावधान रहने वाला आत कदर्शी कहा गया है । वह भी पाप कर्म का आचरण नहीं करता है । दशवैकालिक सूत्र में यतना पूर्वक स यम प्रवृत्ति करने वाले को पापकर्म का

ब ध नहीं करने वाला कहा है । क्यों कि वह यतना भाव में और आचरण में रमण कर रहा है । उसी प्रकार यहाँ समत्व में रमण करने वालों को और कर्मों से सावधान रहने रूप अप्रमत्त भाव में रमण करने वालों को भी पाप आचरण करने का निषेध किया है । जिससे पाप ब ध का निषेध तो स्वत: हो ही जाता है ।

विकल्प से सम्यग्दृष्टि अर्थ **समत्त** का किया जाता है और अपेक्षा से घटित भी किया जाता है । कि तु यहाँ शीतोष्णीय अध्ययन के प्रस ग में समत्व अर्थ अधिक उपयुक्त है और प्राचीन टीकाकार ने यह अर्थ किया भी है ।

प्रश्न–८ : चालणी के दृष्टा त से क्या कहा गया है ।

उत्तर– स सार में लौकिक रूचि से प्राणी अनेक प्रयत्नों से, अनेक स कल्प विकल्पों से, विविध उपायों से, दिन रात सुखी होने के लिये पुरुषार्थ करते रहते हक्त तथा अनेक अधिकारी या राजा आदि लोग अन्यों को, अन्य राज्यों को वश करने के लिये, अपने स्वाधीन करने के लिये वध, बन्धन, परिताप देना, मार काट आदि कर्तव्य करतेत्त । यह सब करते हुए भी प्राप्त सुख पुनः दुःख में पलटने वाले होतेत्त । वह सुख पाया नहीं पाया के बराबर होने वाला होता है । अथवा तो वे सुख नरक निगोद के कई गुणे, अन त गुणे दुःखों को प्राप्त कराने वाले होते हक्त । इसलये ऐसे सुखों की प्राप्ति का उनका प्रयत्न कुए से चालणी में पानी निकालने के समान अथवा बर्तन की जगह चालणी में पानी भरकर रखने के समान है । उसमें पानी भर भी गया तो टिकने वाला, स्थाई रहने वाला नहीं होता है । चालणी में क्षणिक पानी भरा दिख सकता है । वैसे ही क्षणिक पौद्गलिक सुख की उपलब्धि हो भी सकती है कि तु वह कुछ समय बाद ही दुःखों में परिवर्तित होने वाली होती है । इसलिये स सार के सुखों की प्राप्ति के पुरुषार्थ को चालणी में पानी भरने के समान बताया है ।

प्रश्न–९ : कर्म के स ब ध में इस अध्ययन में किस प्रकार समझाया है ?

उत्तर– कर्मों के लिये 'पर्यवजात या पर्यवजात शस्त्र' शब्द का प्रयोग करके कहा गया है कि इन कर्मों के नष्ट करने के उपायों को समझने वाला, अशस्त्रभूत स यम को अच्छी तरह समझने वाला है; स यम का सही विधि से पालन करने वाला है । अनेक पर्यायों, भेद-प्रभेदों वाले

कर्म को यहाँ पर्यवजात कहा गया है और उन कर्मों के शस्त्र अर्थात् क्षय करने के उपाय स वर निर्जरा है ।

दूसरे प्रकार से अनेक गुण पर्यायों वाली आत्मा है । उनके गुणों के लिये शस्त्र रूप है कर्म, आत्मा के गुणों का घात करने वाले, दूषित करने वाले कर्म **पर्यवजात शस्त्र** है । उनको जिसने अच्छी तरह समझ लिया है तथा समझकर उनसे बचने में जो पूर्ण रूप से कुशल है, वह पर्यवजात शस्त्र का खेदज्ञ है । वही अशस्त्रभूत स यम को समझकर, स्वीकार कर, पालन करने में कुशल होता है, सफल हो सकता है । इस प्रकार एक अपेक्षा से कर्म को **'पर्यवजात'** कहा है और दूसरी अपेक्षा में कर्म को **'पर्यवजात शस्त्र'** कहा गया है ।

कर्म से ही समस्त स सार की उपाधि– प्रप च,दु:ख, जन्म, मरण आदि उत्पन्न होते हत्त । उपाधियों-दु:खों का जनक यह कर्म ही है । जिनके कर्म अवशेष नहीं रहते हत्त, ऐसे अकर्मा=सिद्धों के कोई भी स सार व्यवहार=भवभ्रमण आदि प्रप च-दु:ख कुछ नहीं होता है । कर्म से ही समस्त जीवों का स सार व्यवहार, स सारचक्र चलता है ।

इसलिये कर्मों को पूर्ण रूप से समझकर उनका विचार रखना चाहिये और कर्म का मूल जो हिंसादि पाप है, उन पापों से बचने में सावधानी रखनी चाहिये तथा पापों को समझ कर सर्वविरति रूप स यम स्वीकार करना चाहिये । उसके बाद **अत**=आत्मा के गुणों का अ त करने वाले अथवा स सार के समस्त किनारों तक आत्मा को भटकाने वाले, अथवा आत्मा के समीप या भीतर रहने वाले पापों के भी मूल कारण राग और द्वेष हत्त, उन दोनों को कि चित् भी नहीं देखते हुए अर्थात् कहीं भी किसी में भी रागद्वेष नहीं करते हुए स यम की शुद्ध आराधना, निर्मल पवित्र भावों को रखते हुए करनी चाहिये । राग-द्वेषमय विचारों चि तनों को नहीं आने देना, आ जाय तो रहने ही नहीं देना, तत्काल ज्ञान, वैराग्य एव कर्म विवेकमय विचारों से निकाल देना चाहिये ।

इस प्रकार कर्म स्वरूप और स सार स्वरूप को जानकर बुद्धिमान साधक स सारी प्राणियों की रुचियों का और स सारी जीवों के विचार व्यवहारों का त्याग कर स यम भावों में, स यम विधियों में सदा पराक्रम–पुरुषार्थ करता रहे और कर्म क्षय कर मोक्ष तक पहुँचने में पुरुषार्थ करता ही रहे । – **(उद्देशा–१.)**

प्रश्न–१० : कषाय त्याग के स ब ध में यहाँ क्या कहा गया है ?

उत्तर– वीर साधक=मुनि क्रोध मान को अर्थात् चारों कषायों को आत्मा से सर्वथा अलग करने में, उनको निष्फल=नष्ट करने में प्रयत्नशील रहे और लोभ कषाय को महान नरक फलदाई समझकर उससे दूर रहे । –**(उद्देशा–२.)**

उवरयसत्थस्स = आश्रव त्याग करके स यम में उपस्थित और **पलिय तकरस्स** = कर्मों को क्षय करने में लगे साधक को सदा क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों का वमन कर देना चाहिये, पूर्णत: त्याग कर देना चाहिये । ऐसा ज्ञानियों का आदेश है, निर्देश है, कथन है, उपदेश है=मार्गदर्शन है । –**(उद्देशा–४.)**

जो क्रोध को अच्छी तरह समझ लेता है, उसके परिणामों को समझकर क्रोध पर विजय कर लेता है, उसे **कोहद सी** = क्रोधदर्शी कहा गया है । उसने वास्तव में क्रोध को समझ लिया है । उसी प्रकार आगे एक से एक को स ब धित करके कहा गया है कि– क्रोधदर्शी है वह मानदर्शी है । यों क्रम से ३. माया, ४. लोभ, ५. राग, ६. द्वेष, ७. मोह, ८. गर्भ, ९. जन्म, १०. मरण, ११. नरक, १२. तिर्यंच और १३. समस्त दु:खों को समझने वाला **दु:खदर्शी** है । इसलिये बुद्धिमान साधक इन क्रोध आदि से निवृत्त रहे, दूर रहे । अ त में दु:खो से भी मुक्त रहना कहा गया है । उक्त क्रोधादि तिर्यंच पर्यंत बारह स्थानों से जो दूर रहेगा, वह स्वत: दु:खों से भी दूर ही रहेगा ।

प्रश्न–११ : अन्य मान्यताएँ इस अध्ययन में किस प्रकार बताई है ?

उत्तर– कई लोग भूत और भविष्य को अर्थात् आत्मा की आगे की पीछे की अवस्थाओं को नहीं मानते हत्त । वे कहते हत्त– भूत-भविष्य कुछ भी नहीं है, ऐसी भूत और भविष्य की बातें करके वर्तमान को भी खराब करना ठीक नहीं है । भूत का दु:ख और भावी की चि ता से वर्तमान से भी व चित हो जाना पडता है, अत: यह कुछ भी फायदे की बात नहीं है । वर्तमान ही सब कुछ है । इसको सु दर और सुखद बनाकर, इसी का आन द लेना ठीक है ।

कोइ लोग अन्य तरह से भूत और भविष्य की विचारणा से अलग रहते हत्त, वे ऐसा मानते हत्त कि जो जैसा है वैसा ही बनेगा । मानव मानव ही बनेगा, स्त्री स्त्री ही बनेगी । जानवर तिर्यंच कभी

मानव नहीं बनता और मानव कभी देव या भगवान नहीं बनता । फिर यह त्याग नियम आदि क्रियाएँ करने से कोई प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है । जैसे हो वैसे ही रहने वाले हो । ऐसा कथन करके वे भी त्याग, व्रत, नियम, धर्माचरण साधना की उपेक्षा सिखाते हक्त । तथागत-बौद्धों का मानना है कि आत्मा क्षण विनाशी है और भूत और भावी अर्थ-पदार्थ कुछ नहीं है ।

कि तु इसी विषय में ज्ञानी इस प्रकार फरमाते हक्त कि जीव की भूत और भावी पर्यायों, अवस्थाओं के अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है । कि तु स यम साधना करने वाले त्यागी साधकों को भूतकाल को अर्थात् अपने पूर्व काल के सा सारिक सुखों को भी याद नहीं करना, उसके त्याग का खेद भी नहीं करना और उनके लिये वर्तमान में अभिमान भी नहीं करना; भविष्य की अर्थात् भावी सुख समृद्धि की, भौतिक सुखों की, चाहना आका क्षा भी नहीं करना ।

मुनि तो कर्म धुनन(क्षय) के मार्ग रूप स यम के विधि विधानों में उपस्थित होकर, उन्हीं के अनुपालन में अपना लक्ष्य बनाये रखे । तप स यम में शक्ति के अनुसार आत्मा को लगा दे, तल्लीन कर दे । इस प्रकार वह महर्षि क्षपक=कर्मों का निर तर क्षय करने वाला बने । तात्पर्य यह है कि एका तिक अर्ध ज्ञानियों की लुभावनी वर्तमान सुख स ब धी तर्कों में नहीं फँसते हुए स यम तप में शुद्ध श्रद्धा व लगन के साथ आगे बढते जाना चाहिये, यही महर्षियों के लिये तथागत=सर्वज्ञों का उपदेश है ।

प्रश्न-१२ : इस अध्ययन में अहिंसा को महत्त्व किन शब्दों में दिया है ?

उत्तर- (१) लोय सि जाण अहियाय दुक्ख ।- स सार के समस्त प्राणियों के विषय में जानो, अनुभव करो कि दु:ख सभी को अहितकर लगता है । दिये जाने वाले दु:ख को सामने वाला कोई भी जीव यह नहीं मानेगा कि इसने मुझे जो दु:ख दिया वह मेरा हित किया । समस्त प्राणियों को प्राप्त सुख हितकारी और प्राप्त होने वाला दु:ख अहितकारी=अप्रिय लगता है । **समय लोगस्स जाणित्ता एत्थ सत्थोवरए ।**-इस जगत स्वभाव को=सिद्धा त को=सर्व जीवों को दु:ख अप्रियता के **समय=**ध्रुव सिद्धा त को समझकर **एत्थ सत्थोवरए;** एत्थ =उन स सार के जीवों के प्रति समस्त प्रकार के शस्त्र=हिंसाकारी

आचरण से निवृत्त हो जावे । सर्व हिंसा त्याग रूप स यम स्वीकार करे ।

२. आर भज दुक्खमिण ति णच्चा ।- स सार में प्राप्त होने वाला दु:ख आर भजन्य है, ऐसा जाने । आर भ शब्द से मुख्यत: द्रव्य और भाव हिंसा का स केत है । यह जानकर दु:ख नहीं चाहने वालों को अहिंसक बनने की प्रेरणा की गई है । क्रमश: आर भ त्याग को महत्त्व दिया गया है । वह आर भ त्याग, हिंसा त्याग द्रव्य और भाव दोनों ही प्रकार का समझ लेना चाहिये ।

३. उववाय चवण णच्चा, अणण्ण चर माहणे । से ण छणे ण छणावए छण त णाणुजाणइ ।- जन्म मरण को और देवों के भी उपपात और च्यवन को जानकर मुनि(माहन) स यम का आचरण करे । वह स यम साधक किसी भी प्रकार से हिंसा न करे, न करावे एव हिंसा करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करे । यहाँ अस यम को मोक्षमार्ग से **'अन्य'** लक्षित करके स यम को मोक्षमार्ग का अनन्य आचरण माना है । अत: उसके लिये सूत्र में **'अणण्ण '** शब्द का प्रयोग है । माहन शब्द का अर्थ अहिंसक होता है । इसका प्रयोग मुनि के स बोधन रूप में हुआ है ।

४. उम्मज्ज लद्धु इह माणवेहिं, णो पाणिण पाणे समारभिज्जासि ।- मनुष्य भवरूपी यह अवसर अर्थात् स सार से तिरने का, ऊपर उठने का मौका प्राप्त कर, किसी भी प्रकार के प्राणियों के प्राणों का हनन नहीं करना चाहिये । किसी भी प्रकार की हिंसा की, समार भ की प्रवृत्ति का आचरण नहीं करना चाहिये अर्थात् हिंसा का सर्वथा त्याग करने का अनुपम अवसर मनुष्य भव ही है, जिसमें स पूर्ण अहिंसक या स यमी बना जा सकता है ।

५. स धि लोगस्स जाणित्ता, आयओ बहिया पास, तम्हा ण ह ता ण विघायए ।- स सार की स धि अर्थात् उसके तोडने का अवसर मनुष्यत्व या स यम अथवा मोक्षमार्ग को जानकर आत्मा के समान समस्त प्राणियों को समझो । **तम्हा**=इसलिये अर्थात् समस्त प्राणियों को आत्मा के समान समझने के कारण फिर किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये और किसी भी प्राणी की दूसरों से घात भी नहीं करवाना चाहिये ।

प्रश्न-१३ : इस शीतोष्णीय अध्ययन में 'जे एग जाणइ से सव्व जाणइ' इस सूत्र वाक्य की प्रास गिकता क्या है ?

उत्तर– अर्थ पर परा में इस सूत्र के शब्दों पर मात्र दृष्टिपात करके तत्त्व दृष्टि का अर्थ प्रचलित है । इस कारण कुछ प्रास गिकता समझने में कठिनाई होती है । इस आचारा ग सूत्र में शब्दों के अर्थ करने की जो पद्धति अनेक जगह स्वीकार की गई है उसी तरह यहाँ भी अन्य प्रकार से शब्दार्थ किया जाय तो उक्त कठिनाई समाप्त हो सकती है ।

विचारणा :– इसी अध्ययन के प्रथम उद्देशक में एक वाक्य और उसका अर्थ इस प्रकार है– **पडिलेहिय सव्व समायाय** = यहाँ पर प्रतिलेखना शब्द का भावात्मक अर्थ किया गया है । सर्व शब्द का स ख्यात्मक अर्थ न करके सर्व विरति का स क्षिप्त रूप मानकर प्रस गानुकूल अर्थ किया है, उपरोक्त कर्म स ब धी 'स पूर्ण' स्वरूप को जान-समझकर, उसका विचार कर, **सव्व** =स यम=सर्वविरति को स्वीकार करना चाहिये ।

इसी विधि से प्रश्न गत सूत्र के पूर्व आत्मा की, कषाय की और स्वकृत कर्म क्षय की बात की गई है और उस सूत्र के बाद भी प्रमत्त अप्रमत्त साधक की बात की गई है । उससे आगे भी स पूर्ण उद्देशे में इन्द्रिय विजय, कर्मजय, स यमप्रेरणा आदि विषयों का स ग्रह है । अत: इस सूत्र का अर्थ भी प्रस ग अनुसार इस प्रकार करना चाहिये– जो एक आत्म स्वरूप को जान लेता है, आत्म तत्त्व को अच्छी तरह समझ लेता है अर्थात् आत्मा के जन्म-मरण, कर्मब ध, स सार भ्रमण और पुन: कर्मक्षय एव मुक्ति प्राप्त कर सकने तक की सभी अवस्थाओं को जान, समझ लेता है, हृदय में श्रद्धा से धारण कर लेता है वह **सव्व** =**सर्व विरति**=स यम को भी समझ लेता है । सच्चा श्रेष्ठ जानना वहीं है कि जिसके साथ उसका स्वीकारना अर्थात् आचरण करना भी होता है । इस प्रकार इस सूत्र का यह अर्थ हुआ कि– जो एक आत्मस्वरूप को समझ लेता है, वह स यमस्वरूप को भी समझ लेता है, स्वीकार कर लेता है । जो स यम को समझकर स्वीकार लेता है, वह आत्मा के स्वरूप को भली भाँति=अच्छी तरह जान समझ लेता है ।

यहाँ इस सूत्र के पहले और पीछे स यम का ही विषय है और अध्ययन भी 'शीतोष्णीय' स यम ग्रहण पालन स ब धी है । इसी के अनुरूप इसके आगे के सूत्र और उनके अर्थ इस प्रकार हक्त– **सव्वओ**

पमत्तस्स भय । सव्वओ अप्पमत्तस्स णत्थि भय ।– प्रमादी को= स सारी को, पाप त्याग न करने वालों को सर्वत्र भय लगा रहता है । पाप त्यागी, स यमी, अप्रमत्त को कोई भय नहीं रहता है । वह सब तरह से निर्भय हो जाता है । अथवा सर्व प्रकार से जो प्रमाद में पडे हक्त उनको भय=कर्मब ध और दु:ख की प्राप्ति होती है और जो सर्वथा अप्रमत्त भाव, स यम भाव में लीन रहते हक्त, उन्हें कर्म ब ध और दु:ख रूप कोई भय नहीं होता है । यह प्रश्नोक्त सूत्र के बाद का सूत्र है । इसमें भी स यमलक्षी विषय का प्ररूपण है । इसके आगे– **जे एग णामे से सव्व णामे, जे सव्व णामे से एग णामे ।** – जो एक आत्मा को वश में कर लेता है, उस पर काबू पा लेता है; वह मन एव इन्द्रिय सभी को वश में कर लेता है । जो मन और इन्द्रियों पर काबू पा लेता है वह अवश्य आत्मविजेता होकर आत्मदमन कर लेता है । यहाँ पर कषाय और कर्म को लेकर भी समझाया जाता है । उसमें अन तानुब धी और अन्य कषाय लिया जाता है अथवा मोह कर्म और अन्य कर्म लिया जाता है । फिर भी आत्मा मन और इन्द्रिय स ब धी अर्थ अधिक अनुकूल है ।

दुक्ख लोगस्स जाणित्ता, व ता लोगस्स स जोग , ज ति वीरा महा जाण , परेण पर ज ति, णावक ख ति जीविय ।– स सार के दु:खों को जानकर वीर पुरुष समस्त स सार स ब धी स योगों का त्याग कर स यम साधना में लग जाते हक्त और साधना में आगे से आगे बढते रहते हक्त । कभी भी पुन: अस यम जीवन की चाहना नहीं करते हक्त ।

एग विगि चमाणे पुढो विगि चइ, पुढो विगि चमाणे एग विगि चइ– जो एक क्रोध कषाय को दूर करने में, छोडने में सफल होता है वह अन्य मान माया लोभ कषाय को भी त्याग सकता है और जो अन्य मान, माया, लोभ आदि किसी को भी त्यागने में सफल होता है, वह क्रोध का भी त्याग कर सकता है । तात्पर्य यह है कि जो किसी भी एक कषाय को दूर करने में, उस पर विजय पाने में सफल हो सकता है, वह अन्य किसी भी कषाय पर विजय प्राप्त कर सकता है, आत्मा से उन्हें अलग कर सकता है । अन्यत्र भी कहा गया है– **विगि च कोह , अविक पमाणो, इम णिरुद्धाउय स पेहाए ।** यहाँ पर भी क्रोध को दूर करने में **विगि च** शब्द का प्रयोग किया गया है । इसी को

लक्ष्य में रखकर ही ऊपर 'विगि च' शब्द का अर्थ किया गया है । **सड्ढी आणाए मेहावी, लोग च आणाए अभिसमेच्चा, अकुओभय** – बुद्धिमान साधक जिनाज्ञा में श्रद्धा करे और जिनाज्ञा के अनुसार श्रद्धा पूर्वक स सार भ्रमण स्वरूप को समझ कर, चि तन कर स यम स्वीकार करे अथवा सर्व जीवों को अभय दान दे ।

अत्थि सत्थ परेण पर , णत्थि असत्थ परेण पर ।– स सार में एक एक से बढकर पाप कार्य हक्त । कि तु समस्त पाप के त्यागरूप स यम तो एक ही है । हिंसा झूठ आदि विविध प्रकार के पाप हक्त जब कि उन सब का पूर्ण रूपेण त्याग की अपेक्षा स यम एक है । यहाँ स यमी के अस ख्य स यम स्थान रूप आत्म परिणामों की अपेक्षा नहीं है कि तु बाह्य पाप त्याग रूप स यम विधि की अपेक्षा है ।

इस प्रकार यह पूरा अध्ययन स यम आचार वाला है । तदानुसार "जे एग जाणइ से सव्व जाणइ"सूत्र का अर्थ स यम की अपेक्षा ही करना चाहिये ।

चौथा अध्ययन : सम्यक्त्व

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम और उसकी सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम 'सम्यक्त्व' है । इस अध्ययन के प्रथम उद्देशे के प्रार भ में धर्म के विषय में मौलिक श्रद्धा निष्ठा की प्रेरणा की गई है और श्रद्धा का स्वरूप भी बताया है । दूसरे उद्देशे में भी पीछे के वर्णन में श्रद्धा का विषय है । चौथे उद्देशे के अ त में अर्थात् इस अध्ययन के अ त में वीतराग मार्ग की श्रद्धा के साथ उसके पालन के प्रतिज्ञावचन कहे हक्त । इस प्रकार सम्यक्त्व की प्रमुखता से इस अध्ययन में उपदेश वचन होने से इसके सम्यक्त्व नामकरण की सार्थकता प्रतीत होती है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में उद्देशे कितने हक्त और उनमें मुख्य क्या-क्या विषय है ?

उत्तर– इसके चार उद्देशे हक्त । **प्रथम उद्देशे में**– तीर्थंकरों का अहिंसा

मूलक उपदेश, इस धर्म की महत्ता और अप्रमत्त भाव से आचरण की प्रेरणा है । **दूसरे उद्देशे में**– विवेक बुद्धि से आश्रव प्रस गों में भी निर्जरा, स सार रुचि वालों को दुःख स्थानों का अभ्यास–परिचय, मिथ्यामत वालों के हिंसा मूलक सिद्धात का ख डन और अहिंसा की स्थापना की गई है । **तीसरे उद्देशे में**– आत्म लक्ष्य की मुख्यता के साथ वैराग्य वृद्धि का उपदेश, शरीर के मोहत्याग युक्त वीरता से कर्म क्षय की प्रेरणा और अ त में कषाय और प्रतिकषाय त्याग की प्रेरणा की गई है । **चौथे उद्देशे में**– शरीर के अलक्ष्य की और कर्म क्षय की उत्कट प्रेरणा से उद्देशक का प्रार भ है । फिर कर्मों का विचार, उनकी सफलता, अ त में वीतराग मार्ग में चलने की प्रतिज्ञा के वाक्य हक्त ।

प्रश्न–३ : सम्यकत्व पुष्टि के लिये इस अध्ययन में क्या क्या मार्गदर्शन है ?

उत्तर– तीनों काल में हुए सभी तीर्थंकरों का उपदेश अहिंसा प्रधान है । किसी भी छोटे या बडे प्राणी को, किसी भी प्रकार से पीडा-दुःख-कष्ट नहीं देना चाहिये, यही सर्वज्ञों की ध्रुव आज्ञा है और धर्म का सार भी यही है – **सब जीव रक्षा यही परीक्षा, धर्म उसको जानिये । जहाँ होत हिंसा, नहीं है स शय, अधर्म वही पहिचानिये ।**

तीर्थंकर प्रभु साधना से केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त होने के बाद स पूर्ण लोक स्वरूप जानकर फिर पूर्ण उदारता एव अनुकम्पा भाव से जीवों को हितकारी इस अहिंसामूलक दयापूर्ण धर्म का बोध देते हक्त ।

राग, द्वेष, अज्ञान और मोह इन चार महान दोषों से रहित ऐसे सर्वज्ञ प्रभु का उपदेश और यह मार्ग सत्य है, यथार्थ है और अनुपम, अद्वितीय, पूर्ण शुद्ध एव आत्म उन्नति का मार्ग है । ऐसे उत्तम धर्म को प्राप्त कर सदा आत्म विकास करते रहना चाहिये । कभी भी किसी भी परिस्थिति में इसे छोडना नहीं कि तु ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि करते रहना चाहिये । सा सारिक रुचि और लोक प्रवाह से ऊपर उठकर प्रमाद से हटकर अप्रमत्त भावों से धर्म में पराक्रम करना चाहिये ।

स सार में कोई अज्ञान प्रभाव से हिंसा में ही धर्म और कल्याण बताते हों तो उन्हें यह समझना, समझाना चाहिये कि सर्वज्ञों ने अहिंसा प्रधान धर्म बताया है । अन्य धर्मों में भी दया को धर्म का मूल बताया जाता है एव आत्म साक्षी से सोचा जाय कि क्या मुझे दुःख अच्छा

लगता है या खराब ? उत्तर यही निकलेगा कि दु:ख तो सभी को अप्रिय और महान भयकारी ही होता है । सारे जगत के प्राणी दु:ख से हैरान होते हक्त । तो फिर किसी को दु:ख देना धर्म कदापि नहीं हो सकता । इस तरह अहिंसामूलक धर्म की श्रद्धा को पुष्ट करना चाहिये ।

प्रश्न–४ : शरीर के प्रति उपेक्षा, अपेक्षा और निर्मोह भाव से साधना का स देश इस अध्ययन में किस प्रकार दिया गया है ?

उत्तर– इस अध्ययन में शरीर के प्रति उत्कृष्ट दर्जे की उपेक्षा और निर्मोह भावना युक्त आचरण का उपदेश दिया गया है । मानव शरीर को अनुपम अवसर समझकर इस शरीर से जितना अधिक तप स यम का सार निकल सकता है, निकाल लेना चाहिये । इस शरीर का तनिक भी मोह नहीं करके इसे ऐसी भावना से देखना चाहिए कि यों ही इसे लोगों के द्वारा जला दिया जायेगा तो फिर उसको पुष्ट करने की अपेक्षा तप से सुखा डालने में, कृश करने में और अ त में अस्थि प जर सा कर देने में बुद्धिमत्ता है । आगम शब्दों में मा स और खून को कम कर देने की, शरीर कृश कर देने की स्पष्ट प्रेरणा है तथा गन्ने को पीलने और दुबारा, तिबारा, प्रपीडन, निष्पीडन किया जाने के समान बारम्बार विकट तप के द्वारा मानव भव और मानव देह का पूरा कस(सार) निकालने का महान आदर्श उपदेश दिया गया है ।

इतने उत्कट विकट उपदेश प्रेरणा प्रवाह के साथ एक विवेक भी रखा गया है। जिसमें इतनी बडी शरीर उपेक्षाओं और निर्मोहता के साथ अपेक्षा का तत्त्व भी निहित है । वह यह है कि इन महान वैराग्य पूर्ण विकट तप साधनाओ के साथ सबसे बडा विवेक यह भी होना चाहिये कि ज्ञान और वैराग्य से परिपूर्ण इस शरीर निरपेक्ष निर्मोह साधना में आत्मा के समाधि भावों की उच्चता, अ तर्मन की प्रसन्नता और उत्साह बराबर है या नहीं ? आत्म परिणाम, आत्म समाधि सु दरतम है तो उस उत्कट साधना को बढाते ही रहना चाहिये और यदि आत्म समाधि में, आत्म उच्च भावों में रुकावट प्रतीत हो, शारीरिक क्षमता का उल्ल घन हो तो कुछ शरीर को विराम देकर पुन: साधना को बलशील बनाने का विवेक रखना चाहिये । विवेक लक्ष्य नहीं होने पर अविवेक हो जाने पर कभी नुकशान भी हो सकता है ।

इस प्रकार सर्वज्ञोक्त इस जिनशासन में उत्कट और घोर

साधना में भी विवेक सर्वत्र अपेक्षित है । अपनी वास्तविक क्षमता है तो घोर से घोर दुष्कर तप साधना के लिये भी निषेध नहीं, प्रेरणा ही है । ऐसे प्रेरक कुछ आगम वाक्य ये हक्त– **इह आणाक खी प डिए अणिहे, एग अप्पाण स पेहाए धुणे सरीर । कसेहि अप्पाण , जरेहि अप्पाण , जहा जुण्णाइ कट्ठाइ हव्ववाहो पमत्थइ । एव अत्तसमाहिए, अणिहे ।**– जिनाज्ञा की आका क्षा, अपेक्षा रखने वाला प डित मुनि अपनी आत्मा के एकत्व का विचार कर शरीर से अपने भिन्नत्व का विचार कर शरीर को धुन डाले । मतलब यह है कि कर्म क्षय करने में शरीर को लगा देवे, कृश कर देवे, जीर्ण कर देवे । जिस तरह अग्नि जीर्ण काष्ट को शीघ्र नष्ट कर देती है, उसी तरह शरीर के माध्यम से कर्मों को नष्ट कर दे ।

यहाँ अ तिम वाक्य में विवेक और शरीर की अपेक्षा की बात कही है कि **एव अत्तसमाहिए–** इस प्रकार करते हुए भी समाधि का ध्यान रखे । कि तु **अणिहे**– शरीर के प्रति मोह भाव नहीं करते हुए ।

इस प्रकार शरीर की निर्मोहता के साथ आत्म समाधि=सहनशीलता = प्रसन्नता का भी निर्देश किया गया है । अन्य भी वाक्य इस प्रकार है – **आवीलए पवीलए णिप्पीलए, जहित्ता पुव्व स जोग, हिच्चा उवसम । विगि च म स सोणिय , एस पुरिसे दविए, वीरे, आयाणिज्जे वियाहिए । जे धुणाइ समुस्सय , वसित्ता ब भचेर सि ।** भावार्थ प्राय: ऊपर कह दिया है । विशेष यह है कि स यमी को लक्ष्य करके यह उपदेश किया गया है । ऐसी शरीर निर्मोही उत्कट साधना करने वाले को आदर्श स यमवान, वीर, पूजनीय बताया गया है । जो स यम में(ब्रह्मचर्यवास में) स्थिर रहकर **'समुस्सय '** इस शरीर को और कर्म समूह को क्षय करने में लगा रहता है ।

यह आदर्श उपदेश उन मोक्ष साधकों के प्रति लक्ष्य वाला है, जिन्हें स यम ग्रहण करने के बाद कर्म क्षय कर शीघ्र मुक्ति प्राप्त करने मात्र के लक्ष्य से, इस मानव देह का उत्कृष्टतम सदुपयोग कर स पूर्ण लाभ प्राप्त करना होता है । कि तु जो स यम ग्रहण करने के बाद कर्म क्षय करने मात्र के लक्ष्य के साथ अनेक सामाजिक, ऐहिक उद्देश्यों में या शरीर प्रति निर्मोह भाव की कमी में तथा स वेग निर्वेद भाव की सुस्ती में प्रवहमान होते हक्त, उनके लिये उक्त आचरण अशक्य जैसा

लगता है । मोक्ष प्राप्ति की उत्कृष्ट लगन और उत्साह के बिना उपरोक्त शरीर निर्मोहता की पराकाष्टा का आचरण स भव नहीं है ।

सुस्त उत्साह के साधकों को चाहिये कि वे अपने जीवन में पुन: इस सूत्र से प्रेरणा पाकर, ज्ञान चि तन एव वैराग्य के सि चन से अवशेष जीवन में या अ तिम जीवन में सूत्रोक्त निर्मोह भाव, आत्म जागृति को पैदा कर कर्मों का क्षय करने में अपनी पूर्ण शक्ति लगा देवे ।

प्रश्न–५ : क्रोध कषाय या प्रतिकषाय के लिये यहाँ क्या कहा है ?

उत्तर– इस अध्ययन के तीसरे उद्देशे में क्रोध, प्रतिक्रोध स ब धी उपदेश वचन हक्त, उनके भाव इस प्रकार है– शरीर के प्रति निर्मोह भाव युक्त उत्कट साधना के उपदेश के अन तर ही क्रोध त्याग का उपदेश प्रार भ किया गया है । उसका तात्पर्य यह भी है कि उत्कट तपस्या और देह कष्टमय साधना के बढने के साथ क्रोध भी घटना चाहिये । क्रोध न बढ जाय यह भी सावधानी रखनी चाहिये । सावधानी रखकर साधक को अपने क्रोध भाव को दूर करते रहना चाहिये । किसी भी प्रस ग या स योग से विचारों को च चल नहीं होने देना चाहिये । स्थिर चित्त से क्रोध को कभी नहीं आने देना चाहिये, निकालते रहना चाहिये, निष्फल करते रहना चाहिये ।– **विगि च कोह , अविक पमाणो ।**

मनुष्य जीवन को अल्पायुष्क जानकर, विचार कर और क्रोध से होने वाले ऐहिक और पारलोकिक दु:खों को जानो, देखो और विचार करो । क्रोध के कारण जीव नरकादि गतियों में विविध प्रकार के कष्टों, दु:खों का अनुभव करते हक्त, दु:ख पाते रहते हक्त ।– **झ णिरुद्धाउय स पेहाए । दुक्ख च जाण अदु आगमेस्स । पुढो फासाइ च फासे ।** उन क्रोधजन्य कष्टों दु:खों से अभिभूत जीव इधर से उधर तडफते भागते रहते हक्त अथवा अनेक योनियों में भटकते रहते हक्त ।– **लोय च पास विफ दमाण ।**

जो पाप कर्मों का त्याग करके प्रव्रजित हो गये हक्त वे अणगार 'अनिदान' अर्थात् क्रोध, क्लेश, वैरभाव आदि से रहित कहे गये हक्त अर्थात् मुनि अनिदान=कषाय त्यागी होते हक्त । अत: स यम साधना में उपस्थित उत्तमज्ञानी विवेकी आत्माओं को स्वय क्रोध करने का त्याग करने के साथ ही किसी के क्रोध करने के सामने प्रतिशोध रूप में प्रत्युत्तर में भी कभी क्रोध नहीं करना चाहिये । वैर बदले की भावना

भी नहीं रखना चाहिये । हृदय में किसी के प्रति क्रोध की ज्वलन भी नहीं रखनी चाहिये । क्यों कि मुनि **'अणियाणा'** निदान रहित अर्थात् क्रोध प्रतिज्ञा रहित कहे गये हक्त । **जे णिव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं, अणियाणा ते वियाहिया । तम्हातिविज्जो णो पडिस जलिज्जासि ।**

यहाँ स पूर्ण विषय क्रोध की अपेक्षा कहा गया है । इसी प्रकार सभी कषायों को दु:ख का कारण और भवभ्रमण का कारण समझना चाहिये मुनि सभी कषायों का त्यागी होता है, अत: उसे समस्त चारों कषायों से दूर रहते हुए, स यम साधना में सावधानी के साथ प्रगति करते रहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि उत्कट तप साधना के साथ क्रोध त्याग भी जैसे जरूरी है वैसे मान-गर्व भी नहीं बढे और माया लोभ से भी साधक सावधान रहे । इस प्रकार इस तीसरे अध्ययन में शरीर का ममत्व त्याग, उत्कट तप और कषाय त्याग का सुमेलपूर्वक उपदेश दिया गया है ।

पाँचवाँ अध्ययन : लोकसार

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम और उसकी सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम 'लोकसार' है । क्वचित् 'आव ति' भी इसका नाम कहा गया है । अध्ययन के आदि शब्द को लेकर भी नाम-करण होता है । इस अपेक्षा से अध्ययन के प्रथम सूत्र में आये प्रथम 'आव ति' शब्द के अनुसार नाम है जो कि अर्थ प्रमुख नाम नहीं है ।

आध्यात्मिक दृष्टि से और लौकिक दृष्टि से स सार में सारभूत पदार्थ दो तरह के होते हक्त । लौकिक दृष्टि में धन, परिवार, सुख सामग्री की उपलब्धि, शरीर एव भौतिक श्रेष्ठतम पदार्थों को सारभूत समझा जाता है । आध्यात्मिक दृष्टि से सारभूत पदार्थ– आत्मा, मोक्ष, मोक्ष प्राप्ति के साधन धर्म, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, कर्मक्षय के विविध उपाय, मोक्ष प्राप्ति में सम्यग् पुरुषार्थ आदि है । ये सभी लोक में आत्मा के लिये परम हितकारी सार तत्त्व हक्त । ऐसे सर्वोत्तम सार तत्त्वों का इस अध्ययन में वर्णन होने से इस अध्ययन का यह 'लोकसार' नाम सार्थक है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में कितने उद्देशे हक्त और उनमें मुख्य क्या वर्णन है ?

उत्तर– इस अध्ययन में छह उद्देशे हक्त । उनमें क्रमश: मुख्य वर्णन इस प्रकार है– **प्रथम उद्देशक में–** स सारी जीवों की परिणति, भोगासक्ति एव उसका क्रमिक परिणाम, ब्रह्मचर्य, सुरक्षा, अयोग्य एकाकी भिक्षु इत्यादि विषयों का वर्णन करके अ त में अज्ञानवादी का कथन है । **दूसरे उद्देशक में–** अमूल्य अवसर मानव देह, सम्यक् पर्याय, शरीर स्वभाव, परिग्रह, ब्रह्मचर्य और परिणामों से ब ध तथा मुक्ति का स केत करके अ त में अप्रमत्त साधना की प्रेरणा दी गई है । **तीसरे उद्देशक में–** अपरिग्रही स यमी और उसकी त्रिविध अवस्था, इन्द्रिय विषय आसक्ति और पाप सेवन से स यमच्युत होना, आत्मयुद्ध, सम्यक् स यम पालन प्रेरणा, अ त में वास्तविक मुक्त, विरत का कथन है ।**चौथे उद्देशक में–** अपरिपक्व मुनि को एकाकी चर्चा निषेध एव गुरुसानिध्य प्रेरणा, स्त्री परीषह एव ब्रह्मचर्य समाधि उपायरूप शिक्षा वचन कहे गयेहक्त। **पाँचवें उद्देशक में–** महर्षि को द्रह की उपमा, सम्यक्त्व की विशुद्धि, स यम विचारों में सम्यक् असम्यक् विविध परिणति । अहिंसक भाव की समझाइस, अ त में आत्मवादी आत्मज्ञानी का कथन है । **छट्ठे उद्देशक में–** अनाज्ञा से आज्ञा में, अन्यमत से स्वमत में स्थिर रहने की प्रेरणा, आगमानुसार स यम पराक्रम प्रेरणा, स सार श्रोत और उससे मुक्ति, अ त में सिद्धात्मा के अनेक लक्षण परिचय कहे हक्त ।

प्रश्न–३ : ब्रह्मचर्य की सफल आराधना के विषय में यहाँ किस प्रकार प्रतिपादन किया गया है ?

उत्तर– उत्तराध्ययन सूत्र के १६ वें अध्ययन में दसविध ब्रह्मचर्य समाधि, सावधानी का वर्णन करने के बाद में १४ वीं गाथा में कहा है– **स का ठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणव ॥**

अन्य भी समस्त श का स्थानों को अर्थात् ब्रह्मचर्य भावों के बाधक तत्त्वों को जानकर उनका पूर्णतया त्याग करे, वर्जन करे, उन प्रवृत्तियों से अलग रहे । उत्तराध्ययन की इस गाथा में आये **स का ठाणाणि** शब्द के अनुरूप यहाँ आचारा ग के इस अध्ययन में **स सय** शब्द से विषय प्रार भ किया गया है, यथा– **स सय परियाणओ, स सारे परिण्णाए भवइ । स सय** =ब्रह्मचर्य परिणामों में स शयात्मक स्थिति पैदा

करने वाले समस्त तत्त्वों को, **परियाणओ** अर्थात् ज्ञ परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा से उनका वर्जन करने वाला अर्थात् ऐसे समस्त श का स्थानों को, परिणामों को, चल विचल कर देने वाली प्रवृत्तियों-आचरणों को, समझकर उनका जो त्याग करता है, उनसे दूर रहता है और ब्रह्मचर्य के परिणामों को दृढ और निर्मल रखता है, वही **'स सारे परिण्णाए'**स सार का त्याग करने वाला अर्थात् स सार मुक्त होने वाला हो सकता है । जो ब्रह्मचर्य में श का पैदा करने वाली प्रवृत्तियों को समझे नहीं अथवा समझकर उनसे दूर रहे नहीं, अपने को उनसे सुरक्षित रखे नहीं, वह स सार का त्याग करने वाला याने मुक्ति प्राप्त करने वाला नहीं है ।

जे छेए=जो कुशल, विवेकी, मोक्षार्थी स यम साधक होते हक्त, **से सागारिय ण सेवइ**=वे कुशील का सेवन कदापि नहीं करते हक्त । कि तु कोई निष्फल साधक **कट्टु एव अविजाणओ**=मैथुन का सेवन करके भी अपने उस असद् आचरण को छिपाता है, गुरु के समक्ष भूल प्रकट कर, आलोचना कर शुद्धि भी नहीं करता । वह उसकी **बिइया म दस्स बालया**=म दबुद्धिवाले=समय पर विवेक से आत्मस यम या आत्मरक्षा नहीं कर सके, इसलिये विवेक बुद्धिहीन है । ऐसे साधकों की द्वितीय अज्ञानता=मूर्खता है कि जो दोष की शुद्धि भी नहीं करे या पूछने पर भी अनजान बन जावे, वह स्वय के लिये ही कर्मों से भारी बनने में दुहरा अपराध हो जाता है । इसलिये स यम साधना में तत्पर साधक को पहले से ही सावधान रहना चाहिये अर्थात् श का स्थान= ब्रह्मचर्य के स शयकारी स्थानों से सावधान रहते हुए **लद्धा हुरत्था**= कदाचित् काम भोग सेवन के स योग या परिणाम उपस्थित हो जाय तो भी **पडिलेहाए आगमित्ता**=चि तन अनुप्रेक्षणपूर्वक अपने कर्तव्य को जानकर या गुप्त दोष सेवन के परिणाम का विचार कर, **आणविज्जा अणासेवणयाए**=अपनी आत्मा को कुशील सेवन नहीं करने के लिये ही आज्ञापित करे, आज्ञा दे अर्थात् आत्मा पर अनुशासन–अ कुश रखकर कदापि कुशील सेवन नहीं करे ।

पासह एगे रूवेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे– स्त्री के रूपों मे आसक्त होकर विविध परिणति में परिणत होने वाले कई एक जीवों को या साधकों को देखो कि उनकी क्या दशा होती है ? **एत्थ फासे पुणो**

पुणो– वे बार बार कष्टों को प्राप्त करते हक्त । उन्हें इस भव में अपमान, असम्मान और विविध यातनाएँ तथा तिरस्कार की प्राप्ति होती है । भवा तर में दुर्गति के अनेक दु:खों को भुगतना पडता है । यह जानकर स शयकारी स्थानों को, ब्रह्मचर्य में खतरे की स्थिति पैदा करनेवाली प्रवृत्तियों को जानकर एव समझकर उनका त्याग करने में सावधान रहना चाहिये । ऐसी सावधानी रखने वाला साधक निराबाध रूप से ब्रह्मचर्य में सफल हो सकता है ।

प्रश्न–४ : बाधाकारी–स शयकारी स्थान कौन से हक्त ?

उत्तर–यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत अध्ययन में नहीं है कि तु उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, प्रश्नव्याकरण सूत्र एव आचारा ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्क ध के भावना अध्ययन में उन स शयों का, खतरों का वर्णन है । उसका सार यह है कि ब्रह्मचर्य साधक (१) स्त्री स पर्क न बढावे (२) उनके शरीर या अ गोपा ग देखने में चित्त या दृष्टि न लगावे (३) तत्स ब धी चि तन चर्चा न करे (४) अत्यावश्यकताओं को छोडकर स्त्रियों से सदा दूर रहे (५) आहार की मर्यादा का, विगय सेवन के त्याग का और तपस्या करने का ध्यान रखे, लक्ष्य रखे तथा उणोदरी तप करने का लक्ष्य रखे (६) शब्द, रूप, ग ध, रस, स्पर्श इन पाँचों इन्द्रिय विषयों से भी उदासीन भाव बढाता रहे, उनके प्रवाह में नहीं बहे । आगम स्वाध्याय चि तन मनन ध्यान करता रहे । आत्मार्थ प्रेरक आगम उपदेश वाक्यों से आत्मा के स यम ब्रह्मचर्य के परिणामों को पुष्ट करते हुए जीवन पर्यंत उच्च आराधना में लगा रहे ।

प्रश्न– ५ : ब्रह्मचर्य में बाधा उत्पन्न करनेवाले, ब्रह्मचर्य समाधि परिणामों में स शय युक्त स्थिति रूप चल-विचल परिणाम कर देने वाले प्रस गों के प्रति पहले से ही सावधानी रखने हेतु उपरोक्त उपदेश विषय सूचित किया गया है । कि तु यदि किसी भी प्रकार की असावधानी हो जाने से चल विचल परिणाम उत्पन्न हो जाय तो क्या करना चाहिये ?

उत्तर– ऐसी परिस्थिति में अनाचार सेवन–कुशील सेवन कदापि नहीं करना चाहिये । कि तु चल-विचल परिणामों की चिकित्सा इस विधि से करना प्रार भ कर देना चाहिये–**उबाहिज्जमाणे गाम धम्मेहिं**=इन्द्रिय स्वभाव से प्रबल बाधित हो जाने पर, प्रबल रूप से काय परिचारणा

हेतु पीडित हो जाने की स्थिति उपस्थित हो जाने पर अर्थात् चित्त की आकुलता व्याकुलता कुशील सेवन के लिये अ त:करण को उत्प्रेरित करने लग जाय तो साधक को विलम्ब किये बिना योग्य चिकित्सा का तत्काल निर्णय लेकर उसे कार्यान्वित कर देना चाहिये । **१. अवि णिब्बलासए**=भोजन पदार्थों में अत्य त सामान्य पदार्थ ही ग्रहण करे । समस्त मनोज्ञ स्वादिष्ट विशिष्ट पदार्थों का त्याग कर अल्प द्रव्यों से ही आहार पूर्ण करे । **२. अवि ओमोयरिय कुज्जा**=अत्य त जरूरी होने पर बहुत कम भोजन करके चला देवे, अत्यधिक उणोदरी करे । **३. अवि उड्ढ ठाण ठाएज्जा**=यदि और आवश्यकता हो तो निर तर अधिक से अधिक खडा रहे, कि तु बैठे या सोवे नहीं । **४. अवि गामाणुगाम दूइजेज्जा**=अथवा तो ग्रामानुग्राम विहार कर देवे । **५. अवि आहार वोच्छि देज्जा**= अथवा तो आहार का स पूर्ण त्याग रूप तपस्या प्रार भ कर दे या आजीवन अनशन कर लेवे । **६. अवि चए इत्थीसु मण** = किसी भी प्रकार से, जिस तरह भी स भव हो स्त्री के सेवन से मन को निवृत्त कर लेवे ।

स्त्री स सर्ग–विषय सेवन में कभी तो कल्पित सुख से पहले दु:ख होता है और कभी कल्पित सुख के बाद दु:खों का सामना करना पडता है । इस प्रकार ये स्त्री सुख आत्मा के लिये महान अशा ति और कर्म ब ध की वृद्धि कराने वाले हक्त क्यों कि इसमें मोह के उदय से तीव्र आसक्ति और अविवेक प्रमुख बन जाता है । अत: आत्म साधकों को भलीभाँति विचार कर भावी दु:खद परिणामों को जानकर विषय सेवन नहीं करने में ही आत्मा को अनुशासित करने में सफल रहना चाहिये । विवेक युक्त कोई भी निर्णय लेकर अनाचार से आत्मा की सुरक्षा कर लेनी चाहिये । इस स ब धी मूल पाठ इस प्रकार है– **पुव्व द डा पच्छा फासा, पुव्व फासा पच्छा द डा । इच्चेते कलहा स गकरा भव ति । त पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए ।**

से णो काहिए, जो पासणिए, णो स पसारए, णो मामए, णो कयकिरिए, वईगुत्ते, अज्झप्पस वुडे परिवज्जइ सया पाव , एव मोण समणुवासिज्जासि । फिर भविष्य में कभी स्त्री स ब धी कथा विकथा न करे, काम कथाएँ न करे । वासनापूर्ण या आसक्ति दृष्टि से स्त्रियों को न देखे । परस्पर स्त्रियों से स पर्क लेन देन आदि न करे ।

उनके प्रति ममत्व अथवा रागभाव नहीं बढावे । शरीर का साजसज्जा, विभूषा वृत्ति न करे कि तु वाचालता कम करके मौन रखे, वचन में विवेक करे । परिणामों को स वृत करे, अशुभ में न जाने दे, शुभ में स लग्न रखे । ज्ञान वैराग्य के स स्कारों की वृद्धि करके आत्म परिणामों को परम पवित्र रखे और पाप का सदा वर्जन करे । इस प्रकार साधुत्व भाव का सम्यक् पालन करे ।

इस सूत्र के आठवें अध्ययन में अ तिम एक चिकित्सा बताते हुए कहा गया है कि किसी भी प्रकार से सुरक्षा कर सकना अस भव सा हो जाय तो ब्रह्मचर्य भ ग न करने के आगम आदेश परिणामों से भावित अ त:करण युक्त होकर फाँसी आदि कोई भी योग्य विधि से अपना जीवन समाप्त करना भी स्वीकार कर ले । कि तु स्त्री सेवन-कुशील सेवन में अपनी आत्मा को कदापि न लगावे । **तवस्सिणो हु त सेय , ज एगे विहमाइए, तत्थावि तस्स काल परियाए, से वि तत्थ विअ तिकारए ।** ऐसा करने पर मृत्यु प्राप्त हो जाय तो भी वह आराधक है, कर्मों का अ त करने वाला होता है ।

प्रश्न-६ : अकेले विचरण करने वालों के लिये इस अध्ययन में क्या निर्देश किये गये हक्त ?

उत्तर- अन्य आगमों में अकेले विचरण के आदेश निर्देश एव निषेधरूप विविध पाठ उपलब्ध हक्त । कर्मजन्य परिस्थितिक एकाकी विहार का कथन करते हुए कई हित शिक्षाएँ भी, सावधानी से स यम जीवन पार करने की शुभ अपेक्षा से दी गई है । तो कहीं योग्य साथी अथवा योग्य आचार के अभाव में अनुपलब्धि में भी एकलविहार की प्रेरणा की गई है । कहीं वृद्ध अतिवृद्ध एकाकी विहारी के प्रति भी सहयोग भावना का स देश है । इन सभी स्थलों पर वर्णित एकाकी विहारी उच्च योग्यता से एव गुरु आज्ञा से पडिमा धारण कर उत्कट साधना करने वाले नहीं है कि तु परिस्थिति से पराधीन होकर, समूह में निर्वाह होना स भव न हो सकने से अर्थात् ऐसे विचित्र कर्मोदय के कारण गच्छ छोडकर एकाकी विहार करने वालों के विषय का कथन है । इसी सूत्र में आगे छट्ठे अध्ययन में ऐसे ही परिस्थितिक एकाकीविहारी की साधना की प्रशस्तता का वर्णन करते हुए उस साधक को बुद्धिस पन्न कहा गया है ।

कि तु इस अध्ययन में अयोग्य, अपरिपक्व अवस्था में एकाकी विहार करने वालों के स ब ध में इस प्रकार कहा गया है- **इहमेगेसि एग चरिया भवइ से बहु कोहे...,** इस जिन शासन में कोई कोई साधु की दूषित एकचर्या होती है उसका मुख्य कारण है वे विषय, कषाय और प्रकृति की अत्य त विषमता के कारण समूह से निकल जाते हक्त या निकाल दिये जाते हक्त (१) वे अति क्रोधी होते हक्त (२) महान घम डी होते हक्त (३) बहु मायावी होते हक्त (४) सीमातीत लोभी होते हक्त (५) आहार, वस्त्र, शय्या आदि में या लोगों में अति आसक्ति वाले स्वभाव के होते हक्त । (६) बहुत ढोंग करने वाले होते हक्त या नट की तरह विविध रूपों में पेश आते हक्त । (७) बहुत धूर्त स्वभाव के या अविश्वास पात्र स्वभाव वाले होते हक्त । (८) स्वय के विचित्र स्वभाव और फिर लोगों के विचित्र व्यवहार के कारण चलचित्त होकर जब कभी भी स कल्प विकल्पों में डूब जाने वाले होते हक्त । (९) आश्रव के कार्यों में आन द मानने वाले अथवा अनेक आशाओं के वशवर्ती हो जाते हक्त अर्थात् लोकेषणा और यशकीर्ति में पड जाते हक्त । (१०) कर्मों से घिरे हुए अर्थात् अनेक अशुभ कर्मों से भारी कर्मा होते हक्त । (११) अपने को सदा उन्नत आचारी होने का कथन या दिखावा करते रहते हक्त । फिर भी (१२) "मुझे कोई देख नहीं ले" ऐसी आश का से छिप-छिप कर पापाचरण या स यम को दूषित करनेवाले आचरणों को करते रहते हक्त (१३) इस प्रकार वे अज्ञान प्रेरित मति से (क्यों कि सच्चा ज्ञान तो सन्मार्ग की प्रेरणा करेगा) और कर्म के उदय से सतत मूढ, मोहितमति होकर धर्म के मुख्य उद्देश्य से च्युत हो जाते हक्त । उनका धर्म जानना भी नहीं जानने के योग्य हो जाता है । इस प्रकार **प्रथम उद्देशक में** सूचित इन १३ दोषों में से अनेक दोषों-अवगुणों से स युक्त होकर अयोग्य एकलविहारी निंदित होते हक्त ।

अवियत्त=अपरिपक्व अवस्था- (१) गुरु सानिध्य से जिन्होंने स यम साधना के समस्त अ गो का पूर्ण अभ्यास नहीं किया है अर्थात् दस प्रकार की समाचारी, दसविध क्षमा आदि धर्म, महाव्रत, समिति, गुप्ति एव प्रतिलेखन, प्रमार्जन, परिष्ठापन विधि आदि का पूर्ण अभ्यास अनुभव नहीं किया है । (२) स्वमत-परमत का अनुभव योग्य ज्ञान, अध्ययन नहीं किया है । एका तवादियों के प्रश्नों को हल करना,

समाधान करना नहीं सीखा है और स्वसिद्धा त जैनागमों का अच्छी तरह अभ्यास नहीं किया है (३) दीक्षा पर्याय तीन वर्ष से कम है, और (४) वय से चालीस वर्ष से कम है । इन सभी को अव्यक्त में माना गया है अर्थात् एकलविहार के अयोग्य गिना गया है । ऐसे भिक्षुओं को एकलविहार नहीं करके उक्त योग्यता की प्राप्ति तक धैर्य के साथ समूह में, गुरु आज्ञा=आचार्य निश्रा से ही रहना चाहिये ।

ऐसे अव्यक्त भिक्षु का ग्रामानुग्राम विचरण भी दुर्गमन=निंद्य होता है अथवा अनेक कष्ट उपसर्ग उपद्रवों से दुष्कर हो जाता है । उसका पराक्रम=पुरुषार्थ भी निंद्य होता रहता है अर्थात् उससे कई भूलें होती रहती हक्त और लोग भी उसकी भूलें देखते रहते हक्त । इस प्रकार उसका विचरण और प्रवर्तन दोनों ही कष्ट भरे होते हक्त ।

ऐसे अव्यक्त साधक किसी के द्वारा कुछ भी प्रतिकूल या अमनोज्ञ वचन प्रयोग होते ही कुपित, उत्तेजित हो जाते हक्त और प्रश सा और अति सम्मान मिलने पर अभिमान में भर जाते हक्त तथा स्वय को बहुत कुछ समझने लग जाते हक्त । इस प्रकार वे महान मोह कर्म रूप क्रोध, मान की प्रबलता में मूढ बन जाते हक्त; नम्रता, लघुता, शा ति आदि गुणों से विकल हो जाते हक्त ।

अनेक प्रकार की बहुत सारी बाधाओं स कटों के उपस्थित हो जाने पर और बारम्बार आ जाने पर उन्हें पार करना उसके लिये कठिन हो जाता है । तब वह घबराकर कई बार **कि कर्तव्य** विमूढ सा बन जाता है । उन विविध परिस्थितियों में कब कैसा निर्णय लेना, कब कितना धैर्य रखना, कैसी विवेक और शा ति भावों से निर्णय लेना इत्यादि अव्यक्त साधु के लिये स भव नहीं हो सकता । ऐसी स्थिति में गुजरना न पडे, इसके लिये ज्ञानियों ने पहले से ही यह निर्देश और परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराया है ।

ऐसे अव्यक्त=पूर्ण अपरिपक्व, अयोग्य भिक्षुओं को धैर्य के साथ गुरु सानिध्य में, गुरु निश्राय में रहकर ही अपनी समस्त आवश्यक योग्यताओं, पात्रताओं का विकास करना चाहिये । उसके पूर्व एकल-विहार के स कल्प या परिस्थिति उत्पन्न हो भी जाय तो उसे आगे के लिये धका देना चाहिये, गम खाकर समय पसार करना चाहिये अथवा अन्य आचार्य आदि की निश्रा लेकर रहना चाहिये और उसी में हित

समझना चाहिये । उक्त उपदेश वाक्यों का आगमकार का आशय भी यही है ।क्यों कि ऐसी अयोग्यता में किया गया एकलविहार सच्ची आत्मशा ति और समाधि की प्राप्ति कराने में सफल नहीं हो सकता ।

ऐसा अपरिपक्व साधक कभी एका तवादियों के कुतर्क जाल में फँसकर या कभी सुखशीलता में लुभावित होकर स यम-रत्नत्रय के सिवाय सम्यक्त्व रत्न से भी हाथ धो बैठ सकता है, व चित हो सकता है । अथवा कहीं कुलटा स्त्रियों के च गुल में फँसकर पूर्ण पतित हो सकता है । इन दृष्टियों से इस अध्ययन में अयोग्य अपरिपक्व साधकों के लिये एकलविहार अहितकर बताया है एव प्रकृति की विषमता वालों के जीवन को भी अपवित्र निंदा पात्र और धर्म रहित बताया है ।

प्रश्न-७ : साधकों की त्रिविध अवस्थाएँ किस प्रकार कही गई है ?

उत्तर- (१) उन्नत भावों से स यम का पालन प्रार भ से अ त तक करने वाले । (२) उन्नत भावों से स यम पालन करते हुए फिर गिरावट में, शिथिल आचार में चले जाने वाले । (३) प्रार भ से ही अवनत स यम वाले होने से फिर उससे नहीं गिरने वाले । तात्पर्य यह है कि (१) शुद्धाचार से शुद्धाचार में (२) शुद्धाचार से शिथिलाचार में (३) प्रार भ से ही शिथिलाचार में । यहाँ तीसरे भ ग में गृहस्थों को माना जाता है । कि तु स यम साधको का वर्णन होने से उपर्युक्त अर्थ करना अधिक स गत है । अ त में बताया गया है कि जो स सार का त्याग करके पुनः सा सारिक प्रवृत्तियों में पड जाते हक्त, वे गृहस्थ तुल्य ही हो जाते हक्त ।

इस प्रकार की विभिन्न अवस्थाओं को जानकर ज्ञानियों ने स यम साधक के लिये बताया है कि उसे सदा जिनाज्ञाओं के पालन का लक्ष्य रखना चाहिये, कहीं भी किसी में भी आसक्त नहीं होते हुए विरक्त भावो में रहकर रात दिन सावधानी पूर्वक निर तर स यम में यत्न करना चाहिये, सदा शुद्ध स यम पालन का ही विचार करना चाहिये ।

प्रश्न-८ : 'मन एव मनुष्याणा कारण ब ध मोक्षयो' इसकी स गति शास्त्र से कैसे होती है ?

उत्तर- इस अध्ययन के दूसरे उद्देशे में कहा गया है कि- **से सुय च मे, अज्झत्थिय च मे, ब ध पमोक्खो अज्झत्थेव**- मक्तने सर्वज्ञों से श्रवण करके, विचारणा और अनुभव करके भी समझा है कि जीवों के कर्मों का ब ध और उनका क्षय आत्मपरिणामों से, विचारों से ही होता हक्त

आत्म परिणाम सूक्ष्म दृष्टि है और स्थूल दृष्टि से उसे ही चि तन, मनन कहा जाता है । चि तन मनन मनरूप साधन से होता है । शुभाशुभ आत्म परिणाम एकेन्द्रिय आदि सभी जीवों के होते हक्त ।

व्यवहार दृष्टि या स्थूल दृष्टि में मन के मनन और आत्मा के परिणाम को अलग अलग समझना कठिन होने से दोनों को एक ही कर दिया जाता है । अत: अपेक्षा से दोनों की समानता समझकर समन्वय किया जा सकता है । अपेक्षा से मन योग के अभाव में एकेन्द्रिय आदि को आत्म अध्यवसायों–परिणामों से और काय योग के माध्यम से या वचनयोग के माध्यम से भी अल्प कर्म ब ध होता है ।

यहाँ उक्त सूत्र में गणधर प्रभु ने अपने लिये मक्त शब्द का प्रयोग किया है तथा चि तन और आत्म परिणाम दोनों को उसी **'अज्झत्थ'** शब्द से कहा है ।

प्रश्न–९ : साधुत्व के लिये इस अध्ययन में किस प्रकार समझाया है ?

उत्तर– लोक प्रवाह की उपेक्षा करते हुए तथा उससे विपरीत विरक्त भावों में रहते हुए विचरण करने वाला मोक्ष पथ पर आरूढ कहलाता है । ऐसा साधक समस्त कर्म परिणामों, अवस्थाओं को जानकर हिंसादि पापों का सेवन नहीं करे, स यम में ही पुरुषार्थ करे एव स्वच्छ दता उच्छृ खलता नहीं करे । प्रत्येक प्राणी स ब धी शाता का विचार कर, **वण्णाएसी** = वर्ण = यश = स यम की चाहना पालना करने वाला मुनि कि चित् भी किसी भी प्राणी की हिंसा(आर भ) न करे । एक मात्र स यम का ही लक्ष्य रखे, अन्य लक्ष्यों को पार कर जावे अर्थात् उनमें न उलझे । त्याग वैराग्य से विचरण करे और स्त्रियों में न फँसे, आसक्त न बने । वह स यमवान मुनि सर्व प्रकार के विवेक ज्ञान से स पन्न होकर अ त:करण से पाप कृत्यों को अकरणीय माने और उनकी कभी भी चाहना नहीं करे ।

इस प्रकार की साधना का निष्कर्ष बताते हुए अगले सूत्र में कहा है कि– **ज सम्म ति पासह, त मोण ति पासह । ज मोण ति पासह, त सम्म ति पासह । सम्म** =सम्यक् स यम आचार का पालन जिसमें दिखता है उसे साधुत्व में देखो । जो वास्तविक साधुत्व में है वह ज्ञान दर्शन चारित्र का पूर्ण रूप से सम्यक् पालन करने वाला है । ऐसा सम्यक् स यम पालन शिथिलता के मानस वालों के लिये

शक्य नहीं है । मोह भाव से कहीं भी फिसल जाने, झुक जाने रूप निर्बल मन वालों के लिये, इन्द्रिय विषयों की लोलुपता वालों के लिये अर्थात् देखना, सुनना, खाना, पीना, ऐश–आराम की आसक्ति वालों के लये, वक्रता या अस यम के आचरणों में लगने वालों के लिये, प्रमादी=प्रमत्त भाव वालों के लिये, गृहवास में रहने वालों के लिये या भाव से गृहस्थ तुल्य परिणामों में रहने वालों के लिये मुनि आचार का पालन अशक्य होता है । अत: वे भाव साधुत्व में नहीं होते हक्त । यहाँ 'पासह' शब्द जानने समझने के अर्थ में प्रयुक्त है ।

मुनि साधुत्व को स्वीकार करके निर तर कर्म क्षय करने में ही पुरुषार्थ करता रहे । शरीर का मोह छोडकर सामान्य और रूक्ष आहार का सेवन करे । ऐसे वीर साधक और समत्वदर्शी=समभावों में रमण करने वाले अथवा स यम आचार में रमण करने वाले सच्चे मुनि ही स सार समुद्र को तिर जाते हक्त । ऐसे साधक ही वास्तव में तीर्ण मुक्त और विरत कहे जाते हक्त । इस प्रकार सच्चे साधुत्व के अनेक गुणों की प्रेरणा दी गई है ।

प्रश्न–१० : सम्यक श्रद्धान के लिये यहाँ क्या कथन किया गया है ?

उत्तर– इस अध्ययन के पाँचवें उद्देशे में इस प्रकार वर्णन है–

वितिगिच्छा समावण्णेण अप्पाणेण णो लभति समाधि । = जिज्ञासा बुद्धि के अभाव से ज्यों त्यों कुछ न कुछ किसी भी विषय में स देह होना, ऐसे स देहशील प्रकृति वाली आत्मा को धर्म आराधना में शा ति समाधि नहीं मिल सकती । वह किसी भी जीवादि तत्त्व में, अन्य सूक्ष्मतम सिद्धा तो में, आचार स ब धी आदेशो में या अन्य किसी भी प्रकार के स देह श काओं में उलझता रहता है और समाधान की जिज्ञासा बुद्धि नहीं रखता है, तो उसके मिथ्यात्व मोह का उदय अपनी प्रबलता जमाते रहता है । फिर क्रमश: श काओं में वह धर्म भावों को भी विनष्ट कर देता है । इसीलिये वह धर्म समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता ।

वह इस प्रकार भी श काशील हो जाता है कि– **सिया वेगे अणुगच्छ ति, असिया वेगे अणुगच्छ ति** =कई एक साधक जिनाज्ञा अनुसार स यम में चलते हक्त, कई एक जिनाज्ञानुसार नहीं चलते हक्त । तो क्या भगवान की आज्ञा दोनों को अलग अलग है ? क्या वे शास्त्र

नहीं जानते, उनके शास्त्र अलग-अलगहक्त ? **अणुगच्छमाणेहिं अणणुगच्छ माणे कह ण णिविज्जे ?** = आज्ञानुसार चलने वाले, दूसरे नहीं चलने वालों को समझा नहीं सकते ? आज्ञानुसार नहीं चलने वाले उनसे मार्ग समझ नहीं सकते ? ये दोनों प्रकार के साधु आपस में शास्त्र को समझ समझाकर एक नहीं हो सकते ? यह कैसा धर्मशास्त्र या धर्म शासन है, जो इनको एकता से रहना भी नहीं सिखा सकता ? शुद्धाचारी शिथिलाचारी को शिथिलाचार से क्यों नहीं छुडा सकते या शिथिलाचारी शुद्धाचारी को देखकर अथवा उनसे समझकर अपने शिथिलाचार को क्यों नहीं छोड देते ? उससे निवृत्त क्यों नहीं हो जाते ? ऐसी श का-कुश काओं में उलझने वालों को समाधान इस प्रकार करना चाहिये कि- **तमेव सच्च णिस क ज जिणेहिं पवेइय ।** = जो मार्ग जिनेश्वर भगव तो ने बताया है, जो भी तत्त्व या आचार कहा है, वह सत्य है, निःश क है, उसमें कि चित् भी स देह करने योग्य नहीं है, क्योंकि सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु का यह मार्ग है । व्यक्तिगत जीवों के चारित्र मोह कर्म के उदय की भिन्नता से आचारपालनमें भिन्नताएँ (अलगाव रूप में) होती रहती है और दर्शन मोहनीय के क्षयोपशम की भिन्नता से श्रद्धा प्ररूपणा में भी भिन्नता हो सकती है । अथवा ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम की भिन्नता से अलग-अलग समझ या समझाइस हो सकती है । छद्‌मस्थों में ऐसी भिन्नताएँ होती रहती है कि तु इससे वीतराग मार्ग में स देह करने की आवश्यकता नहीं है । **तमेव सच्च णिस क ज जिणेहिं पवेइय ।** इस वाक्य से अपनी श्रद्धा दृढ रखते हुए सदा समस्त स देहों से मुक्त रहना चाहिये और जिनवाणी, जिनाज्ञा के प्रति अटूट अगाध श्रद्धा हृदय में जमाये रखना चाहिये ।

श्रद्धालु और रुचि स पन्न आत्माओं के दीक्षित हो जाने पर भी उनमें से कोई (१) स यम की समस्त परिस्थितियों या विधि विधानों को प्रार भ से अ त तक सम्यक् ही मानता है, सम्यग् ही परिणमाता है । (२) कोई प्रार भ में स यम विधियों और परीषह उपसर्गों को सहन कर सकने से स यम को ठीक समझता है कि तु बाद में सहन नहीं कर सकने से तथा घबरा जाने से, उन जिनाज्ञाओं को असम्यग् समझने लगता हक्त । (३) कोई साधक प्रार भ में स स्कार, क्षमता की कमी से जिनोक्त आचारों को अ तर्मन में असम्यक् महेसूस करता है कि तु

बाद में अभ्यास, क्षमता और ज्ञान की वृद्धि हो जाने से समस्त आचार नियमों परीषहों आदि को सम्यक्=अच्छा ही समझता, परिणमाता है । (४) कोई अल्पसत्त्व साधक प्रार भ से अ त तक स यम नियमों को दुःखे-दुःखे ही पालता है, कष्टमय ही समझता है । उन सभी का समाधान यह है कि खुद की विचारणा को ज्ञान के द्वारा परिमार्जित करना, सु दर बनाना । इसके लिये सूत्र में कहा है कि- **समिय ति मण्णमाणस्स समिया वा असमिया वा समिया होइ उवेहाए ।** सयम विधियों की सम्यक् (सही)श्रद्धा रखने वाले के लिये सम्यक् या असम्यक् स योग अर्थात् अनुकूल प्रतिकूल सभी परिस्थितियाँ सम्यग्= सही अनुप्रेक्षा चि तन करने से सम्यक् ही होती है, सम्यक् ही लगती है अर्थात् अपने चि तन की दिशा को ज्ञान के माध्यम से सम्यक् रखा जाय तो सभी परिस्थितियों में वह साधक स्वय आन द में रह सकेगा और स यम के प्रति, जिनाज्ञा के प्रति, श्रद्धायुक्त भावों को टिकाये रख सकेगा । इसके विपरीत असम्यक् चि तन करने वाला अपने ही विचारों से हर परिस्थिति में हैरान होने से सभी प्रस गो को असम्यक् रूप में परिणमन करेगा ।

इसलिये सम्यक् विचारणा करने वाला, सम्यक् विचारणा के अभ्यास वाला साधक अन्यों को भी सम्यक् विचारणा करना सिखावे, समझावे, प्रेरणा करे । क्यों कि विचारों के सम्यक् परिवर्तन से समस्याएँ सुलझ सकती है । अशुभ कर्मों की स धि-गा ठ को तोडा जा सकता है । स यम में प्रगति करते रहने वालों की आराधक गति होती है और स यम में रुक जाने वालों की आराधक गति नहीं होती है, इस पर भी विचार कर स यम भावों में प्रगति करते रहना चाहिये ।

ऐसा समझकर और इस जिन शासन में उपस्थित रह कर, फिर बाल भावों में=अज्ञान दशा में, जिन वचनों की अश्रद्धा में, अपनी आत्मा को कभी नहीं लगाना चाहिए ।

प्रश्न-११ : हिंसा के विचारों को मोड देने का क्या तरीका है ?

उत्तर- किसी को मारने का या कष्ट देने का अथवा अहित करने का स कल्प हो तो विचार करना चाहिये कि इसकी जगह यदि मक्त होउ तो कैसा अनुभव होगा ? सूत्रकार कहते हक्त कि जिसको मारा पीटा जाना अपेक्षित है=उसकी जगह यदि तुम ही हो तो तुम्हें कैसा लगेगा ?

इसी तरह किसी पर जबरन अनुशासन करने में, अपने आधीन बनाने में, परितप्त करने में और प्राण रहित करने में भी, यदि उसकी जगह तुम्हारे प्राण लूटे जाय, ऐसा मान कर सोचो कि क्या तुम्हें उस समय आन द आयेगा या असह्य दुःख होगा । ऐसा उत्तम विचार चि तन करने वाला स यम साधक अ जू=मुनि वास्तव में प्रतिबुद्ध है, ज्ञानी है, उसकी आत्मा पूर्ण जागृत हो चुकी है । ऐसा जानकर समझकर मुनि किसी भी प्राणी की हिंसा स्वय करे नहीं, अन्य से करावे नहीं और करने वाले को भला भी न जाने, अनुमोदन भी न करे और यह विचार करे कि– जीव जैसा पाप करेगा, दूसरों को दुःख देगा, उससे कर्म ब ध करके उसका फल जीव को स्वय ही भुगतना पडेगा, आत्मा को ही बाद में फल का स वेदन करना पडेगा । यह जानकर भी किसी को मारना, दुःख देना इत्यादि का स कल्प भी नहीं करना चाहिये ।

आत्मा की, जीवों की, प्राणियों की, सम्यग् श्रद्धा करने वाला ही उक्त अहिंसा परिणामों को रखने में सफल हो सकता है । इसलिये अ त में कहा गया है कि– जो आत्मा है, वही इस प्रकार विज्ञान= विशेषज्ञान=विशेष चि तन करता है । जो विचारणा करने वाला तत्त्व शरीर में है वही आत्मा है, जिसके माध्यम से जगत के समस्त भावों को जाना जाता है, विचारा जाता है, वह आत्मा ही है, जीव ही है, चैतन्य ही है । निर्जीव अचेतन पुद्गलों में ऐसा भाव नहीं होता है । इस प्रकार आत्मा के अस्तित्व को समझकर प्रत्येक आत्माओं का विचार करना चाहिये । ऐसा आत्मवादी अर्थात् अपनी और अन्य की समस्त आत्माओं के स्वरूप को जानने, मानने वाला और तदनुरूप ही किसी जीव को दुःख नहीं देने वाला, सम्यक् स यम पर्याय में रमण करने वाला होता है । इस प्रकार इस पाँचवें उद्देशे के अ त में आत्मा की श्रद्धा पर जोर देकर, प्रत्येक आत्मा के प्रति अहिंसा भाव धारण करने से ही सम्यक् स यम की आराधना होना कहा गया है ।

प्रश्न–१२ : इस अध्ययन में सिद्ध स्वरूप किस प्रकार बताया है ?

उत्तर– 'औपपातिक' आदि शास्त्रों में भी सिद्ध स्वरूप बताया है, तदनुरूप ही यहाँ पर भी अपेक्षा से कुछ जानकारी दी गई है । वह इस प्रकार है– **सव्वे सरा णियट्ट ति** =कोई भी शब्द सिद्धों के समस्त स्वरूप का कथन नहीं कर सकता । एक देश से समझने जितना

स्वरूप शास्त्र में बताया जाता है । सिद्ध स्वरूप समझने में तर्क की भी पूर्ण गति नहीं होती, बहुत कुछ श्रद्धा से समझने योग्य होता है । बुद्धि=मति भी अल्प होने से उनके स्वरूप को पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं कर सकती । **ओए**=राग द्वेष रहित निर्मल ज्ञानी सर्वज्ञ ही **अपइट्ठाणस्स** = सिद्धों के स्वरूप को जान सकते हक्त, समझ सकते हक्त ।

अरूपी निर जन निराकार होने से सिद्धात्माओं में लम्बा, छोटा, गोल, त्रिकोण, चोकोण आदि भेद नहीं होते हक्त । काला, नीला, आदि वर्ण, ग ध, रस और स्पर्श भी नहीं होते । उनके शरीर नहीं होता अथवा कोई लेश्याएँ कृष्ण, नील, कापोत आदि नहीं होती । जन्म-मरण नहीं होता । कर्म स ग=कर्म ब ध नहीं होता । वहाँ कोई स्त्री, पुरुष, नपु सक भेद नहीं होता । ज्ञान परिज्ञान स ज्ञक वे सिद्ध होते हक्त । चैतन्यवान होते हक्त । ज्ञानमय स्वरूप में रहते हक्त । उनके लिये कोई उपमा यहाँ स्थूल पदार्थों में नहीं है । अरूपी स्वरूप है ।अपद है । इस प्रकार शब्दादि से रहित अरूपी आत्म स्वरूप है ।

उपस हार करते हुए सूत्र में कुछ शब्द पुनः कहे गये हक्त । प्रार भ में स्वर का कथन है उसी के लिये अ त में पद का कथन है, दोनों का अर्थ एक ही है ।

छट्ठा अध्ययन : धूत

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम और उसकी सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम 'धूय' या 'धूत' है । इस शब्द का अर्थ होता है धुनना, झाडना । यहाँ पर आत्मा से कर्मों को हटाकर अलग करने के पुरुषार्थ के रूप में इस शब्द का प्रयोग हुआ है । **धूयते अष्ट प्रकार कर्म येन तद् धूतम् स यमानुष्ठान** । इस प्रकार स यम अर्थ में भी इस 'धूत' शब्द का प्रयोग हुआ है । तात्पर्य यह हुआ कि कर्म क्षय करने के जो भी तरीके है, त्याग प्रत्याख्यान, तप, स यम, साधनाएँ हक्तउन सभी को 'धूत' शब्द से ग्रहण किया जा सकता है ।

इस अध्ययन में त्याग की प्रेरणा तथा वैराग्य भावों की वृद्धि

के साथ स यम ग्रहण कर, कर्म क्षय करने का उपदेश ही प्रमुख है । अत: यह 'धूत' नाम इस अध्ययन का सार्थक कहा गया है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में कितने उद्देशे हक्त और उन में मुख्य क्या विषय है ?

उत्तर– इस अध्ययन में पाँच उद्देशेक्त । उनमें उपदेश वर्णन इस प्रकार है– **पहले उद्देशे में–** धर्मोपदेश सुनकर त्यागी बनने वालों का और स सार में रहकर अनेक रोगात क प्राप्त कर दु:खी होने वालों का वर्णन है । इसके अतिरिक्त स यम ग्रहण करने का और किसी के द्वारा उससे विचलित करने पर भी स्थिर रहने का उपदेश है । **दूसरे उद्देशे में–** सयम ग्रहण कर कामभोगों की चाहना से स यम पतितों का और साथ ही स यम में दृढ रहकर कष्ट, उपसर्गों को सहन करने वाले सफल साधकों का विस्तृत वर्णन है । अ त में एकल विहारचर्या से भी उत्तम आराधना करने वाले प्रशस्त साधकों का सूचन किया गया है । **तीसरे उद्देशे में–** स यम साधना में भी अचेल साधना का महात्म्य बताया गया है । दीर्घ स यमी की साधना की विशेषता बताकर शिष्य के प्रति कर्तव्य बताया गया है । **चौथे उद्देशे में–** गुरु के द्वारा कर्तव्य पालन करने पर भी शिष्य की अविनीतता, धीठता और स यम से अध:पतन का विविध प्रकारों से विस्तृत वर्णन किया गया है । अ त में प डित साधकों को आगमानुसार ही चलने की हित शिक्षा दी गई है । **पाँचवें उद्देशे में–** स यमी की सहनशीलता बताकर, उपदेश देने के तरीके एव विषय निर्देश किये हक्त । फिर स यम में दृढ रहने का, कषाय मुक्ति का एव अ त में शरीर ममत्व त्याग कर पादपोपगमन प डित मरण प्राप्त करने का उपदेश है ।

प्रश्न–३ : शास्त्र में कितने और कौन कौन से रोग बताये हक्त ?

उत्तर– इस अध्ययन के प्रथम उद्देशे में बडे रोगों का वर्णन इस प्रकार है– (१) गण्डमाला (२) कोढ (३) राजयक्ष्मा=क्षय रोग (४) अपस्मार = मृगी रोग (५) काणत्व (६) जडता=लकवा (अ गोपा ग चेतना शून्य हो जाना) (७) कूणित्व=हाथों की विकलता (८) कूबडापन (९) उदर रोग–अनेक प्रकार के होते हक्त । (लीवर खराबी,गैस, एसिडीटी) (१०) गूँगापन (११) शोथ=सूजन होना (१२) भस्मक रोग (१३) कम्पन्न रोग (१४) प गु=पाँव विकलता (१५) श्लीपद=हाथीपगा(स्थूल पा व)

(१६) मधुमेह=पेशाब स ब धी रोग, डायाबीटीज आदि सोलह की स ख्या के साथ ये रोग बताये हक्त । इससे अतिरिक्त अनेक आत क होते हक्त, जो तत्काल मृत्यु तक पहुँचा देते हक्त । अत: उपरोक्त रोग तो लम्बे समय चल सकते हक्त । तत्काल मृत्यु देने वाले रोगों को यहाँ आत क शब्द से कहा है । कि तु उनका विवरण नहीं दिया है । १६ बडे रोगों का निर्देश शास्त्रों में अनेक जगह आता है । वर्तमान में विविध प्रकार के रोगों के नाम प्रचलित हक्त । उनमें से अनेकों का इन १६ में समावेश हो जाता है । अवशेष रहने वाले कई तो सामान्य छोटे रोगों में गिने जायेंगे और कई आत को में गिने जायेंगे । इस प्रकार वर्तमान के प्रचलित रोगों का समन्वय कर लेना चाहिये ।

प्रश्न–४ : कछुए और वृक्ष के दृष्टा त से क्या समझाया है ?

उत्तर– अज्ञान दशा और आसक्ति दशा में पडे स सारी जीवों का दिग्दर्शन इन दो दृष्टा तो के स केत से कराया गया है ।

१. सेवाल एव पलास पत्रों से आच्छादित किसी द्रह के अ दर रहे कच्छुए बाहर आना चाहते हुए भी नहीं आ सकते हक्त, जिससे उनका चित्त हैरान हो रहा है । ऐसे समय में स योगवश कोई वृक्ष का फल टूट कर गिरने से, सेवाल में छिद्र हो जाने से एक कछुए को अचानक सु दर आकाश और बाह्य वातावरण का दर्शन होता है । कि तु बाहर नहीं निकल कर दूसरों को उस आन द का सूचन करने और दिखाने के उद्देश्य से उनके पास चला जाता है । हवा आदि के स योग से पुन: वह छिद्र सेवाल या पत्र से पूरित हो जाता है । अब लाख हैरानी करने पर भी उन कछुओं को सु दर आकाश दर्शन नहीं हो पाता, वे बाहर निकल नहीं सकते । इसी प्रकार कई जीवों को मुक्ति का सही मार्ग मिल ही नहीं पाता । वे कर्मों के आवरण से अज्ञान अ धकार में पडे रहते हक्त ।

२. वृक्ष अनेक कष्टों को सहन करते हुए भी अन्य अच्छे स्थानों के होते हुए भी अपनी जगह छोड नहीं सकता । अच्छी शा ति की जगह पहुँच नहीं सकता । उसी तरह कई लोग स सार में ही डटे रहते हक्त, जमे रहते हक्त, दृढता से जीवनभर वहीं स्थिर बने रहते हक्त, स यम मार्ग को देखते सुनते हुए भी स्थावर के समान बने हुए वे अपने घर स सार स्थान को छोडने का स कल्प ही नहीं करते । चाहे

वहाँ विविध शारीरिक मानसिक एव स योग–वियोगजन्य दु:खों से तडफते रहते हक्त कि तु मरते दम तक घर छोड कर स यम लेने का विचार या प्रयत्न नहीं करते ।

प्रश्न–५ : लोक में सर्वोत्तम ऐसे स यम को स्वीकार कर पुन: छोडने में क्या क्या कारण शास्त्र में बताये हक्त ?

उत्तर– इस अध्ययन के दूसरे उद्देशे में मुख्य तीन कारण बताये हक्त– (१) स यम के अनेक नियमोपनियमों के पालन में वह असमर्थता का अनुभव करने लग जाता है यथा– पैदल विहार, रात्रि चौविहार, अस्नान, अस ग्रह, अल्प उपधि, भूमि शयन आदि । (२) इन्द्रिय विषयों में मन का लुभावित हो जाना । यथा– स्वेच्छानुसार खाना, पीना; नृत्यगान देखना, सुनना; एशआराम एव भोगविलास की लालसा अ तर्मन में बस जाने से, वह किसी भी बहाने से स यम छोडने का मार्ग निकालता है । अर्थात् अन्य कारण बताकर स सार में चला जाता है । (३) स यम में आने वाले विविध परीषह उपसर्गों से घबराकर स यम से उदासीन हो जाता है । स यम छोडने का निर्णय अपनी लाचारी के कारण करता है । इसमें शारीरिक अक्षमता भी हो सकती है और मानसिक अक्षमता भी । इसके अतिरिक्त चित्त की च चलता, चारित्र मोह का तीव्र उदय, धैर्य की कमी वगेरह कारण भी रहते हक्त । प्रकृति की विषमता आदि अन्य कई कारणों–परिस्थितियों में व्यक्ति स यम त्याग नहीं करके गच्छ या गुरु का ही त्याग करता है । आगमकारों का भी यही तात्पर्य कई जगह प्रकट होता है कि स यम छोडने की परिस्थिति का स वरण यदि एकलविहार करने से हो सकता हो तो अस यमी बनने की अपेक्षा एकलविहार करना उपयुक्त है । कई जगह ऐसे सलाह सूचन आगम पाठों में हक्त । उस एकलविहार करने वालें में दो गुण विशेष रूप से होना आवश्यक बताया है (१) धैर्यवान (२) शक्तिस पन्न=सहनशीलता । शेष ६ गुण तो गच्छगत स्वत त्र मुखिया बनकर विचरण करने वाले साधुओं के लिये ठाणा ग सूत्र के छट्ठे ठाणे में कहे गये हक्त । उन्हीं में उक्त दो जोड कर आठवें ठाणे में आठ गुण कहे हक्त । **परन्तु अतिशयोक्ति के साथ आठ गुणों के कहने की पर परा दुराग्रहपूर्ण मानस से चल गई है, चल रही है, जो आगम विपरीत प्ररूपणा और अविवेक है ।** तात्पर्य यह है कि चारित्र मोह

के तीव्र उदय हो जाने पर वैराग्य टिकता नहीं है और वैराग्यभाव के बिना स यम पालन दुष्कर एव अस भव सा हो जाता है । नरक दु:ख के समान उसे स यम दु:ख कर लगता है । तब मोहाभिभूत साधक सर्वोच्च ऐसे स यम को त्यागता है ।

प्रश्न–६ : स यम में सफल साधक का वर्णन किस प्रकार किया है ?

उत्तर– (१) इन्द्रिय और मन को समाधित रखता है, स यम भावों से आत्मा को पुष्ट रखता है (२) कहीं भी लिप्त न होते हुए, नहीं फँसते हुए, पूर्ण अनासक्त रहते हुए दृढता से स यम में स्थिर रहता है (३) सभी स गों का त्यागी होता है, "मेरा कोई नहीं है मक्त तो सदा अकेला ही हूँ, ऐसा भाव रखकर स ग त्यागी और ब ध त्यागी होता है (४) दस प्रकार के स पूर्ण मु डन से युक्त बनता है (५) आगे बढकर वस्त्र त्यागी बनकर अचेलत्व स्वीकारता है । जिसमें क्रमश: वस्त्र की ऊणोदरी करता है ।(६) आक्रोश वचन, मारपीट, गालीगलोच अपशब्द ये एक या अनेक प्रस ग आवे उसे सहन करना अपना स यम धर्म समझकर स्वीकार करता है और प्रसन्नता पूर्वक सहन करता है (७) सभी अनुकूल और प्रतिकूल परीषहों को, मन के विचारों की समस्त बाधाओं का त्याग करके सहन करता है । अन्य भी उपस्थित होने वाले कष्टों को समितदर्शी=शा ति स पन्न मुनि सहन करता है । (८) पुन: गृहवास में जाने का कभी स कल्प भी नहीं करता है वही वास्तव में अचेल है, मुनि है । (९) वह साधक हर परिस्थिति में, स कट की घडी में भी यही सोचता है कि जिनाज्ञा के अनुसार ही चलना मेरा धर्म है । यही उत्कृष्ट आदर्श सभी साधकों के लिये हितकर है । (१०) इस प्रकार जिनशासन में दीक्षित होकर वे कर्म क्षय करने में अपनी आत्मा को नियोजित कर देते हक्त ।(११) कर्माश्रवों को अच्छी तरह समझकर, स यम साधना से उनका विसर्जन कर देते हक्त ।

प्रश्न–७ : प्रशस्त एकचरिया का कैसा वर्णन किया गया है ?

उत्तर– इस जिन शासन में कई एक साधकों को अकेले विचरण का प्रस ग आ जाता है । वे अन्यान्य घरों में घूम कर शुद्ध निर्दोष आहार पानी ग्रहण करते हक्त । मेधावी=बुद्धिमान साधक स यम में विचरण करते हक्त । अच्छे अथवा खराब, अनुकूल या प्रतिकूल स योगों में, आहार आदि की उपलब्धि में समभाव से सहन करतेक्त । कोई भयानक क्रूर

प्राणी मृत्यु स कट जितना भी कष्ट दे तो उसे प्रसन्नता से सहन करते हुए स यम की आराधना करते हक्त । ऐसे साधकों के गच्छ त्याग का स केत एव प्रेरणा सूयगडा ग सूत्र अध्य. १० गाथा १२ में भी मिलता है ।

(आगम युग के बाद व्याख्याकर्ताओं के जमाने से आगम आशयों की उपेक्षा कर एका त रूप से एकलविहार का निषेध किया जाता रहा है और ९ पूर्वज्ञान के पहले किसी को एकल विहार नहीं कल्पता है, ऐसा असत् प्ररूपण प्रार भ किया गया है । वास्तव में ९ पूर्व के आगे के ज्ञानी आचारा ग, सूयगडा ग, व्यवहारसूत्र, दशवैकालिक एव उत्तराध्ययन सूत्र अ. ३२ एव २७ में निर्दिष्ट सपरिस्थितिक एकलविहारी नहीं होते हक्त । वे पूर्वों के ज्ञानी अपने आचार्य आदि की आज्ञा लेकर सारे स घ के सम्मान के साथ एकलविहार करते हक्त । पहले अभ्यास, परीक्षण करके फिर पडिमा धारण कर विशेष तप के लिये गच्छ मुक्त विशिष्ट साधना करने, सीमित या असीमित समय के लिये जाते हक्त । तो भी वे आचार्य की शिष्य स पदा में ही गिने जाते हक्त । कि तु ऊपरोक्त चार-पाँच सूत्रों में वर्णित और आगमकार द्वारा प्रेरित एकलविहारी साधु अपनी विचित्र कर्म परिस्थिति, स योग परिस्थिति या स यमनिर्वाह अथवा चित्त असमाधि निवारण हेतु एकल विहार करते हक्त । ऐसा इन उक्त सूत्रों से और अन्य भी अनेक सूत्रों से स्पष्ट है । फिर भी आगम पाठों, अर्थों, भावार्थों की उपेक्षा कर आज तक भी उत्सूत्र प्ररूपणा चालू है । ऐसी उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले अपने आगम सापेक्ष विवेकचक्षु को जानबूझकर ब ध रखने में ही अपनी शान समझते हक्त और आगम सूचित सपरिस्थितिक एकल विहारी जैन श्रमण, जो कि अनुक पा पात्र होते हक्त उनका तिरस्कार करने कराने में आन द मानते हुए अपने को बहुत बडे सच्चे आगम निरूपक मानते हक्त पर तु वह उनका तोतारट त वाला पा डित्य आगम अर्थ परमार्थ की चोरी कराने वाला है, इस बात को वे कभी समझने का प्रयत्न भी नहीं कर पाते । क्यों कि विवेकचक्षु को ब ध रख रहे हक्त ।)

प्रश्न-८ : अचेलत्व का माहात्म्य किस प्रकार बताया गया है ?

उत्तर- सुसाधक मुनि सुआख्यात धर्म के स यम में उपस्थित होकर सदा कर्म क्षय करके आत्मा को निर्मल बनाते रहते हक्त । ऐसे उच्च साधकों में से कई साधक विशेष कर्म क्षय हेतु अचेलत्व, नग्नत्व, निर्वस्त्र-साधना स्वीकार करके रहते हक्त । उन अचेल-निर्वस्त्र भिक्षुओं

के ऐसे स कल्प नहीं होते हक्त कि मेरा वस्त्र जीर्ण हो गया है, नये वस्त्र की याचना करूँगा या धागा-सूई लाऊँगा, वस्त्रों को जोडूँगा, सीवूँगा या छोटे को बडा बनाऊँगा, बडे को छोटा बनाऊँगा, पहनूँगा, ओढूँगा इत्यादि स कल्पों से वे मुक्त हो जाते हक्त । अचेल साधना में विचरण करते हुए भिक्षु को बार बार तृणस्पर्श का परीषह एव गर्मी, सर्दी और डा स-मच्छर के परीषह भी बार बार आते रहते हक्त अर्थात् वस्त्र नहीं होने से विहार या गोचरी में गर्मी के दिनों में सूर्य का आताप सीधा शरीर पर पडता है । शीतकाल में शीतल हवा सीधी शरीर से टकराती है । बिछाने के घास काँटे सीधे शरीर में चुभते हक्त और निर्वस्त्र होने से डाँस-मच्छर से कोई रक्षा नहीं होती है । इस प्रकार इन परीषहों की वृद्धि से महान कर्म निर्जरा होती है । अन्य भी विविध प्रकार के कष्ट अचेल निर्वस्त्र भिक्षु को आते ही रहते हक्त । वे स्वेच्छापूर्वक उन्हें सहन करते हक्त । उपधि नहींवत् होने से हल्कापन होता है और उन्हें विविध प्रकार के तप की उपलब्धि होती है । वे अचेल मुनि जैसा स यम धर्म भगवान ने कहा है वैसा सभी प्रकार से, पूर्ण रूपेण, सम्यक् विधि से पालन करते हक्त । इस प्रकार उन महान वीर स यम साधकों की साधना अनेकों वर्षों तक या पूर्व(करोड पूर्व देशोन) वर्षों तक चल जाती है। उनकी महान सहनशीलता को देखो, विचार करो कि कितनी गजब की हिम्मत होती है उनकी । उन प्रज्ञा स पन्न साधकों का शरीर कृश हो जाने से भुजाएँ कृश हो जाती है । मास खून भी अत्यल्प रह जाता है । ऐसे मुनि अ त में रागद्वेष की श्रेणी को काट कर, समाप्त कर, सच्चे ज्ञानी सर्वज्ञ बन जाते हक्त । वे अचेल साधक वास्तविक तीर्ण, मुक्त, विरत कहे जाने के योग्य होते हक्त । वर्तमान में अचेलत्व सचेलत्व को लेकर दो एका गी पर पराएँ चल रही हक्त । कि तु आगम दोनों का समन्वयात्मक कथन करते हक्त । अचेल सचेल दोनों धर्मो का निष्पक्षता से, अनाग्रह से, आगम शास्त्रों मे मण्डन ही है । ख डन नहीं है । फिर भी परम्पराएँ एका त मान्यता की चल जाती है, चला दी जाती है, और चलती ही रहती है । समन्वय करके समझने की बुद्धि कु ठित हो जाती है । दोनों ही एक दूसरे का खण्डन करते रहते हक्त । शास्त्रों के गहरे, गहन-ग भीर आशय को समझने के लक्ष्य से सोचना, समझना या समन्वय करना आग्रह में पड जाने के बाद कठिन हो

जाता है और उसके लिए कल्पित अमोघ शस्त्र हाथ में ले लिया जाता है कि ९ पूर्व के ज्ञान बिना अचेलत्व और एकलविहार का विच्छेद हो गया है ।

प्रश्न–९ : शिष्य की अविनीतता और अध:पतन का वर्णन शास्त्र में किस प्रकार किया है ?

उत्तर– इस अध्ययन के चौथे उद्देशे के प्रार भ से अ त तक यही वर्णन किया गया है अर्थात् स पूर्ण उद्देशक में इसी प्रश्नोक्त विषय की चर्चा की गई है ।

उन महान वीर प्रज्ञाम त गुरु भगव तो के द्वारा रात-दिन अनुक्रम से सूत्र वाचना देकर तैयार किये शिष्यों में से कोई शिष्य ज्ञान मद में मस्त होकर, उन ज्ञानी गुरु से ज्ञान प्राप्त करके भी स यम की मर्यादा को छोड कर, गुरु के प्रति वाणी एव व्यवहार से अनादर युक्त तथा कटुता भरा आचरण करने लग जाते हक्त । गुरु निश्रा में, स यम वेश में रहते हुए भी उनकी आज्ञा को नहीं मानते हुए उनके साथ रहते हक्त ।

ऐसे ये साधक गुरु उपदेश सुनकर, 'अच्छा स यम पालेंगे' इस भावना से दीक्षा ले तो लेते हक्त कि तु फिर सत्यनिष्ठ नहीं रहते हक्त । स यम पालन में असमर्थ होकर और कषाय अग्निरूप, क्रोध, मान आदि से आत्म गुणों को, स यम गुणों को, दग्ध करते हुए, साथ ही अ तर्मन में काम भोगों की आसक्ति और लोलुपता बस जाने से भगव त भाषित स यम समाधि, आत्म समाधि को प्राप्त नहीं कर सकते । कि तु असमाधि भावों में पडकर वे अपने अनुशास्ता एव उपकारी गुरु के सामने अनादर युक्त कटु वचन बोलते हक्त ।

वे स्वय सद्व्यवहार से च्युत होकर भी दूहरी गलती यह करते हक्त कि जो शीलवान उपशा त और विचारपूर्वक, ध्यानपूर्वक स यम का पालन करते हक्त उनकी भी निंदा करके किसी भी तरह उन्हें शील स यम रहित घोषित करते हक्त । शास्त्रकार ने यहाँ ऐसे साधकों को म दबुद्धि कहा है और उनके कर्तव्यों को बालत्व=अज्ञान दशा सूचित की है । वह वाक्य है– **बिइया म दस्स बालया ।**

कई साधक स यम मर्यादा में सुस्त होकर भी आचार विधि का, शास्त्रानुसार उन्नत प्ररूपण करते हक्त और कई साधक स यम नियमों का पालन करते हुए भी ज्ञान दर्शन अर्थात् श्रद्धा प्ररूपणा से भ्रष्ट होकर

अपना स यम जीवन, धर्मजीवन बर्बाद कर देते हक्त । कई साधक अल्प कष्टों के आ जाने पर अस यम जीवन या भोगमय जीवन की लालसा से स यम ही छोड देते हक्त, गृहवास स्वीकार कर लेते हक्त । उनका स यम ग्रहण करना भी खराबी में गिना जाने लगता है । सामान्य लोग भी उसको खरा–खोटा कुछ भी सुनाते रहते हक्त और वह भी अपने जन्म मरणों की वृद्धि करता है । कई साधक स यम से नीचे गिरते जाते हुए भी ढीठ (निर्लज) होकर, मक्त भी बहुत कुछ हूँ, स यम एव ज्ञानवान विद्वान हूँ, इस प्रकार अपना उत्कर्ष बताकर डींग मारते हक्त, शेखी लगाते हक्त, अपने मुँह से अपनी प्रश सा करते हक्त और जो स सार से उदासीन होकर शुद्ध साधना करते हक्त, ऐसे मध्यस्थ अह कार रहित साधुओं की प्रश सा ख्याति सुनकर सहन नहीं कर सकने से, उनके प्रति कई अशुभ और कटुक वचन अपनी कल्पना बुद्धि से बोलते रहते हक्त जैसे कि– वे तो ढोंगी हक्त, क्रिया का दिखावा करते हक्त, अति कपट करते हक्त, दूसरों को नीचा दिखाने के लिये ऐसे आड बर करते हक्त, इत्यादि । अर्थात् उनकी कोई भी छोटी मोटी गलती हाथ लग जाने पर उसे पकड कर अथवा निरर्थक ही बातें बनाकर शुद्ध आचार वालों की तथ्य हीन निंदा करते हक्त, खिल्ली उडाते हक्त । इन सब की मानस दशा को जानकर बुद्धिमान साधक को अपने स्वस्थ मानस और आचार धर्म में सावधान बन जाना चाहिये ।

उक्त असत् आक्षेप कर्ता को कोई गुरु वडील समझावे कि हे साधक ! तुम खुद ही बाल भाव में वर्तते हो, आर भ समार भ में भाग लेते हो और स यम धर्म के विपरीत अधर्म कार्यों में लगते हो । फिर भी ज्यों त्यों किसी को बोलते हो, आक्षेप लगाते हो, यह ठीक नहीं है । तुम्हें स्वय के कर्तव्यों को सुधारना चाहिये, ऐसा समझाने पर भी वह शिष्य ऐसा बोलता है कि भगवान ने बहुत ही कठिन घोर स यम मार्ग बताया है, ऐसा कोई किसी से पालन हो सकता है ? इत्यादि प्रतिकार करके गुरु वचनों की उपेक्षा कर, जिनाज्ञा विपरीत आचरण करता है । स्वय हिंसा करता है, अन्य को आदेश देता है एव अनुमोदन करता है । इस प्रकार बालजीवों का अधिक पाप में फँसना और स यम धर्म का नाश करना, बताया गया है । कई एक साधक वैराग्य भाव की उपस्थिति में शूरवीरता के विचारों से "मेरा इन पारिवारिक जनों और स पत्ति सामग्री से क्या फायदा है," इस प्रकार कथन करके, समझ

करके, स यम ग्रहण कर अहिंसक सुव्रती और इन्द्रिय विजेता बन जाते हक्त । कि तु ऐसे उत्थित साधक भी कभी सावधानी के चूक जाने से उदय भाव में फँस कर दीन होकर स यम से गिरने लगते हक्त । उन्हें देखो कि उनकी क्या दशा होती है ? वे इन्द्रिय विषयों के वशवर्ती, कायर बनकर स यम को खतम कर देते हक्त, स यम का नाश कर देते हक्त, घर चले जाते हक्त । उनका यश धूमिल हो जाता है और अपयश फैल जाता है कि अहो ! यह स यम भ्रष्ट है, स यम पतित है, पडिवाई है, स यम छोडा हुआ है ।

कई एक साधक स यमव त श्रमणों के साथ रहकर भी स यम विवेक ज्ञान से विकल; आचार–समाचारी में भी अपूर्ण, पाप विरति में भी कमजोर एव रत्नत्रय की स पदा में भी हीन अवस्था वाले रह जाते हक्त अर्थात् स योग सहकार अच्छा होते हुए भी स्वय के पुरुषार्थ आदि के अभाव में वे साधक पिछड जाते हक्त, पीछे रह जाते हक्त। इस प्रकार इस उद्देशे में– (१) उच्चतम गुरु सानिध्य से अध्ययन स स्कार पाने वालों के भी बिगडने का (२) स्वय उत्कृष्टाचार की भावना से दीक्षा लेकर अविनीत भोगाका क्षी बन जाने वालों का (३) शिथिलाचारी होकर भी आगमानुसार प्ररूपणा करने वालों का (४) आचारशील होते हुए भी ज्ञान दर्शन और प्ररूपणा से विपरीत बनने वालों का (५) स्त्री परीषह से पराभूत होकर स यम छोड देने वालों का (६) अवनत स यत होते हुए भी अपनी 'डींग' हाकने वालों का, शेखी वगारने वालों का अर्थात् स्वय की अति प्रश सा करने वालों का (७) गुरु आदि के द्वारा शिक्षा देने पर भी उत्पथ नहीं छोडने वालों का (८) बडे वैराग्य से माता पिता को छोडकर शूरवीरता से दीक्षा ग्रहण करके भी पडिवाई हो जाने वालों का अर्थात् गृहवास में चले जाने वालों का और अ त में (९) अच्छे उन्नत आचारवानों के समूह में रहकर भी व्यक्तिगत सुस्त स यम वालों का दिग्दर्शन कराया गया है । फिर उपस हार में कहा है कि प डित बुद्धिमान साधक उक्त समस्त दशाओं को जानकर, सोचकर सावधानी से साधना करे और प्रत्येक कार्य, प्रत्येक निर्णय, आगम के अनुसार ही करने का ध्यान रखे और अपने समस्त पुरुषार्थ प्रवर्तन भी आगम के अनुसार ही करने का लक्ष्य रखे ।

प्रश्न–१० : धर्मोपदेश के स ब ध में इस अध्ययन में क्या स सूचन है ?

उत्तर– समस्त लोक के प्राणियों की दया अहिंसा को लक्ष्य में रखते हुए शास्वत मुनि धर्म का स क्षिप्त स्वरूप समझावे, हिंसा आदि पापों के विभाजन से विस्तृत कथन करे एव धर्म का फल भी बतावे । (१) आत्मा-कर्म-स सार और धर्माचरण कहे (२) भव भ्रमण समाप्ति, सच्चे आत्म सुख आन द की प्राप्ति, गुणों का विकास, उभय लोक सुखदायी भविष्य और निजस्वरूप की उपलब्धि, धर्माराधन से होती है, यह समझावे ।

अन्य तरह से पुनः इस प्रकार कहा गया है कि– जो धर्म सुनने के इच्छुक होकर मुनि की सेवा में उपस्थित हुए हक्त, शा ति से समय निकाल कर बैठे हक्त उन्हें धर्मोपदेश सुनावे । धर्मोपदेश में विषय का चयन इस प्रकार करे–(१) आत्मशा ति भाव का अथवा पदार्थों का– द्रव्यों का अस्तित्व भाव का अर्थात् सम्यक् श्रद्धान योग्य तत्त्वों का कथन करे (२) त्याग, प्रत्याख्यान, महाव्रत, अणुव्रत आदि का उपदेश दे (३) क्रोध की उपशा ति (४) परमशा ति अथवा मुक्ति (५) हृदय की, विचारों की पवित्रता, निर्मलता रखने स ब धी (६) सरलता (७) नम्रता (८) निष्परिग्रहिता (९) और अहिंसा का अथवा निरतिचार व्रतपालन का, इनमें से कोई भी विषय का प्रस ग देखकर उपदेश देना चाहिये । अन्य रागद्वेष मूलक, हिंसामूलक, रागद्वेषवर्धक उपदेश नहीं देना चाहिये । उपदेश में केवल परिषद् का हितकारी उपदेश ही होना चाहिये, अन्य चर्चा विषय चलाने की बुद्धि वहाँ उपदेष्टा को नहीं रखनी चाहिये ।

सभी प्राणियों का और समस्त परिषद् का पूर्ण विचार रखकर ही मुनि धर्मोपदेश देवे । धर्मोपदेश देते हुए किसी भी प्राणी की, परिषद् के व्यक्ति की, स्वय के आत्मा या शरीर की आशातना, हानि या अहित न हो, यह ध्यान रखकर, अपनी शक्ति एव समय का विवेक रखकर, परिषद् की क्षमता योग्यता का विवेक रखकर उपदेश देवे । इस प्रकार अनाशातक=अहिंसक महामुनि अनाशातना युक्त उपदेश देता हुआ, स सार में डूबते हुए प्राण भूत जीव सत्त्वों के लिये अस दीन=कभी नहीं डूबने वाले द्वीप के समान शरणभूत होता है ।

सातवाँ अध्ययन : महापरिज्ञा

प्रश्न–१ : किसी भी शास्त्र के बीच के अध्ययन का विच्छेद क्यों और कैसे ?

उत्तर– महापरिज्ञा नामक सातवाँ अध्ययन आज उपलब्ध नहीं है । स यम की, ब्रह्मचर्य की विशेष सावधानी और परिस्थितियों से पार होने की परिज्ञा का वर्णन होने से यह इसका सार्थक नाम समवाया ग सूत्र में भी कहा है । प्राचीन टीका, चूर्णि, निर्युक्ति एव अन्य व्याख्याओं के देखने से लगता है कि इस अध्ययन में अधिका शत: देवा गनाओं नरा गनाओं जनित उपसर्गों का मोहोत्पादक भाँति भाँति का वर्णन था और उससे मुनि को कि चित् भी लुभान्वित न होकर, अडिग रहने का उपदेश था । साथ ही किसी प्राचीन वर्णन अनुसार असह्य उपसर्गों के समय सामान्य विशेष साधुओं की सुरक्षा हेतु आकाशगामिनि आदि सहज विद्या के सूत्र भी थे । जिसका यथा समय तत्काल उपयोग किया जा सके । मोहोत्पादक और विद्याओं से युक्त अध्ययन को लिखित करना योग्य नहीं समझ कर देवर्धिगणि के शास्त्र लेखन प्रस ग में अन्य बहुश्रुतों की सम्मति से इसे विच्छिन्न कर दिया गया । देवर्धिगणी के समय शास्त्रों के स पादन का पूर्ण अधिकार आचार्यों ने अपने हाथ में रखकर ही लेखन किया था । क्यों कि मौखिक ज्ञान तो सीमित रहता है, कि तु लिखित विषय आगे असीमित होना निश्चित है । अत: उपस्थित आचार्यों, बहुश्रुतों की सम्मति से उन्होंने स पादन का पूर्ण अधिकार भविष्य की हित बुद्धि से अपने हाथ में रखा था, जिसे अनुपयुक्त नहीं समझना चाहिये । कई सूत्रों में आज भी न दी-समवाया ग सूत्र से भिन्न वर्णन जो उपलब्ध है, उनका भी समाधान यही हो सकता है । बाकी तो विविध कल्पनाएँ, नये नये प्रश्न ही खडे करने वाली होती है।

दृष्टा त के लिये आज भी सूयगडा ग सूत्र का चौथा अध्ययन और उसका भी दूसरा उद्देशा स्त्रीचर्या से भरा हुआ है, जिसे आज भी वाचना देने सुनने में बहुत स कोच होता है । कि तु इसमें मोहोत्पादकता अत्यल्प है । जब कि महापरिज्ञा अध्ययन में तो देवा गनाओं द्वारा विविध मोहोत्पादक तरीकों का विस्तृत वर्णन रहा था, इसलिये

लिपिबद्ध काल से विछिन्न समझ लेना ज्यादा समाधान कारक है ।

निर्युक्तिकार श्री द्वितीय भद्रबाहु स्वामी देवर्धिगणी से ४०-५० वर्ष बाद में ही हुए थे, उन तक कुछ परिचय पर परा रही, जिससे उन्होंने निर्युक्ति में इस अध्ययन के नाम की व्याख्या और विषय परिचय मात्र दिया है कि तु इस अध्ययन के सात उद्देशे होना बताकर भी कोई सूत्र वाक्य का अर्थ विवेचन या जिक्र नहीं किया है । इससे भी यह सहज समझ सकते हक्त कि निर्युक्तिकार के पूर्व ही यह अध्ययन विच्छिन्न हो गया था और वह निकट का समय देवर्धिगणी का और शास्त्र लेखन काल का ही आ पहुँचता है । बाद में चूर्णिकार ने भी निर्युक्ति के आधार से म तव्य दिया है । फिर टीकाकार श्री शीला काचार्य ने विच्छेद होने की बात मात्र कर दी है ।

उल्लेखनीय यह है कि लाडनू से आचार्य तुलसी, मुनि नथमलजी एव अनेक तेराप थ के विद्वान स तो ने मिलकर आचारा ग सूत्र प्रथम श्रुतस्क ध का अर्थ, टिप्पण, व्याख्या अतिश्रम से इतने स त मिलकर भी तीन वर्ष में पूर्ण किया । उसमें छट्ठे अध्ययन के बाद आठवाँ अध्ययन प्रार भ कर दिया कि तु सातवाँ अध्ययन यहाँ क्यों नहीं कहा गया, इस बात को स पादकीय, भूमिका या परिशिष्ट, टिप्पण आदि पूरी पुस्तक में कि चित् भी स्पर्श भी नहीं किया, यह भी एक विचारणीय और आश्चर्यजनक घटित बना है ।

इससे यह अनुमान सहज किया जा सकता है कि बडे-बडे विद्वान स त भी इस उलझन का हल नहीं निकाल सकते हक्त । ऐसी आगम की समस्त उलझनों का मूल यह है कि शास्त्र लेखन के समय जो भी स शोधन स पादन का अधिकार लेकर काम किया गया था, उसका विवरण पत्र इतिहास के रूप में अलग स कलित नहीं किया अथवा किया होगा तो वह भी एक दो प्रति होने से विलीन हो गया होगा

इसका ज्वल त उदाहरण प्रश्नव्याकरण सूत्र है । उसमें आज जो विषय है, वह पूर्णरूपेण अन्य है । न दी सूत्रमें कहा गया विषय कुछ और ही है । ठाणा ग, समवाया ग सूत्र में भी प्रश्नव्याकरण का विषय वर्णन कहा गया है कि तु इन सभी में से किसी में एकरूपता नहीं है । जो आज प्रश्नव्याकरण का विषय है, वह इन तीन सूत्रों में कि चित् स केत रूप भी नहीं है ।

ऐसे अ ग सूत्र को पूरा ही परिवर्तित कर देने पर भी उसका कोई लिखित इतिहास उन आचार्यों ने सुरक्षित नहीं किया है, यही उलझनों का मूल है । अत: ऐसा समझ कर बडी बडी उलझनों को शास्त्र लेखन काल के समय पर किये गये सर्व सम्मत स पादन के ऊपर छोड देने से योग्य समाधान हो सकता है ।

सार– स्त्री परीषह का मोहोत्पादक वर्णन और विद्याओं का स केत प्रमुख वर्णन होने से लेखनकाल में इस अध्ययन का विच्छेद कर दिया गया था कि तु समवाया ग में से नाम नहीं हटाया । जिस प्रकार कि प्रश्नव्याकरण नया कर दिया तो भी उसका न दी, ठाणा ग, समवाया ग में परिचय विषय, जैसा था वैसा ही रहने दिया । यह भी एक छाद्मस्थिक दोष था । जिससे आज के तार्किक जिज्ञासुओं को उलझनों का सामना करना पडता है और विविध सत्यासत्य कल्पनाएँ करनी पडती है ।

विभिन्न अध्ययन मनन और अनुभव के आधार से उक्त निचोड दिया गया है । स भव है इससे तार्किक जिज्ञासु साधकों का कुछ समाधान हो सकेगा ।

आठवाँ अध्ययन : विमोक्ष

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम और उसकी सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम 'विमोक्ष' है । इसमें अन्य अनेक साधना वर्णनों के होते हुए भी जीवन की अ तिम साधना के वर्णन की बहुलता है । पिछले चार उद्देशों के अ त में स लेखना स थारा एव अ तिम आराधना का, कर्म विमुक्ति का वर्णन है । जिसमें पाँचवें उद्देशे में भक्त प्रत्याख्यान अनशन का, छट्ठे उद्देशे में इ गिनीमरण अनशन का और सातवें उद्देशे में पादपोपगमन अनशन का वर्णन करके उन्हें विमोक्षायतन कहा है । आठवें उद्देशे में पूर्णत: तीनों अनशन और उसके पूर्व की स लेखना साधना का ही वर्णन है, अन्य कोई वर्णन नहीं है । इस प्रकार विमोक्ष के आयतनों के वर्णन की मुख्यता होने से 'विमोक्ष' नाम पूर्ण सार्थक है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन के कितने उद्देशे हक्त और उनमें मुख्य क्या-क्या वर्णन है ?

उत्तर– इस अध्ययन में कुल आठ उद्देशे हक्त । उनमें मुख्य वर्णन इस प्रकार है– **प्रथम उद्देशक में–** समनोज्ञ समाचारी वाले, साधुओं का असमनोज्ञ समाचारी वाले और अन्यतीर्थिक साधु के साथ आहार का लेन देन, अन्यतीर्थिकों की प्ररूपणा का ज्ञान, जिनमत का अहिंसक आचार । **दूसरे उद्देशक में–** आहार, वस्त्र आदि का निम त्रण और गवेषणा तथा तन्निमित्तक वध परीषह, एव समनोज्ञ असमनोज्ञ जैन श्रमण के साथ आहार आदि व्यवहार । **तीसरे उद्देशक में–** जवानी में दीक्षित साधु की विकट साधना । लोगों का भ्रम और उसका निवारण, एव सावधानी से स यम समाचारी पालन ।**चौथे उद्देशक में–** तीन वस्त्र(चद्दर) की प्रतिज्ञा आठ मास के लिये धारण करने वाले की साधना एव अ त में ब्रह्मचर्य भ ग न करने के लिये वेहायस(फाँसी)मरण का स केत और आराधना । **पाँचवें उद्देशक में–** दो वस्त्र की पडिमा, निर्बलता में भी सामने लाया कुछ भी ग्रहण नहीं करने की दृढता, वैयावृत्य स ब धी प्रतिज्ञा–पडिमा की चौभ गी, अ त में अस्पष्ट भक्त प्रत्याख्यान का स केत कि तु उसकी आराधना का स्पष्ट कथन है । **छट्ठे उद्देशक में–** एक वस्त्र की आठ मास की पडिमा का वर्णन, अनासक्त भाव से आहार करने की विधि का निर्देश, अ त में इ गिनी मरण अनशन का वर्णन है । **सातवें उद्देशक में–** आठ मास निर्वस्त्र रहने की पडिमा अथवा कटिब धन(चोलपट्टक) मात्र धारण । आहार आदान प्रदान स ब धी पडिमा और चौभ गी, अ त में पादपोपगमन स थारा का वर्णन है । **आठवें उद्देशक में–** तीन प्रकार के प डितमरण– स थारा का पद्यात्मक वर्णन है ।

प्रश्न–३ : जैन श्रमण अन्य जैन श्रमणों के साथ आहार पाणी आदि के स ब ध में क्या व्यवहार रख सकता है ?

उत्तर– इस अध्ययन के प्रथम उद्देशक के प्रार भ में और दूसरे अध्ययन के अ त में इस विषय में निर्देश किया गया है, वह इस प्रकार है– जैन श्रमणों के कुल, गण, स घ आदि विभाग आगम में कहे गये हक्त, जो उनकी आभ्यन्तर सुव्यवस्था के लिये होते हक्त । जिसमें आहारादि लेन-देन स ब धी एक सुनिश्चित व्यवस्था(सीमा) होती है, वह प्रत्येक गणनायक (आचार्य आदि) के द्वारा अपने निश्रागत(अधीनस्थ) श्रमण श्रमणियों की शा ति एव स यम समाधि की अपेक्षा सुनियोजित होती है । इस

व्यवस्था में जितने श्रमण गणों के साथ एक मा डलिक आहार विहित होता है, वे सा भोगिक साधु होते हैक्त अर्थात् उनमें आपस में आहारादि कोई भी पदार्थों का लेन-देन आज्ञापित होता है । इनके अतिरिक्त श्रमणों के साथ विशिष्ट गुरु आज्ञा बिना आहार आदि पदार्थों का लेन-देन नहीं हो सकता । यह व्यवस्था साधु की व्यवहारिक प्रवृतियों को सीमित दायरे में रख कर, उसे आत्म साधना में विकसित होने के लिये होती है– **कम व्यवहार, कम समय खर्च ।**

इस दृष्टि से **प्रथम उद्देशक** में अपनी सीमा के अतिरिक्त समनोज्ञ या असमनोज्ञ सभी जैन श्रमणों के साथ अकारण अर्थात् मान सम्मान के लिये आहारादि, वस्त्रादि देने या निम त्रण करने का निषेध है । **दूसरे उद्देशक** में बताया गया है कि– समनोज्ञ अर्थात् आचार शील या प्रतिष्ठित श्रमणों के साथ आहारादि का व्यवहार सम्मान पूर्वक कर सकता है और अन्य श्रमणों के साथ आवश्यक परिस्थिति, सेवा स योग के प्रस ग से कर सकता है अन्यथा नहीं । आत्मसाधना में आगे बढने वाले साधक अपने बाह्य व्यवहारों को कम करते जाते हक्त। ऐसे साधकों के लिये आगम में अनेक विधान हक्त, वे इस प्रकार हक्त– (१) उत्तराध्ययन सूत्र अ. २९ में एक मा डलिक आहार करने का प्रत्याख्यान करने का विशिष्ट फल बताया है । (२) वहीं अन्य साथी साधुओं से किसी भी प्रकार का सहयोग सहकार लेने के प्रत्याख्यान का भी फल बताया है ।

इन दोनों प्रकरणों का तात्पर्य है कि अपने साथी साधुओं के और गुरु के साथ में रहते हुए भी श्रमण उनके साथ में आहार पानी करने का त्याग करता है तथा कोई भी सेवा सहयोग लेने का त्याग करता है । तात्पर्य यह है कि आहारादि, वस्त्रादि लेन-देन स पर्क सीमित कर श्रमण अपनी व्यवहारिक प्रवृत्तियों को कम करते हुए स्वाध्याय ध्यान रूप आत्मसाधना में अधिकतम अग्रसर बने, विकास करे ।

इसके अतिरिक्त जो साधक उन्नत आत्मसाधना का लक्ष्य होते हुए भी व्यवहारिकता के कर्तव्यों में स्थित हक्त, चल रहे हक्त, उन्हें अपने क्षेत्र, काल के अनुसार प्रेम, मैत्रीभाव, वात्सल्यभाव हेतु स पर्क में आने वाले श्रमणों के साथ आहार आदि का लेन-देन या अन्य निम त्रण का योग्य व्यवहार रखना भी कर्तव्य समझना चाहिये ।

वर्तमान में अधिकतम श्रमण श्रमणी आध्यात्मिकता की अपेक्षा

सामाजिकता और व्यवहारिकता में स लग्न अधिक रहते हक्त । ऐसी स्थिति में अपने निकट के या मिलने वाले स तो के साथ भी स्नेहयुक्त व्यवहार रखना उन्हें जरूरी और उपयुक्त हो जाता है ।

कि तु निर तर आत्मासाधना में विकास शील श्रमण व्यवहार को सीमित करते जाय तथा आगे बढकर गुरु आज्ञा प्राप्त कर अपने साथी साधुओं के साथ भी आहार एव अन्य व्यवहार का त्याग करे । इस प्रकार व्यवहार से ऊपर उठकर साधना करना श्रेष्ठ है, आगम सम्मत है ।

प्रश्न–४ : आहार पानी के व्यवहार स ब धी विशिष्ट साधना के लिये इस अध्ययन में क्या वर्णन है ?

उत्तर– इस अध्ययन के पाँचवें उद्देशक में एक विशिष्ट नियम अभिग्रह में चलने का आचार बताया गया है, जिसमें वस्त्र की ऊणोदरी तथा आहार की स्वत त्रता का निर्देश है । वह मुनि स्वय किसी कष्ट या रोग के कारण भिक्षार्थ न जा सके तो भी किसी की सेवा नहीं लेता है और श्रद्धावान गृहस्थ सामने लाकर देवे तो उससे भी आहारादि नहीं लेता है कि तु स्पष्ट मना कर देता है ।

इस अध्ययन के पाँचवें और सातवें उद्देशक में एक-एक चौभ गी है । जिसका तात्पर्य यह है कि साधनाशील वृत्तिस क्षेप के लक्ष्यवाला साधक गुरु आज्ञा प्राप्त कर पारस्परिक आहार व्यवहार के अनेक प्रकार से अभिग्रह कर सकता है । उसमें वह अपने लिये, दूसरों से आहार म गाने का त्याग कर सकता है और दूसरों के लिये लाने का त्याग भी कर सकता है । गुरु आज्ञा तथा विवेक पूर्वक ऐसे विविध नियम आत्मसाधना में पुष्टि करने वाले होते हक्त । ऐसे नियम एका गी आत्मसाधना के तीव्रतम लक्ष्य से होते हक्त; उनमें व्यवहार गौण हो जाता है । ऐसे साधकों का जीवन लोकैषणा और व्यवहारिकता से ऊपर उठ जाता है, परे हो जाता है । क्यों कि उन आचार नियमों में कषायमूलकता नहीं होती है । साधना की प्रगति ही उनका मात्र लक्ष्य होता है । ऐसे साधक अन्य को हीन और अपने को उच्च, ऐसा भाव भी नहीं रख सकते । गुरु आज्ञा, आत्म लक्ष्य और विवेक, सद्व्यवहार के साथ ऐसे अनेक नियम अभिग्रह श्रमण कर सकते हक्त ।

इन अभिग्रह करने वाले साधकों की दोनों चौभ गी में एक-एक छूट भी रखी जा सकने का विधान किया है– (१) रोग अवस्था में

किसी की सेवा कर सकूँगा और किसी की सेवा ले सकूँगा । (२) स्वाभाविक अपने लिये ग्रहण किये आहार में से अधिक हो तो किसी को दे भी सकूँगा और अन्य से ले भी सकूँगा ।

इन नियम अभिग्रहों का उद्देश्य व्यवहार की उपेक्षा या ख डन से नहीं है कि तु स्वय के वृत्तिस क्षेप तप या भिक्षाचरी तप नियम अभिग्रहों से कर्म निर्जरा एव परम निर्वाण प्राप्ति का उद्देश्य ही मुख्य होता है । इन आगम विधानों के आदर्श को समझकर हृदय गम कर साधक को लोकैषणा और जनव्यवहार से परे होकर वृत्तिस क्षेप के श्रेष्ठ आचार से आत्मगुणों को पुष्ट और कर्म समूह को नष्ट करने में प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

जो साधक सामाजिकता, व्यवहारिकता, जनस पर्क, जनकल्याण और धर्मप्रभावना के मुख्य लक्ष्य में प्रवर्तित हक्त, उन्हें अपने समाज के समस्त साधुओं के साथ औदार्यपूर्ण व्यवहार रखकर समाज में प्रेम और एकता सहृदयता के आदर्श को उपस्थित करते हुए जीवन जीना चाहिये । जिससे कि चतुर्विध स घ एव जिनशासन के अ ग रूप साधु साध्वी अथवा श्रावक श्राविकाओं में रागद्वेष, निंदा-विकथा के माध्यम से कर्मब ध की वृद्धि न होकर शा ति, प्रेम, प्रमोद भावों की वृद्धि हो सके । शा ति और समभावों की वृद्धि ही समस्त साधनाओं का सच्चा फल है, सच्चा परिणाम है, सच्ची सफलता है ।

साधनाओं के साथ श्रावक या साधु के जीवन में यदि अशा तभाव, वैमनस्य, निंदा, घृणा, छलप्रप च, स्व उत्कर्ष, पर दोष प्रचार आदि प्रवृत्तियाँ या भावनाएँ पैदा होती है या घर कर जाती है, तो वह धर्म साधना का सच्चा फल नहीं है । ऐसे कर्तव्यों से आत्मा का पतन ही अधिक होता है । तप स यम साधना कितनी भी विशिष्ट हो, उक्त अवगुणों से उसका परिणाम शून्य में चला जाता है, **'कात्या पीण्या भया कपास'** की उक्ति चरितार्थ हो जाती है । अथवा **'अ धा पीसे कुत्ता खाय'** यह उक्ति चरितार्थ होती है । तात्पर्य यह है कि आगम निर्दिष्ट तप, नियम एव विशिष्ट अभिग्रहों के पालन की क्षमता बढाकर यथासमय यथायोग्य आत्मविकास करते रहना चाहिये, कि तु भावों मे पवित्रता रखना आवश्यक समझना चाहिये । भावों में कलुषता किसी भी रूप में कि चित् भी प्रविष्ट नहीं करनी चाहिये । इस बात की सतत

सावधानी रखकर आत्मा को सुरक्षित रखना अत्य त जरूरी समझना चाहिये । ऐसा करने से ही साधना प्राणयुक्त रह सकेगी अन्यथा निष्प्राण साधना कहलायेगी । जिस प्रकार निष्प्राण शरीर कितना भी सु दर सुडोल हो, आसपास के वातावरण को दूषित करने वाला ही होता है । ठीक वैसे ही निष्प्राण साधना अर्थात् कलुषित चित्त युक्त साधना का साधक भी आस-पास के सामाजिक वातावरण को दूषित कर उभय का अहित अधिक करता है ।

अतः आगमों के अनेका तिक आशयों को हृदय गम कर स्वय के जीवन को और समाज के वातावरण को सुवासित रखना चाहिये ।

प्रश्न–५ : इस अध्ययन में आगमों के अनेका तिक आशय को बताने वाला अन्य कौन सा कथन है ?

उत्तर– इस अध्ययन के प्रथम उद्देशक में निम्न सूत्र में सिद्धा त की अनेका तिकता आचार के रूप में बताइ गई है, जिसे महान विवेक भी कहा गया है । **एस मह विवेगे वियाहिए– गामे अदुवा रण्णे, णेव गामे, णेव रण्णे धम्म । जामा तिण्णि उदाहिया, जेसु इमे आयरिया स बुज्झमाणा समुट्ठिया ।**

स यम और तप साधना ग्राम में अथवा वन में कहीं भी हो सकती है । एका तरूप से वन में ही हो, ऐसा आग्रह या एका त कथन नहीं होना चाहिये । यदि भावों की शुद्धि, पवित्रता, विवेक और आत्म निग्रह में सावधानी है, तो उभयत्र साधना शक्य है । यदि स्वय की सावधानी, विवेक और भावों की पवित्रता नहीं है, तो गाँव में रहो चाहे ज गल में, कहीं भी स यम की सफलता नहीं हो सकती । यह अनेका तदर्शन है ।

बाल, युवान और वृद्ध ये जीवन की तीन अवस्थाएँ है । इनमें से किसी भी अवस्था में बोध पाकर स न्यास, स यम ग्रहण किया जा सकता है । सावधानी प्रबल हो तो किसी भी अवस्था में स यम की सफलता मिल सकती है । कि तु ऐसा कोई एका त नियम नहीं किया जा सकता कि 'वृद्धावस्था में ही स न्यास–स यम ग्रहण करना चाहिये और बाल वय में या जवानी में दीक्षा नहीं लेना' । जैनागम ऐसे एका तिक निर्देश नहीं करके वैकल्पिक विधान करते हक्त । तीनों वयों के साधक साधना का सुअवसर पाकर सफल साधना कर सकते हक्त और विवेक और सावधानियों की कमी होने के कारण कोई भी अवस्था में दीक्षित

साधक साधना में असफल हो जाता है । मान, सम्मान, विषय, कषाय में डूब सकता है । अत: वय का भी आग्रह जैनागम नहीं स्वीकारते, कि तु, निर्णय का विवेक और सावधानी का विवेक रखने की सर्वत्र प्रेरणा की जाती हक्त ।

प्रश्न–६ : क्या जैनेतर साधुओं के साथ आहारादि का व्यवहार हो सकता है ?

उत्तर– इस अध्ययन के प्रथम उद्देशक में जैनेतर भिक्षुओं द्वारा आग्रह निम त्रण करने पर भी आहारादि स्वीकार करने का निषेध है । उसी प्रकार जैन श्रमणों में भी जिनका लि ग भिन्न हो, सिद्धा तों में विपरीतता हो तो उनके साथ भी आहारादि का व्यवहार निषिद्ध समझना चाहिये । विभिन्न मान्यताओं प्ररूपणाओं के कारण अति स पर्क हानिकारक हो सकता है, इसलिये आहारादि का निषेध समझना चाहिये । ऐसा उक्त विस्तृत सूत्र से स्पष्ट होता है ।

व्याख्या ग्र थों के अनुसार मान्यता भेद, विपरीतता के कारण कोई भी गलत पदार्थ खाने में दे सकता है अथवा किसी को कुछ भी असाता का स योग हो जाय तो एक दूसरे पर स देह, प्रतिस देह पैदा होता है । उग्र रूप ले लेने पर धार्मिक सामाजिक विरोधपूर्ण वातावरण पैदा होता है । अत: स यम साधक मुनि अनावश्यक परिस्थति में वृत्तिस क्षेप रूप आगम विधानों का उल्ल घन नहीं करे, उसी में अनेक हित निहित है ।

विशेष परिस्थिति में अपवाद रूप में कब, कैसा आचरण करना पडे, इसका निर्णय समय पर गीतार्थ बुहुश्रुत श्रमण विवेक पूर्वक कर सकते हक्त । वह कृत्य तत्कालीन मात्र होता है । उसे प्रवृत्तिरूप में नहीं बनाया जा सकता, ऐसा छेद सूत्रों के व्याख्याकारों का आशय है ।

प्रश्न–७ : आहार की गवेषणा के विषय में इस अध्ययन में क्या विशेष कथन है ?

उत्तर– इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक में आहार विवेक बताया है– (१) किसी के द्वारा श्रद्धा भक्तियुक्त निम त्रण पाकर भी आधाकर्म आदि दोषों से युक्त आहार ग्रहण नहीं करना । (२) दोषयुक्त आहार किसी ने तैयार करके रखा है, ऐसा किसी प्रकार से ज्ञात हो जाय तो भी उस सदोष आहार को नहीं लेना । (३) कभी सदोष

आहार का दाता या निम त्रक रुष्ट होकर उपसर्ग करे, कष्ट देवे तो भी भिक्षु सहन करे । अवसर हो तो आचार-गोचर समझावे, नहीं अवसर हो तो मौन रखे । कि तु गवेषणा के नियमों को किसी के आग्रह या भक्ति या धमकी से भ ग नहीं करे । मारणा तिक कष्ट भी सहन करे । इस प्रकार यहाँ पर गवेषणा के नियम पालन के विशिष्ट आदर्श मार्ग का, ध्रुव मार्ग का निर्देश किया गया है ।

सामुहिक व्यवस्था में रहने वाले श्रमणों को ऐसी स कट की परिस्थिति हो जाय तो प्रमुख श्रमण का या बहुश्रुत गीतार्थ श्रमण का विवेक युक्त कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने साथ में रहे हुए बाल, वृद्ध, ग्लान, अल्प धैर्यव त श्रमणों की स यम समाधि भावों का विवेक रखकर ही निर्णय लेवे । क्यों कि सभी की क्षमता का विचार कर, उनके समाधि भावों को सुरक्षित बनाये रखना भी प्रमुख साधु का परम कर्तव्य होता है । साथ ही कमजोर या अधैर्यवान साधकों को स स्कारित करके क्रमश: दृढ मनोबली एव धैर्यस पन्न बनाने का प्रयत्न रखना चाहिये । कि तु स स्कार सुधारे बिना, विवेक रहित बलात् व्यवहार किसी के साथ न हो, यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये ।

कष्टों को सहन करना स यम का आवश्यक गुण है तथा स यम भावों की समाधि को सुरक्षित रखना उससे भी अधिक जरूरी है, ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न–८ : शीत परीषह के विषय में यहाँ क्या सूचित किया है ?

उत्तर– इस अध्ययन के तीसरे उद्देशक में आये वर्णन के अनुसार अत्यधिक ठ डी के कारण भिक्षु का शरीर क पित हो रहा हो, वह ठ डी से ठिठुर रहा हो, ऐसी स्थिति को देखकर कोई दयालु गृहस्थ उसके शरीर को अग्नि से आतापित करने का निम त्रण करे या अग्नि से भरा कु डा आदि पास में रखकर तापने के लिये आग्रह करे, तो भिक्षु उसे इन्कार कर दे, स्वीकार नहीं करे । पास में लाकर रख देने पर भी अपने को उस अग्नि के सेवन से, उपयोग करने से दूर रखे, मन से भी उसे नहीं चाहे, अच्छा नहीं समझे ।

प्रश्न–९ : भिक्षु को तीन वस्त्र, दो वस्त्र, एक वस्त्र धारण करने के विषय में इस अध्ययन में क्या कहा है ?

उत्तर– इस अध्ययन के चौथे, पाँचवें, छट्ठे और सातवें उद्देशक में

वस्त्र स ब धी विशिष्ट अभिग्रह धारण करने वाले श्रमणों की आचारविधि व्यवस्था का स्पष्टीकरण किया है । उपरोक्त प्रकार के चारों उद्देशकों में वस्त्र स ब धी चार प्रकार के अभिग्रह-प्रतिज्ञाएँ कही गई है, यथा–

१. तीन वस्त्र (चादर) रखना — चौथे उद्देशक में
२. दो वस्त्र रखना — पाँचवें उद्देशक में
३. एक वस्त्र रखना — छट्ठे उद्देशक में
४. अचेल रहना या चोलपट्टक रखना — सातवें उद्देशक में

ये अभिग्रह करने वाले श्रमण चातुर्मास समाप्त होने पर शेष काल के लिये ऐसा नियम करते हक्त । उसके बाद वे वस्त्र जीर्ण हो जाय तो ऊणोदरी करते हक्त । कोई कारण से जल्दी फट जाय या गुम हो जाय तो भी निर्धारित समय तक नया ग्रहण नहीं करते हक्त । अचेल रहना पडे तो भी रहते हक्त । फिर चातुर्मास के पूर्व नये वस्त्र की याचना करते हक्त ।

प्रश्न–१० : वस्त्र को धोना र गना नहीं, इस कथन का क्या आशय है ?

उत्तर– वस्त्र स ब धी विशिष्ट अभिग्रह धारण करने वाले सूत्रोक्त उन साधकों को वस्त्र ग्रहण करने के बाद, उसे है जैसा ही अर्थात् मिला जैसा ही उपयोग में लेना होता है । धोना, सीना या नील आदि पदार्थ लगाना वगैरह कोई भी वस्त्र परिकर्म वे नहीं कर सकते । सामान्य साधु भी वस्त्रों को र गते नहीं है तो अभिग्रहधारी साधुओं को वस्त्र र गने का कोई कारण नहीं होता । अत: वस्त्र धोने के साथ जो र गने का स केत है वह धोने के बाद सफेदी या नील, आदि पदार्थ लगाये जाते हक्त उन्हें ही यहाँ 'र गने' शब्द से कहा गया है ।

इन रखे गये वस्त्रों पर वे साधक किसी भी प्रकार का ममत्व नहीं रखते एव चोरी आदि के भय से उन्हें छिपाकर के भी नहीं रखते ।

प्रश्न–११ : मरण की शरण साधु के लिये कितने प्रकार से कही गई हक्त?

उत्तर– इस आठवें विमोक्ष अध्ययन में चार प्रकार से मरण शरण का कथन है । वह इस प्रकार है– (१) **चौथे उद्देशक में–** स यम साधक के किसी समय तीव्र वेद मोह का उदय हो जाय तो वह उसे विविध उपायों के बाद भी शमन नहीं कर सके, ब्रह्मचर्य नष्ट करने की ही आवश्यक अवस्था पैदा हो जाय, मानसिक आत्मिक स तुलन न रह

सके, ऐसे समय में उसे अपने धर्म भावों की मौलिकता के लक्ष्य को सुरक्षित रखते हुए, कुशील सेवन न करना पडे ऐसे निर्णय से फाँसी लगाकर मरण स्वीकार लेना विहित है अथवा कभी किसी के द्वारा बलात्कार की स्थिति उपस्थित हो जाय, अन्य कोई ब्रह्मचर्य सुरक्षा का उपाय न मिल सके तो भी फाँसी द्वारा या उपलक्षण से अन्य किसी भी उपाय द्वारा तत्काल जीवन समाप्त कर लेना, मरण स्वीकार लेना विहित है, अर्थात् ऐसा साधु-साध्वी कर सकते हक्त । ऐसा करने के साथ ही स थारा ग्रहण करना और उसकी आराधना होना भी यहाँ अ तर्भावित है, ऐसा समझ लेना चाहिये । अ तिम सूत्र पाठ से भी ऐसा प्रतिध्वनित होता है ।**(२) पाँचवें उद्देशक में**– साधु अपनी विशिष्ट प्रतिज्ञाओं का सफलता पूर्वक पालन करता हुआ अ तिम समय तक समाधिपूर्वक स यम का पालन करता है । वह ऐसी शुद्ध पवित्र समाधि में या भक्त प्रत्याख्यान अनशन में मरण शरण को प्राप्त होता है । **(३) छट्ठे उद्देशक में**– इ गिनीमरण अनशन से और (४) **सातवें उद्देशक में**– पादपोपगमन अनशन से भिक्षु मरण शरण को प्राप्त कर सकता है । उक्त चारों प्रकार के मरण से मरने वाले श्रमण, धर्म के आराधक हक्त, मोक्ष मार्ग के पथिक हक्त और कर्मों का अ त करने वाले हक्त ।

प्रश्न–१२ : भक्त प्रत्याख्यान प डित मरण किस प्रकार होता है ?

उत्तर– किसी भी प्रकार के अनुभव ज्ञान या अनुमान ज्ञान से जब यह आभास हो जाय, समझ में आ जाय कि अब जीवन का समय अधिक नहीं है, अ तिम समय निकट आ पहुँचा है, तब आहार पानी का त्याग करना, शारीरिक क्रियाओं के अतिरिक्त समस्त प्रवृत्तियों का त्याग करना, श्रमणोपासक को समस्त सावद्य कार्यों का त्याग करना होता है । समस्त जीवों के प्रति वैर विरोधभाव को दूर कर क्षमा भाव, समभाव उपस्थित करना होता है । आत्म परिणामों को समस्त जीवों के प्रति समझपूर्वक पूर्ण पवित्र बनाना होता है । जीवन में हुए अपने विशिष्ट दोषों का, गलत कार्यों का और व्रतभ ग के प्रस गो का स्मरण कर, उनकी आलोचना प्रायश्चित करना होता है । दोषों की संख्या अधिक हो तो पुन: नये रूप से व्रतारोपण करना होता है अर्थात् पुन: महाव्रत या व्रतों के पच्चक्खाण का उच्चारण कर स्वीकार करना होता है । फिर शरीर के प्रति ममत्व छोड कर देह और आत्मा की भिन्नता

का चि तन सदा उपस्थित रखते हुए धर्म ध्यान के चि तन में ही लगे रहना होता है । अन्य किसी भी चि तन को अपना विषय नहीं बनाना होता है । शारीरिक कष्ट या कोई व्याधि हो तो भी परम शा ति से सहन करते हुए शा त प्रशा त मुद्रा में ही रहना होता है । इस प्रकार यह प डित मरण, कभी भी कहीं भी कोई भी व्यक्ति मृत्यु समय निकट जानकर कषाय रहित परिणामों में स्वीकार कर सकता है ।

प्रश्न–१३ : इ गिनी मरण अनशन कैसे होता है ?

उत्तर– विशिष्ट क्षमतास पन्न साधक यह दूसरे प्रकार का अनशन स्वीकार करते हक्त । इस अनशन विधि में अन्य के द्वारा किसी भी प्रकार की शरीर परिचर्या, सेवा सुश्रूषा नहीं ली जाती है, अन्यत्र गमनागमन भी नहीं किया जाता है । सीमित ५–२५ फुट आदि क्षेत्र में या कमरे में स्वय उठना, बैठना, घूमना आदि कर सकता है । शरीर को दबाना खुजलाना स्वय कर सकता है । बाह्य लेप या औषध भी नहीं कर सकता । भक्त प्रत्याख्यान रूप प्रथम अनशन की अपेक्षा इसमें ये विशेषता होती है । भक्त प्रत्याख्यान वाला भी इन नियमों का पालन कर सकता है कि तु उसमें ये नियम पालन आवश्यक नहीं होते ह्रक्त।

प्रश्न–१४ : पादपोपगमन अनशन कैसे होता है ?

उत्तर– इस अनशन को स्वीकार करने वाला मलमूत्र त्याग की प्रवृत्ति के लिये हलन-चलन या गमनागमन करता है । उसके अतिरिक्त दिन-रात एक ही किसी सयन आसन से स्थिर निश्चेष्ट जैसा रहता है । मौन पूर्वक, ध्यानपूर्वक, शारीरिक कष्ट या उपसर्ग को सहन करता है । यदि सेवा में अन्य श्रमण हो तो वे बाह्य सुरक्षा का ध्यान रखते हक्त । यदि अकेला ही है तो पशु आदि किसी के कुछ भी करने पर निश्चेष्ट जैसे ही धर्म ध्यान में लीन रहता है । यह अनशन साधना का अ तिम और उत्कृष्ट दर्जा है । इस अनशन को धारण करने वाले की क्षमता और धैर्य अपार होता है। शेष नियम भक्तप्रत्याख्यान वाले तो होते ही हक्त । यह अनशन घर में या गाँव-नगर में नहीं होता, ज गल में या पहाडों पर किया जाता है ।

भक्तप्रत्याख्यान के सभी नियम विधान तो इ गिनीमरण और पादपोपगमन में होते ही हक्त, उसके अतिरिक्त इन दोनों अनशनों की कुछ विशेषता होती है, जो ऊपर बताई गई है ।

प्रश्न–१५ : स लेखना स थारा प्राप्त करने के विषय में जीवन में क्या विवेक ज्ञान की आवश्यकता है ?

उत्तर– ठाणा गसूत्र ठाणा–३ के अनुसार प्रत्येक आत्मलक्षी साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं को प्रतिदिन तीन मनोरथ का चि तन करना होता है, जो कि आत्मा के लिये महान निर्जरा महान मुक्ति का हेतु बताया गया है । तदनुसार गृहस्थ और श्रमण दोनों प्रकार के साधकों को सदा अपनी चाहना, मनोगत स कल्प और अ तर ग आत्मपुकार से अपने को पूर्ण अभ्यस्त और स स्कारित करते रहना होता है कि जब कभी आयुष्य की समाप्ति और मरण का अवसर आने का कि चित् भी स केत या अनुभव हो जाय तो मक्त अविल ब निर्णय के साथ, स लेखना स थारा और आजीवन अनशन स्वीकार कर, स्वय इच्छापूर्वक कषाय भावों से अलग हट कर, आर्तध्यान रौद्रध्यान रूप अशुभ ध्यानों से रहित होकर, मात्र धर्मध्यान के स कल्प और प्रवृत्ति में अपने उस अवशेष जीवन को लगा दू और अ तिम श्वास तक उन्हीं धर्ममय परिणामों में, आगम आज्ञाओं के अनुसार ही आत्मा को भावित करता हुआ प डितमरण को प्राप्त करूँ ।

इस प्रकार के मनोरथ का चि तन करते हुए साधक के स स्कार इतने दृढ बन जाते हक्त कि स्वप्न में भी मृत्यु सामने दिखे तो वह तत्काल आजीवन अनशन का प्रत्याख्यान करने से व चित नहीं रहता है । इस प्रकार प्रत्येक साधक का परम कर्तव्य है कि इस ठाणा ग सूत्र कथित मनोरथ से अपने को स स्कारित, भावित करते रहना चाहिये । दूसरा विवेक कर्तव्य यह है कि जब कभी भी अचानक मृत्यु निकट दिखे, शरीर कितना भी सशक्त हो, आजीवन अनशन या सागारी अनशन करने की सावधानी और स स्कारों को तरोताजा रखना चाहिये । तीसरा विवेक कर्तव्य यह है कि जब शरीर की क्षमता क्षीण हो जाय, किसी भी प्रकार के कार्य में शरीर साथ न दे सके, या अनेक रोगों से आक्रा त हो जाय अथवा वृद्धा-वस्था से घिर जाय, ऐसे समय में साधक को जीवन की आशावादिता छोडकर हिम्मत के साथ आत्म क्षमता को स्थिर, केन्द्रित करके आध्यात्म ज्ञान के स स्कारों को उपस्थित करके, आजीवन अनशन स्वीकार करने का निर्णय कर लेना चाहिये । स लेखना प्रार भ कर, तप का अभ्यास बढाकर स थारा स्वीकार करना चाहिये । जीवन के अ त तक जीवन की आशा से डॉक्टरों और इलाजों में अ तिम जीवन को खराब नहीं करना चाहिये ।

इस अध्ययन के छट्ठे, सातवें और आठवें तीनों उद्देशक में ऐसा ही निर्देश किया गया है कि जब शरीर अपने धार्मिक एव व्यावहारिक आवश्यक कार्यों में साथ न दे तब साधक स लेखना प्रार भ कर क्रमश: आहार घटावे, तपस्या का अभ्यास बढावे और कषायों को कृश, म द, म दतम करता जावे, ऐसा करते हुए जब कभी भी मृत्यु का, जीवन समाप्ति का समय अत्य त निकट लगे, तब पूर्ण रूपेण आजीवन अनशन स्वीकार कर लेना चाहिये ।

प्रश्न–१६ : आहार करने की यहाँ विशेष विधि क्या कही गई है ?

उत्तर– साधु के आहार करने की विस्तृत विधि दशवैकालिक सूत्र एव प्रश्नव्याकरण सूत्र में बताई गई है । यहाँ इस अध्ययन के छट्ठे उद्देशक में यह आदेश किया है कि भिक्षु स्वाद के लक्ष्य से स्वादिष्ट वस्तु को मुँह में इधर उधर घुमावे नहीं । जिधर जिस दाढा में जितना जो भी आहार आया है, उसे वहीं चबाकर निगल जावे । इस प्रकार यहाँ स्वादवृत्ति के लक्ष्य का पूर्ण रूप से निषेध किया गया है । कभी आहार को चबाने मात्र के लक्ष्य से एक दाढा से दूसरी दाढा तरफ ले जाना पडे उसका सूत्र में निषेध नहीं है किन्तु स्पष्ट रूप से स्वाद की भावना और स्वाद के लक्ष्य से निषेध करने के लिये पुन: पुन: **'आसायमाणे' (आस्वादमान:)** शब्द रखा गया है ।

प्रश्न–१७ : वस्त्र के अभिग्रहों के साथ पात्र स ब धी क्या निर्देश है ?

उत्तर– इस अध्ययन के चौथे पाँचवें छट्ठे अध्ययन में क्रमश: तीन, दो और एक वस्त्र धारण करने के अभिग्रह के साथ सर्वत्र पात्र का विधान भी है । वहाँ वस्त्र के अभिग्रह के साथ पात्र के अभिग्रह का कोई स केत नहीं है अपितु स क्षेप में बहुवचन युक्त पात्र शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ होता है– चौथे हक्त पात्र जिसके पास, तीसरे हक्त पात्र जिसके पास, दूसरे हक्त पात्र जिसके पास । इस प्रकार अनेक पात्र होने का सामान्य कथन मात्र है पर तु वस्त्र के अभिग्रह के साथ पात्र स ब धी अभिग्रह का या उनका त्याग करने का कथन नहीं है ।

प्रश्न–१८ : आहार और वस्त्र के इन अभिग्रहों में क्या बाह्य साधना है या आभ्य तर ?

उत्तर– इस अध्ययन के पाँचवें, छट्ठे और सातवें उद्देशक में आहार

स ब धी अभिग्रह का वर्णन है तथा चौथे से सातवें तक चारों उद्देशकों के प्रार भ में वस्त्र स ब धी अभिग्रह का वर्णन है । ये अभिग्रह स्थूल दृष्टि से बाह्यतप ऊणोदरी और वृत्ति स क्षेप तप में समाविष्ट होते हक्त तथापि इनके साथ जो सहिष्णुता, लोक प्रवाह या लोकरुचि त्याग, शरीर के प्रति मोह त्याग एव निस्पृहता, सुखैषिता का त्याग एव जिनाज्ञा में रमणता आदि से परिमाणों की विशुद्धि एव आर्त रौद्र ध्यान से रहित होकर धर्म शुक्लध्यान में ही आत्मा का लगे रहना, साथ ही अभिग्रहधारी उन साधकों का रात-दिन अप्रमाद भाव से स्वाध्याय तथा कायोत्सर्ग में लगे रहना इत्यादि अनेक आभ्य तर तप साधनाएँ होती है । कर्मों से मुक्त होने का मुख्य लक्ष्य होने से वे अभिग्रहधारी उच्चकोटि के श्रमण निर तर महान कर्मों की निर्जरा करते हुए विमोक्ष नामक इस अध्ययन में सूचित ये स पूर्ण कर्म विमोक्ष कराने वाली साधनाएँ करते हक्त । जो स्थूल एव सूक्ष्म दोनों दृष्टियों से देखने पर द्रव्य-भाव उभयात्मक साधना वाली प्रवृत्तियाँ हक्त,साधनाएँहक्त, ऐसा समझना एव श्रद्धा करना चाहिये । कि तु केवल एक ही दृष्टि से देखकर सोचकर, बाह्य प्रवृत्ति मात्र है, ऐसा कह कर, इन उत्तम विमोक्ष दायक साधनाओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । ये साधनाएँ स्थूल दृष्टि से बाह्य दिखते हुए भी, शरीर के प्रति आसक्ति, ममत्व को घटाने वाली और देह में रहते हुए देहातीत अवस्था को तथा स सारस्थ होते हुए स सारातीत, स सार व्यवहारातीत अवस्था को देने वाली है ।

सार यह है कि छोटी या बडी, कठिन या सरल, किसी भी जिनाज्ञा वाली साधना के साथ सम्यग्ज्ञान, सम्यक्श्रद्धान तथा सम्यक् प्ररूपणा है, सम्यग् लक्ष्य है, तो वे सभी साधनाएँ आत्मा के लिये द्रव्य-भाव उभययुक्त होकर मुक्ति तक पहुँचाने वाली है । अत: जब जैसा स योग, अवसर और उत्साह हो तब सम्यक् श्रद्धा और सम्यग् लक्ष्य के साथ सूत्रोक्त किसी भी साधनाओं को स्वीकार कर अपनी म जिल में आगे बढते रहना चाहिये । चाहे वे स्थूल दृष्टि से आभ्य तर हो या बाह्य, द्रव्य रूप हो या भाव रूप, कि तु यदि तीर्थंकर प्रभु ने उसे उपादेय बताई है, आगम रूप जिनवाणी में जो आचरणीय कही गई है, वे सभी साधनाएँ मोक्ष हेतुक ही है, ऐसी दृढ आस्था रखनी चाहिये । तीर्थंकर प्रभु जैसी उच्च आत्माएँ भी गृहत्याग, महाव्रत ग्रहण प्रतिज्ञा,

केश लोच, पैदल भ्रमण, भिक्षावृत्ति, अस्नान, अद तधावन, विविध अभिग्रह एव उपवास आदि विकट तपस्या इत्यादि स्थूल दृष्टि से बाह्य दिखने वाली साधनाएँ स्वय स्वीकार करते हक्त तथा उपदेश द्वारा अन्य मुमुक्षु प्राणियों को श्रावकव्रत-नियम, सामायिक, पौषध, उपभोग-परिभोग के पदार्थों की मर्यादा एव गृहत्याग का उपदेश देकर स यम स्वीकार करवाते हक्त । बाह्य लि ग वेशभूषा, मुखवस्त्रिका आदि ग्रहण कराते हक्त और प्रत्याख्यान के पाठ का उच्चारण भी कराते हक्त । इन सभी द्रव्य साधनाओं के साथ ज्ञानियों की दृष्टि में सूक्ष्म दृष्टि से भावों की साधना, अ तर्निहित होती है । ये साधनाएँ तीर्थंकरों एव महान आत्माओं द्वारा आसेवित है, उपादेय है और सर्वथा हितावह है । अत: जिनाज्ञा में निर्दिष्ट ये धर्म साधनाएँ किसी दृष्टि से उपेक्षा करने योग्य नहीं कही जा सकती । फिर भी मात्र एका त भाववादिता का चश्मा चढाकर कोई अपने आप को महा वीतरागदशा में समझकर, देशविरति, सर्वविरति की एव १२ भेदे तप रूप किसी भी साधनाओं की, व्रत-नियमों की उपेक्षणीयता सिद्ध करे, इन जिनाज्ञा की साधनाओं के महत्व को गिराने का प्रयत्न करे तो वह उसकी एका तवादिता है, एका तिकदृष्टि है । एव तीर्थंकरोक्त सर्वविरति एव देशविरति धर्म की किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवहेलना करना है । ऐसे व्यक्ति अपने आप को भले वीतराग साधक समझने का स तोष करे, कि तु सच्चे अर्थों में वे सर्वज्ञोक्त मार्ग की सच्ची श्रद्धा से भी कोषों दूर हो जाते हक्त । क्यों कि वे अपनी एका तिक भाववादिता के आग्रह में तीर्थंकरों की और जिनवाणी रूप आगमों की भी अधिकतम उपेक्षा ही करते हक्त तथा अपने ही विचारों म तव्यों का सम्मान बढाते रहते हक्त, आगम और आगम आज्ञा को भुलाते जाते हक्त । अत: आत्महितैषी साधकों को ऐसे एका त भावों की उच्चता के चक्कर में न आकर द्रव्य-भाव के सुमेल से युक्त जिनेश्वर कथित व्रत-नियम, अभिग्रह एव महाव्रतों की साधना से दूर नहीं भागना चाहिये, उनका त्याग नहीं कर देना चाहिये, कि तु उनकी अभिवृद्धि करते हुए भावों को विशुद्ध विशुद्धतर बनाने का, हृदय को पवित्र पवित्रतम बनाने का एव जीवन में करुणा, नम्रता, सरलता, गुणग्रहणता आदि गुणों की अभिवृद्धि करते हुए, शरीर के ममत्व को घटाते हुए, कष्ट सहिष्णुता को बढाते हुए, कषाय

मुक्त, सहज, सरल जीवन बनाने का प्रयत्न करना चाहिये और आगम ज्ञान में अभिवृद्धि करके उसी के स्वाध्याय अनुप्रेक्षण में आत्मा को एकमेक कर देना चाहिये । बहिर्मुखी चि तनो को मोडकर उन्हें अ तर्मुखी बनाते रहना चाहिये । इस प्रकार द्रव्य और भाव के सुमेल से युक्त जिनाज्ञामय साधना ही सच्चे अर्थों में मोक्षदायक बन सकती है । स सार में अनेक बुद्धि कौशल वाले मानव एका त मार्ग बताते रहते हक्त । पुण्यवान साधकों को अनेका तिक सर्वज्ञोक्त मार्ग में स्थिरता के साथ गतिमान रहना चाहिये ।

प्रश्न–१९ : स थारा की विधि में और क्या ध्यान रखना चाहिये ?

उत्तर– अचित, निर्जीव और हरीघास या वनस्पति से रहित, शा त-एका त स्थान की प्रतिलेखना करनी चाहिये । सूखे घास का बिछौना करना चाहिये । लघुनीत, बडीनीत(मल-मूत्र) त्यागने या परठने की भूमि को देख लेना चाहिये । क्यों कि स थारे में अचित निर्दोष जीव रहित भूमि में ही मल-मूत्र का विसर्जन किया जाता है । धैर्य से भूख, प्यास, कष्ट, उपसर्ग सहन करना होता है और मनुष्य या देव स ब धी आगामी सुखों की चाहना, आका क्षा नहीं करनी होती है अर्थात् किसी प्रकार का नियाणा(निदान) नहीं करना चाहिये ।

नवमाँ अध्ययन : उपधान श्रुत

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम क्या है और उसका विषय क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम 'उपधान श्रुत' है । इसमें भगवान महावीर स्वामी के छद्मस्थ अवस्था के स यम पर्याय में आचरित विविध साधनाओं एव तप उपसर्ग आदि का कि चित् स कलन और दिग्दर्शन है । पूरा अध्ययन गाथामय–पद्यमय है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में उद्देशक कितने हक्त उनमें क्या क्या वर्णन है ?

उत्तर– इस अध्ययन में ४ उद्देशों में भगवान महावीर स्वामी का स यम जीवन वर्णन इस प्रकार है– **प्रथम उद्देशक में–** स यम ग्रहण के

पूर्व का आचरण, स यम ग्रहण के बाद की साधनाएँ, साधना और धर्म स ब धी सिद्धा त, समिति गुप्ति के पालन की विधियाँ एव देवदूष्य वस्त्र ग्रहण करने का और उसके व्युत्सर्जन–छोडने का वर्णन है । **दूसरे उद्देशक में–** स यम के विचरणकाल में निवास करने के मकानों–शय्याओं का, उनमें होने वाले कष्ट उपसर्गों का और भगवान की सहनशीलता का वर्णन है । **तीसरे उद्देशक में–** अनार्य क्षेत्र में विचरण का, अनार्य लोगों द्वारा दिये जाने वाले घोर रोमा चकारी उपसर्गों का और भगवान की शूरवीरता का वर्णन है । **चौथे उद्देशक में–** भगवान की अनशन, ऊणोदरी, रस परित्याग आदि तपस्याओं का, गोचरी की गवेषणा विधिओं का, ध्यान करने का और अप्रमाद का अर्थात् प्रमाद (दोष सेवन) नहीं करने का वर्णन है ।

प्रश्न–३ : श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने दीक्षा कब और किस तरह ली थी ?

उत्तर– भगवान ने हेम तऋतु के प्रार भ में प्रव्रज्या ग्रहण करके विचरण किया था ।– **हेम ते, अहुणा पव्वइए रीयत्था ॥१॥**

भगवान ने निष्क्रमण के पहले कुछ अधिक दो वर्ष सचित्त पानी पीने का त्याग कर दिया था, एकत्ववास में रहे अर्थात् स्त्रीस ग का त्याग किया था, शरीर की सार स भाल ब ध कर दी थी अर्थात् स्नान, म जन आदि और शरीर स स्कार, विभूषा आदि का भी दो वर्ष साधिक त्याग किया था । यह प्रथम उद्देशक की ग्यारहवीं गाथा में वर्णित है ।

इसी सूत्र में आगे २४ वें भावना अध्ययन में भगवान की दीक्षा विधि का तथा अन्य भी बहुत वर्णन विस्तार से है ।

प्रश्न–४ : तीर्थंकर वस्त्र रखते हक्त ? उसको उपयोग में लेते हक्त ?

उत्तर– तीर्थंकर दीक्षा ग्रहण करते समय इन्द्र द्वारा प्रदत्त एक देवदूष्य नामक वस्त्र ग्रहण करते हक्त, रखते हक्त । तीर्थंकरों का यह परम्परानुगत धर्म अथवा आचारकल्प होता है कि वे उस इन्द्रप्रदत्त वस्त्र को रखते हक्त कि तु उसका उपयोग नहीं करते ।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने उस वस्त्र को एक वर्ष और एक महीने तक रखा था । फिर उसको वोसिरा दिया था, पूर्णतया छोड दिया था । उसे छोडने के बाद प्रभु अचेल रहे थे ।

यहाँ पर यह विशेष विचारणीय है कि भगवान के जीवन वर्णन में

देवदूष्य के अतिरिक्त किसी भी उपकरण की चर्चा नहीं है । मुख वस्त्रिका और रजोहरण ये दोनों स यम जीवन के उपयोगी एव अत्य त आवश्यक उपकरण हक्त । सभी गच्छत्यागी, वस्त्रत्यागी अचेल साधक भी जिनशासन में रहते हुए ये दो उपकरण अवश्य रखते हक्त । भगवान के विषय में आगम वर्णनों में मुखवस्त्रिका, रजोहरण रखने का वर्णन भी नहीं है और नहीं रखने रूप स्पष्ट निषेध भी कहीं नहीं है । इन दोनों उपकरणों के बिना भाषासमिति और ईर्यासमिति का सम्यक् पालन होना स भव नहीं है अपितु अस भव जैसा ही है । इस विचारणा के कारण आजकल के विचारक तीर्थंकरों के मुखवस्त्रिका रजोहरण दो उपकरण होना स्वीकार करते हक्त, प्रचारपत्रों से चर्चा करते हक्त ।

तीर्थंकर को स्वलि ग सिद्ध में गिना जाता है और द्रव्य से स्वलि ग कम से कम मुखवस्त्रिका और रजोहरण ही है । उसके बिना स्वलि ग का कोई परिचय नहीं होता है । कुछ भी उपकरण नहीं होना तो अलि ग होता है अथवा पूर्ण अचेल तो अन्य धर्मी भी होते हक्त तो उनमें और जैन साधु में स्वलि ग अन्यलि ग का अ तर कुछ नहीं रहता है ।

स्वलि ग में उत्कृष्ट एक समय में १०८ सिद्ध हो सकते हक्त । उनमें तीर्थंकर भी साथ में हो सकते हक्त । भगवान ऋषभदेव स्वामी एक समय में १०८ के साथ निर्वाण प्राप्त हुए थे जिसमें ऐरवत क्षेत्र के तीर्थंकर भी सामिल करके गिने गये है ।

कोई भी साधु केवली हो जाने पर मुखवस्त्रिका और रजोहरण का त्याग नहीं करता है, नहीं कर सकता है । इन दोनों उपकरणों के बिना चल भी नहीं सकता । यथा समय प्रमार्जन नहीं करने वाले को पापश्रमण कहा गया है और खुल्ले मुँह बोलना तो शक्रेंद्र के लिये भी सावद्य भाषा कही गई है । तीर्थंकर स यम जीवन में और केवल ज्ञान पर्याय में अरबों खरबों वर्ष भी प्रवचन प्रश्नोत्तर देते हक्त उस समय निर तर मुँह के पास हाथ रखना भी योग्य या उपयुक्त नहीं लगता है । अत: दोनों उपकरणों के होने की नूतन विचारकों की विचारणा ख डन योग्य नहीं अपितु विचारणीय, अनुप्रेक्षणीय है ।

सभी तीर्थंकर ग्रहण किये और रखे गये देवदूष्य वस्त्र को एक वर्ष के बाद कभी भी वोसिरा देते हक्त । भगवान महावीर स्वामी ने एक वर्ष और एक महिना रखने के बाद सर्दी की ऋतु में विहार करते

हुए मार्ग में योग्य स्थान में वस्त्र को वोसिरा दिया था, परठ दिया था ।

प्रश्न–५ : भगवान महावीर ने वस्त्र को ज गल में परठ दिया था या किसी ब्राह्मण को दे दिया था ?

उत्तर– आगम के इस वर्णन से स्पष्ट है कि भगवान ने विहार करते रास्ते में एक वर्ष बाद उस वस्त्र को परठ दिया, वोसिरा दिया । किसी को देने के लिये यहाँ कोई शब्द नहीं है । वस्त्र को छोडने का प्रस ग, कथन होते हुए भी देने की बात यहाँ नहीं की गई है । अत: हम आगम आधार से यह नहीं कह सकते, नहीं मान सकते कि भगवान ने वस्त्र फाडकर ब्राह्मण के मा गने पर उसे दिया । कथा विस्तार में कई बातें कथाकार विस्तृत बना देते हक्त, घड देते हक्त, उसे शास्त्र जितना प्रमाणभूत मानना जरूरी नहीं है । वास्तव में स यम मर्यादा में गृहस्थ को वस्त्रादि दिये नहीं जाते । अनावश्यक हो तो वोसिरा दिये जाते हक्त । भगवान ने अपने साधना जीवन काल में कोई भी स यम मर्यादा का भ ग नहीं किया था । अत: भगवान ने आधा देवदूष्य वस्त्र ब्राह्मण को फाडकर दे दिया था, ऐसा कथन आगम से विपरीत है, कल्पित मात्र है । इस अध्ययन के मूल पाठ से ऐसा कोई अर्थ निकलता भी नहीं है । अत: ऐसी कथाओं की पर पराएँ ध्यान में आ जाने के बाद छोडनी चाहिये, सुधार लेनी चाहिये ।

प्रश्न–६ : स यम विधियों के पालन में छद्मस्थ काल में भगवान ने क्या ध्यान रखा था ?

उत्तर– १. भगवान छ काय के जीवों का पूर्ण ध्यान रखते हुए उनकी तनिक भी विराधना न हो, इस तरह प्रत्येक प्रवृत्ति करते थे । **(२)** एकाग्रचित्त से सामने मर्यादित(पुरुष प्रमाण) भूमि देखते हुए आजु–बाजु नहीं देखते हुए चलते थे ।**(३)** स्त्रियों से स युक्त स्थान में ठहरने का प्रस ग आ जाय तो भगवान अपने ब्रह्मचर्य व्रत में सावधान रहते थे । **(४)** गृहस्थ लोगों के साथ बैठकर वातचीत करना आदि अतिस पर्क का त्याग करके ध्यान में लीन रहते थे । **(५)** रास्ते चलते कोई अभिवादन करे या कुछ पूछे तो उसका कुछ भी उत्तर दिये बिना आगे बढ जाते थे । **(६)** स कल्पजा या अस कल्पजा किसी प्रकार की हिंसा नहीं करते, नहीं करवाते । **(७)** आधाकर्मी(औद्देशिक) आहार पानी, गृहस्थ का वस्त्र या पात्र ग्रहण नहीं करते और स खडी=बडे

जीमणवार में भिक्षार्थ नहीं जाते थे । **(८)** आँखो की सफाई, शुद्धि भी नहीं करते और शरीर में खाज भी नहीं खुजलाते, निरोग होते हुए भी भगवान सदा भूख से कम ही खाते थे । कोई भी प्रकार की चिकित्सा नहीं लेते थे । **(९)** स्नान, मालिस, द तम जन, शरीर मर्दन, वमन विरेचन क्रिया आदि नहीं करते थे अर्थात् शरीर की शुश्रूषा से मुक्त रहते थे । **(१०)** पशु, पक्षी, भिक्षाचरों को अ तराय न पडे, इसका पूर्ण पालन करते हुए ग्रामादि मे प्रवेश कर विशुद्ध भिक्षा ग्रहण करते थे । म द गति से चलते थे ।

प्रश्न–७ : श्रमण भगवान महावीर ने १२ वर्ष साधिक साधना काल में कभी सयन आसन किया था ? निद्रा ली थी ?

उत्तर– कथाग्र थों एव श्रुतपर परा में ऐसा कहा जाता है कि– भगवान महावीर स्वामी ने साढे बारह वर्ष में सयनासन नहीं किया था और बिना सोये(प्रचला निद्रा की अपेक्षा भगवान को कुल मिलाकर अनेकों बार की जोड करने पर भी) मुहूर्त भर की निद्रा आई थी कि तु भगवान ने स कल्प पूर्वक सोना या निद्रा लेना नहीं किया था ।

आचारा ग के इस अध्ययन के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि कथाग्र थों आदि की ऐसी एका तिक धारणा आगम सापेक्ष नहीं है । अर्थ भ्रम तथा भक्ति, अतिशयोक्ति से चल पडी है । इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक की पाँचवीं गाथा में कहा गया है– **णिद्द पि णो पगामाए सेवइ, भगव उट्ठाए । जग्गावाइ य अप्पाण , इसि साई आसि अपडिण्णे ॥५॥ भावार्थ–** भगवान(प्रकाम) अत्यधिक निद्रा का सेवन नहीं करते थे । शीघ्र उठकर(सावधान होकर) आत्मा को जागृत कर लेते थे । लम्बे सोने के आग्रह बिना अर्थात् आवश्यक लगने पर थोडा सो जाते थे, लेट जाते थे । उठने पर भी निद्रा से पूर्ण मुक्ति पाने के लिये भगवान कोईक बार रात्रि में बाहर निकलकर थोडी देर च क्रमण कर लेते थे अर्थात् भ्रमण कर लेते थे ।(**ऐसा गाथा ६ में कहा गया है)** तात्पर्य यह है कि श्रमण भगवान महावीर साधना काल में अधिकतम द्रव्य से और भाव से जागृत रहते थे, अत्यधिक निद्रा नहीं लेते थे और लम्बे समय के स कल्प से नहीं सोते थे अर्थात् कुछ निद्रा का सेवन भी कर लेते थे और कुछ सो भी जाते थे । कि तु सामान्य मनुष्य स्वभाव के अनुसार पाँच-सात घ टे पूर्ण सोना या निद्रा

लेना आदि नहीं करते थे । शरीर स्वभाव से स्वत: कभी निद्रा आ जाती तो शीघ्र जागृत हो जाते एव कभी विश्राम की आवश्यकता महेसूस होती तो थोडा सा सयन भी कर लेते थे ।

प्रश्न–८ : इसी अध्ययन के चौथे उद्देशक में कहा है कि– भगवान ने छद्मस्थ काल में एक बार भी प्रमाद का सेवन नहीं किया था, इसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– इस प द्रहवीं गाथा में भावप्रमाद की अपेक्षा कथन है वे भाव-प्रमाद भी उसी गाथा में सूचित किये गये हक्त । **अकसाई विगय गेही, सद्दरूवेसु अमुच्छिए झाई । छउमत्थे वि परक्कममाणे, णो पमाय सइ पि कुव्वित्था ॥१५॥ भावार्थ–** भगवान महावीर स्वामी कषाय रहित होकर, शरीरादि पर गृद्धि भाव से रहित होकर एव शब्द रूप आदि विषयों में मूर्च्छा चाहना से रहित होकर आत्म ध्यान में रहते थे । इस प्रकार भगवान ने छद्मस्थ काल में स यम तप में पराक्रम करते हुए कभी भी स यम में प्रमाद अर्थात् दोष सेवन नहीं किया था । तप स यम में, नियम उपनियम में या भाव शुद्धि–पवित्रता में कभी किसी भी प्रकार का प्रमाद(दोष सेवन) नहीं किया था ।

इस गाथा में सोने या निद्रा लेने का प्रस ग स्पष्ट है भी नहीं और समझना भी नहीं चाहिये । क्यों कि ऐसा समझने से अर्थ भ्रम का दोष और पूर्वापर विरोध दोष होता है । इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक की पाँचवीं-छट्ठी गाथा को नजर में रखते हुए इस चौथे उद्देशक की प द्रहवी गाथा का ऐसा सही एव प्रस ग स गत अर्थ करना ही उपयुक्त होता है ।

प्रश्न–९ : भगवान ने साधना काल में क्या-क्या तप किये ?

उत्तर– भगवान महावीर स्वामी ने बाह्य और आभ्य तर तप इस प्रकार किये थे– **(१)** आहार की मात्रा(खुराक या भूख) से कम खाना, औषध त्याग **(२)** ठ डी एव गर्मी की आतापना ।**(३)** भात(ओदन), बोरकूटा उडद(के बाकुले) इन तीन खाद्य पदार्थों से आठ महिने तक निर्वाह किया था अर्थात् तीन पदार्थों में से कोई पदार्थ मिले तो लेना, ऐसा अभिग्रह किया था । **(४)** साधना काल में भगवान ने कभी अर्धमासखमण, कभी मासखमण, कभी साधिक दो मास की तपस्या यावत् कभी छ: महीने की अनशन तपस्या की थी । ये सभी तपस्या भगवान ने चौविहार की थी अर्थात् गर्म पानी का भी तपस्या में सेवन नहीं किया था ।

(५) अमनोज्ञ, नीरस, उच्छिष्ट ऐसे(अन्न ग्लान) आहार का भी कभी सेवन करते थे अर्थात् खाने के बाद बचा खुचा अन्य श्रमण भिक्षु जिसे लेना भी नहीं चाहे, वैसा फेंकने योग्य आहार भी भगवान कभी ग्रहण कर स तोष करते थे अर्थात् वह आहार स यम के किसी नियम से अयोग्य नहीं होता कि तु मन को योग्य नहीं लग सकता और कभी शरीर को भी योग्य नहीं हो सकता, ऐसे आहार का प्रशस्त परिणामों से सेवन करते थे । ऐसे उच्च साधकों को अशाता वेदनीय का स योग न होने से वह अमनोज्ञ आहार भी सही रूप में परिणत हो जाता है । **(६)** कभी भगवान बेला, तेला, चौला, प चोला आदि तपस्याएँ करते थे; वे भी केवल कर्म निर्जरा हेतु करते थे । **(७)** कभी स स्कारित, कभी रूखासूखा, कभी ठ डा आहार ग्रहण करते थे । कभी पुराने उडद, कभी निस्वादु, कभी निस्सार– पौष्टिक तत्त्व रहित, ऐसे हल्की जाति के पदार्थों का आहार ग्रहण करते थे । यहाँ ठ डे आहार से टीकाकार ने 'दो तीन दिन के आहार' को ग्रहण करते थे, ऐसा भी अर्थ किया है। क्षेत्र, काल मौसम की अनुकूलता हो तो खाद्य पदार्थ अनेक दिन भी योग्य (खाने लायक) रह सकते हक्त और गृहस्थ लोग विवेक से रखते भी हक्त खाते भी हक्त। अत: किसी भी पदार्थ के बिगडने के लिये कोई समय का एका तिक नियम नहीं कहना चाहिये ।**(८)** भगवान स्थिर खडे रहकर या बैठकर ध्यान करते थे । जिसमें आत्म चि तन के अतिरिक्त तत्त्वचि तन या लोक स्वरूप चि तन भी करते थे ।

प्रश्न– १० : साधना काल में भगवान ने कौन कौन से परीषह उपसर्ग सहन किये थे ?

उत्तर– **(१)** स यम ग्रहण करने के अन तर भगवान ने चार महीना साधिक अनेक छोटे त्रस प्राणियों द्वारा हुए त्रास को सहन किया । दीक्षा ग्रहण के पूर्व भगवान के शरीर पर लगाये गये सुग धी द्रव्यों की सुवास के कारण ये जन्तु आकर भगवान के शरीर पर घूमते थे और कोई रुष्ट होकर काट लेते थे । भगवान उन जीवों को हटाने का स कल्प भी नहीं करते थे । **(२)** भगवान वस्त्र रहित(नग्न) रहते थे और चलते समय आँखों को एक क्षेत्र अवग्रह(पुरुष प्रमाण) में स्थिर, एकाग्र रखकर चलते थे । ऐसी चाल और निर्वस्त्रता के कारण कुतूहल प्रकृति के बालक भगवान के पीछे हो जाते या अन्य बालकों को बुला-बुला कर

दिखाते कि अरे यह क्या आया है ? भगवान उन बच्चों के कोलाहल को समभाव और अपनी ज्ञान की मस्ती से पार कर लेते थे ।(३) कई जगह भगवान के ठहरने के बाद वहाँ स्त्रियाँ भी आकर रह जाती और वे कई प्रकार से अनुकूल परीषह रूप प्रवृत्तियाँ भी करती । भगवान बडे विवेक से उनकी उपेक्षा करके आत्म ध्यान में लीन बन जाते थे । (४) कभी भगवान अपने ध्यान मौन के कारण किसी के अभिवादन (विनय-अनुनय)को स्वीकार नहीं करते थे । तब कोई पुण्यहीन लोग गुस्से में आकर भगवान को मारपीट(ड डों से) भी कर देते थे और लहुलुहाण भी कर देते थे । (५) दुस्सह कष्ट होने पर भी उन्हें भगवान समभाव से पार कर लेते थे और कभी भगवान के विश्रा ति स्थान में या उसके अत्य त निकट सामने नृत्य, गीत, वाजि त्र, द डयुद्ध, मुष्टियुद्ध एव परस्पर वार्तालाप आदि कार्यक्रम और प्रस ग उपस्थित हो जाते तो भगवान किसी भी प्रकार का शोक-हर्ष नहीं करते थे । उनको देखने सुनने की चाहना भी नहीं करते थे । (६) सर्दी के मौसम में जब लोग अग्नि तापते, वस्त्र कम्बलों का उपयोग करते, वैसी अति कष्टकारी हेम त ऋतु में भगवान खुली शालाओं में ठहरकर भी निर्वस्त्र रहकर शीत को सहन करते । उसमें भी कभी हाथ पसार कर–फैलाकर खडे होकर कायोत्सर्ग करते और कभी रात्रि में मकान से बाहर निकलकर खुल्ले में ध्यान कर शीत परीषह सहन करते थे । कि तु हाथों को छाती के पास ब धे रखकर सर्दी से कभी ठिठुरते नहीं थे । (७) भगवान जिन मकानों में ठहरते थे, रात्रि निवास करते थे; वहाँ सर्प, चूहे, चमगादड, मच्छर आदि पशु पक्षियों के कष्टदायक उपसर्ग होते थे । परदारसेवी घुमक्कड लोग, कोतवाल, पहरेदार, ग्रामरक्षक तथा ग्रामीणजनों के द्वारा, स्त्रियों के द्वारा अकेले और निर्वस्त्र भगवान को अनेक प्रकार के उपसर्ग आते थे । देव स ब धी उपसर्ग भी आते थे; इन सभी अनुकूल और प्रतिकूल कष्ट उपसर्गों को भगवान रति-अरति (हर्ष-शोक)से मुक्त होकर समभाव से सहन करते हुए आत्म रमणता में लीन रहते थे ।(८) भगवान कुछ समय अनार्य क्षेत्र में गये थे । वहाँ क्षेत्रीय और व्यक्तीय अनेक भीषण कष्टों को भगवान ने सहन किये । यथा– वहाँ आहार भी अत्य त रूक्ष मिलता था । वहाँ के लोग भगवान के शरीर को नखों से लूषित कर देते थे । कुत्तों से रक्षा करना तो दूर कि तु

छू छू करके कुत्तों को काटने की प्रेरणा करते थे । अन्य स न्यासी लाठी, द ड रखकर चलते थे तो भी उन्हें कुत्ते काट लेते थे । ऐसे क्रूर कुत्तों के उपद्रव युक्त क्षेत्रों में भी भगवान कुत्तों से किसी प्रकार का अपना बचाव किये बिना अपनी मस्ती से चलते थे । शरीर का ममत्व छोडकर शरीर में का टे के समान खटकने वाले ऐसे घोर कष्टों को स ग्राम के अग्रभाग में गये हाथी के समान सहन करते थे । (९) अनार्य क्षेत्र में कई बार रात्रि निवास के लिये गाँव भी नहीं मिलते और कभी तो कोई गाँव के बाहर से ही भगवान को हकाल देते थे– चले जाओ इस गाँव में आने की जरूरत नहीं हक्त, अन्यत्र कहीं भी चले जाओ । (१०) कई बार वहाँ भगवान को ड डे, मुष्टि, भाले आदि से मारा गया । कभी मा स काट लिया गया, कभी चमडी को चिमटी द्वारा उपाड लिया गया । कोई पीटते, कोई धूल उछालते, कोई खडे रहे भगवान को पीछे से पकड कर ऊँचे उठाकर पटक देते । कोई बैठे हुए भगवान को धक्का मारकर आसन से अलग दूर कर देते । इन सभी कष्टों को भगवान ने अनार्य भूमि में निश्चल भावों से सहन किये । वास्तव में भगवान अपने महान कर्मों की निर्जरा के लिये, अपनी क्षमता को देखकर ही अनार्य भूमि में विचरण करने गये थे । सामान्य रूप से साधुओं को अकारण ऐसे अनार्य क्षेत्रों में जाने का आगम निषेध किया गया है । क्यों कि सामान्य तया प्रत्येक श्रमण इतना धैर्य रखने में समर्थ नहीं हो सकता; जिससे वह अपनी स यम समाधि में नहीं रह पाए, ऐसी स भावना रहती है ।

प्रश्न–११ : भगवान के कानों में कीले ठोके गये आदि क्या इस अध्ययन में है ?

उत्तर– कानों मे कीले, पाँवों मे खीर पकाना, च डकोशिक सर्प, तेरह अभिग्रह, स गमदेव आदि विविध अनेक उपसर्ग कथा ग्र थो में है । उन्हीं के आधार से प्रचलित है । ये सब वर्णन इस अध्ययन में नहीं है और अन्य आगमों में भी नहीं है । उन घटनाओं का विस्तार तीर्थंकर चारित्र से जानना चाहिये । वे घटनाएँ आगम के किसी भी तत्त्व से बाधक नहीं हों और अनावश्यक अतिशयोक्ति वाली न हो तो उन्हें स्वीकार करने में या मानने में कोई आपत्ति नहीं समझनी चाहिये ।

प्रश्न–१२ : भगवान साधना काल में वस्त्र रहित होने से क्या सदा गाँव या नगर आदि के बाहर दूर ही ठहरते थे ?

उत्तर– भगवान महावीर स्वामी छद्मस्थ काल में या केवल ज्ञान प्राप्ति के बाद तथा भगवान के अन्य श्रमण नगर या ग्राम के बाहर ही रहे, ऐसा एका त नियम नहीं समझना चाहिये ।

भगवान साधना काल में भी ग्राम नगर के मध्य एव बाहर दोनों ही स्थानों में ठहरते थे और केवलज्ञान के बाद भी साधुओं की स ख्या अधिक होने से बाहर बगीचों में ठहरते थे । फिर भी अ तिम चातुर्मास नगर के भीतर किया था, कई बार बस्ती के निकट ठहरते थे और कभी उपनगरों में भी ठहरते थे । एक बार भगवान सकडाल श्रमणोपासक की कु भकारशाला में ठहरे थे ।

इस अध्ययन के दूसरे उद्देशे की गाथा दूसरी और तीसरी के अनुसार साधना काल में भगवान– खुले घर, सभाभवन, प्याऊ, दुकानों, बढई–लुहार की कर्मशालाओं, घास पराल के पु ज युक्त मकानों, झोंपडियों, मुसाफिरखानों अर्थात् धर्मशालाओं, बगीचों के मकानों में कई बार ठहरे थे । कभी ग्रामों में नगरों में भी भगवान ठहरे थे । कभी स्मशान, खण्डहर और वृक्ष के नीचे भी ठहरे थे । इस प्रकार भगवान की शय्याएँ अर्थात् निवास करने के स्थान बताये गये हक्त भगवान के चातुर्मास का कुछ वर्णन भगवती सूत्र में है तदनुसार भी नगरी के अ दर भगवान ने साधना काल में चातुर्मास किये थे ।

अत: जो लोग यह कहते हक्त कि "पहले जैन श्रमण ज गलों में और नगरों के बाहर ठहरते थे, फिर धीरे धीरे ढिलाई आ जाने से गाँवों, नगरों के अ दर ठहरने लग गये हक्त " यह आगम के अपूर्ण ज्ञान से अपने को प डित मानने की भ्रमणा का परिणाम है, आगम ऐसे एका त प्ररूपणा वाले नहीं हक्त ।

प्रश्न–१३ : प्रत्येक उद्देशक की अ तिम गाथा का शुद्ध पाठ क्या है ?

उत्तर– अधिक प्रतों में यह गाथा अशुद्ध है अर्थात् उसका तीसरा चौथा चरण इस प्रकार शुद्ध समझना– **अपडिण्णेण वीरेण, कासवेण महेसिणा । अर्थ :–** रागद्वेषमय प्रतिज्ञा से रहित महर्षि काश्यपगोत्रीय महावीर ने उक्त स यम विधि का पालन किया था, आचरण किया था ।

॥ प्रथम श्रुतस्क ध स पूर्ण॥

द्वितीय श्रुतस्क ध : परिचय

प्रश्न–१ : दूसरे श्रुतस्क ध के १६ अध्ययननों के नाम और विषय क्या है ?

उत्तर– अध्ययनों के नाम और विषय इस प्रकार है–

क्रम	नाम	विषय
१	पि डेषणा	आहार पानी की गवेषणा आदि ।
२	शय्यैषणा	मकान, घास, पाट आदि की गवेषणा एव ग्रहण करने की विधि ।
३	ईर्या	विहार, चातुर्मास, गमनागमन ।
४	भाषा	भाषा स ब धी विधि निषेध ।
५	वस्त्रैषणा	वस्त्रग्रहण, गवेषणा एव उपयोग ।
६	पात्रैषणा	पात्र ग्रहण, गवेषणा एव उपयोग ।
७	अवग्रह	मकान, स्थान आदि की आज्ञा ग्रहण विधि
८	स्थान	खडे रहने, एव कायोत्सर्ग करने स ब धी ।
९	निषद्या	बैठकर ध्यान, स्वाध्याय करने स ब धी ।
१०	उच्चारपासवण	पाँचवी समिति स ब धी विधि निषेध ।
११	शब्द	श्रवण वृत्ति निषेध, श्रोत्र निग्रह ।
१२	रूप	चक्षु इन्द्रिय निग्रह, रूप दर्शन निषेध ।
१३	परिकिरिया	गृहस्थ द्वारा शरीर परिचर्या निषेध ।
१४	अन्योन्य क्रिया	साधु-साधु परस्पर परिचर्या निषेध ।
१५	भावना	भगवान महावीर का जीवन परिचय, दीक्षा, केवलज्ञान, पाँच महाव्रतों की पचीस भावनाएँ ।
१६	विमुक्ति	मोक्षोपाय और प्रेरक १२ गाथाएँ ।

प्रश्न–२ : इस श्रुतस्क ध के अन्य भी नाम हक्त ? उनको कैसे समझना ?

उत्तर– न दी सूत्र और समवाया ग सूत्र में जो सूत्र परिचय मिलता है । उसके अनुसार तो इस सूत्र का एक ही नाम आचार+अ ग=आचारा ग

सूत्र होता है । इसमें दो श्रुतस्क ध हक्त, इन दोनों में अध्ययन और उद्देशक हक्त; अन्य कोई नाम विभाग की चर्चा नहीं है ।अत: मौलिक रूप से श्रुतस्क ध, अध्ययन, उद्देशक इतने ही विभाग रहे हक्त, वह ध्रुव सत्य है ।

काला तर से इस सूत्र के निशीथ–प्रायश्चित्त विभाग अध्ययन–उद्देशों को अलग स पादित किया गया है । उस परिवर्तन के कारण इसके नामों के अनेक विकल्प बने हक्त, जो समवाया ग सूत्र, निशीथ सूत्र, व्यवहार सूत्र, एव व्याख्याग्र थों में उपलब्ध है । यथा– प्रथम श्रुतस्क ध के 'नव ब भचेर' और इसके अतिरिक्त 'आचार'(आयारो), आचाराग्र, आचारचूला, चूलिका, प च चूलिकाख्य, आचार प्रकल्प ये नाम हक्त । ये सभी परिवर्तन नूतन स पादन लेखन युग के उत्पन्न नाम है, ऐसा समझना चाहिये ।

वास्तव में द्वितीय श्रुतस्क ध के प्रायश्चित्त विधान वाले अध्ययनों सहित १९ अध्ययन रहे थे जो प्रथम श्रुतस्क ध के ९ अध्ययन सहित कुल २८ अध्ययन=२८ आचार प्रकल्प थे । प्रकल्प शब्द का विभाग या अध्ययन अर्थ में प्रयोग हुआ है । २८ आचार प्रकल्प का होना आवश्यक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र एव समवाया ग सूत्र में निर्दिष्ट है । छेद सूत्रों में स पूर्ण आचारा ग सूत्र को आचार प्रकल्प अध्ययन कहा गया है । आचारा ग सूत्र के मौलिक २८ अध्ययन इस प्रकार थे–

प्रथम श्रुतस्क ध के	९	अध्ययन
द्वितीय श्रुतस्क ध के	१४	अध्ययन क्रमश: है ।
पृथक् किये निशीथ के–	५	अध्ययन– गुरु मासिक, लघु-
कुल–	२८	मासिक, गुरुचौमासिक, लघु-चौमासिक, आरोपणा ।

प्रायश्चित्त के ५ अध्ययन अलग करने पर २३ अध्ययन अवशेष रहते हक्त । उनके साथ 'भावना' और 'विमुक्ति' दो अध्ययन स्थाना ग सूत्र कथित "ब धदशा नामक सूत्र" के सातवें और आठवें अध्ययन– 'भावना और विमुक्ति' को यहाँ रखने से पच्चीस हो जाते हक्त । फिर कालान्तर से ग्र थों में इन दोनों अध्ययनों को दो चूलिका कह कर महाविदेह क्षेत्र से लाने का और यहाँ जोड देने का कथन कर दिया गया । बाद में पाँच चूलिका हो गई है ।

इस प्रकार इस श्रुतस्क ध के नाम और विभागों में परिवर्तन होता रहा है और प्रायश्चित्त विभाग रूप अध्ययनों को अलग करना जिसका मूल कारण बना है ।

प्रथम अध्ययन : पिण्डेषणा

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में कितने उद्देशे हक्त, उनका विषय क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में ग्यारह उद्देशे हक्त । सभी में आहार-पानी की गवेषणा के विषय में सामान्य-विशेष, विविध विधि-निषेध किये गये हक्त । इस अध्ययन का गहराई से अध्ययन कर लेने पर गोचरी जाने, आहार लाने एव आहार का उपयोग करने स ब धी तथा व्यवहार स ब धी सर्वांगीण ज्ञान हो सकता है ।

इस श्रुत स्क ध का गद्यमय मूल पाठ अत्य त सरल और विस्तृत शैली में है जब कि प्रथम श्रुतस्क ध का मूल पाठ अत्य त गहन अर्थ वाला और स क्षिप्त सूत्रमय है । दोनों की अपनी विशेषता है– एक स क्षिप्त उपदेश वाक्यों से परिपूर्ण है, दूसरा आचार स ब धी स्पष्टीकरण का खजाना है ।

प्रश्न–२ : गोचरी में सचित्त या सचित्त स युक्त खाद्य किस प्रकार आ सकते हक्त और उनका विवेक क्या हो सकता है ?

उत्तर– किसी भी पदार्थ को जैसे कि– शक्कर मिष्टान्न आदि को स देह रहित होकर विश्वास से लेने पर उसमें कीडियाँ हो सकती हक्त । अन्य पदार्थों में कु थुए, अनाज के जीव, लट आदि भी हो सकते हक्त, ये त्रस जीव बिना ध्यान से पात्र में खाद्य पदार्थ के साथ आ सकते हक्त ।

अनेक दिन पुराने खाद्य पदार्थों में लीलन फूलन भी आ सकती है । यथा– आचार, मुरब्बे या मिठाई आदि में । ग्रहण करते समय स देह नहीं होने से, भूल हो जाने से, ऐसे पदार्थ ग्रहण हो जाते हक्त। लड्डु, बर्फी आदि के भीतर भी फूलण हो सकती है जो बाहर से स्वाभाविक सहज रूप से नहीं दिखती है ।

शक्कर आदि अचित्त सूखे पदार्थों के साथ जीरा आदि सचित्त बीज भी आ सकते हक्त । खसखस के दाने, राई(सरसों) भी किसी पदार्थ

में मिल जाने से आ सकते हक्त । कई चीजों को अचित्त, शस्त्र परिणत समझकर ग्रहण करने में आ जाते है, फिर सचित्त अशस्त्र परिणत होने का मालुम पडता है ।

बिना उबाली हरी वनस्पति धनिया पत्ती वगैरह किसी खाद्य पदार्थ के साथ आ सकती है । यथा– खमण आदि पर डाली गई धनिया पत्ती वगैरह । इसी प्रकार ककडी, दूधी आदि बिना उबाली किसी प्रकार के राइते में या अलग से लेने में आ सकती है ।

कोई भी गीले खाद्यपदार्थ का रसस्वाद बिगड गया हो, खट्टा या मीठा विकृत स्वाद बन गया हो तो उसमें रसज जीव उत्पन्न हो जाते हक्त । मिठाई या अन्य खाद्य रोटी आदि में भी स्वाद या ग ध बिगड जाने पर या दही दूध भी खराब हो जाने पर रसज जीव हो जाते हक्त । ऐसे पदार्थ भी भूल से लेने में आ जाते हक्त । इस प्रकार त्रस जीव, बीज, फूलन, हरित आदि से युक्त आहार सचित्त या सचित्त स युक्त ग्रहण करने में आ सकते हक्त ।

विवेक :– त्रस जीव का और सूखे पदार्थ में बीज का निकलना, शुद्ध हो जाना स भव हो तो निकाल कर अचित्त खाद्यपदार्थ का उपयोग किया सकता है । फूलन और रसज जीव वाले पदार्थ तो अखाद्य अपथ्य अर्थात् विकृत होने से परठने योग्य होते हक्त । हरित वनस्पति के टुकडे या पत्ते कभी निकाले जा सकते हक्त तब अलग करके शेष आहार का उपयोग किया जा सकता है । अचित्त पानी में कभी त्रस जीव हो सकते हक्त, उन्हें छान कर शोधन करके पानी अचित्त हो तो उपयोग किया जा सकता है । उन छाने हुए त्रस जीवों को विवेक से जलीय स्थानों मे परठ दिया जा सकता है ।

कभी सचित्त जल भूल से आ जाय तो उसे दाता को वापिस किया जा सकता है । वैसे ही भूल से किसी वस्तु के साथ सचित्त पदार्थ पात्र में गिर जाय अथवा कोई अविवेक से डाल दे तो उसी समय वापिस किया जा सकता है । शक्कर की जगह पीसा हुआ सचित्त नमक आ जाय तो वापिस दिया जा सकता है । ये पदार्थ दाता वापस लेना नहीं चाहे तो परठने की विधि से परठ दिया जाता है अर्थात् पानी को जलीय स्थान के निकट या पात्र सहित परठ दिया जाता है । अन्य सचित्त पदार्थ और लीलन फूलन भी एका त में,

पोलार में, का टो की वाड आदि में परठ दिया जा सकता हक्त । नि:श क अचित्त शुद्ध आहार हो तो ही खाना कल्पता है ।

प्रश्न–३ : अग्नि पर चढ जाने के बाद भी कोई पदार्थ क्यों नहीं कल्पता है ?

उत्तर– सि ग की कच्ची फलियाँ, ताजे कच्चे अनाज के सिट्टे और मकाई के भुट्टे वगैरह अग्नि पर रख कर सेके जाते हक्त । ये थोडे से सेके हो, बारम्बार घुमाकर नहीं सेके हो तो अग्राह्य होते हक्त । अधिक समय अग्नि पर रखकर बारम्बार घुमाकर सेके हों तो पूर्ण अचित्त बने ये पदार्थ कभी आवश्यक होने पर ग्रहण किये जा सकते हक्त । उज्झित-धर्मा हो तो ग्रहण नहीं करना अर्थात् फेंकने योग्य पदार्थ गृहस्थ ने स्वय निकाल दिये हों तो ग्राह्य होते हक्त । इस प्रकार प्रत्यक्ष अग्नि पर सीधे रखे पदार्थ का सचित्त या मिश्र रह सकना इस अध्ययन के प्रथम उद्देशक में सूचित किया गया है । जो पदार्थ अग्नि पर बर्तन में चढाकर और शीघ्र हटा लिये हो वे भी अग्राह्य, मिश्र सचित्त रह सकते हक्त । केवल धूँआ देकर पकाये गये पदार्थ भी अचित्त नहीं माने जा सकते । क्यों कि जब अग्नि पर सीधे रखे पदार्थ भी पूरे तप्त नहीं हो जाने से मिश्र रहते हक्त तो मात्र धूँए से पकने वाले पदार्थ अचित्त मान लेना योग्य नहीं होता है । वे सचित्त रह सकते हक्त और उनमें बीज भी सचित्त ही रहते हक्त ।

प्रश्न–४ : अन्य भिक्षाचरों के साथ गोचरी आदि जाने का निषेध क्यों है ?

उत्तर– उनका आहार ग्रहण का तरीका भिन्न होता है । आचार-विचार वेष भिन्न होता है । जब आहार का अति स पर्क होता है तो अपने अपने धर्मानुयायियों को अपने श्रमण की श्रद्धा में स देह पैदा होता है । सामान्य जन यदि उसका अनुसरण कर अन्य मत के श्रमणों से परिचय बढावें तो वे शुद्ध श्रद्धा से चलित हो सकते हक्त । गोचरी में दाता की मानसिक स्थिति में कई उतार चढाव हो सकते हक्त । पहले किसे दूँ, किसको किस तरह दूँ ? साथ में क्यों आये ? इत्यादि कितने ही स देह हो सकते हक्त । साथ-साथ फिरने से किसी की श्रद्धा में परिवर्तित हो जाय तो उस स घ के लोगों में ऊहापोह, द्वेष आदि हो सकते हक्त । किसी को कुछ अशाता हो जाय तो एक दूसरे पर आक्षेप प्रत्याक्षेप की स्थितियाँ पैदा होती है । अत: अनेक आशयों को लेकर ज्ञानियों का यह विधान है कि अन्य भिक्षाचरों के साथ गोचरी नहीं जाना चाहिये ।

यहाँ तक कि जैन साधु भी हो, जिसकी गवेषणा विधि भिन्न हो, कोई किसी पदार्थ को सचित्त अकल्पनीय समझता हो, तो दूसरा उसे ही अचित्त ग्राह्य समझता हो, तब दाता को बडी असम जस पैदा होती है ।

प्रश्न–५ : समुद्दिस्स और पगणिय-पगणिय शब्द प्रयोग से भावार्थ में क्या फर्क पडता है ?

उत्तर– अन्य तीर्थिक श्रमण या भिखारी वगैरह तथा उनके साथ जैन श्रमण भिक्षु का नाम निर्देश रखकर **गिनती करके** कोई खाद्य पदार्थ या अन्य पदार्थ तैयार किया गया हो तो उसमें जैन श्रमण की स्पष्ट गिनती हो जाने से वह पगणिय-पगणिय रूप पदार्थ अग्राह्य होता है । **समुद्दिस्स** शब्द में नाम निर्देश या व्यक्ति स केत न होकर ओघ रूप से समस्त याचकों के लिये बनाया गया आहार आदि होता है । जैन साधु की स्पष्ट गिनती नहीं होने से वह आहार आदि अन्य के उपयोग में आ जाने के बाद, ले लेने के बाद जैन साधु को ग्राह्य होता है, अर्थात् जैन साधु को लेना कल्पता है । यह पगणिय-पगणिय और समुद्दिस्स शब्द प्रयोग के पीछे अ तर है । ऐसा पाठ इस आचारा ग सूत्र में आहार, शय्या, पात्र आदि अनेक अध्ययन में आया है ।

प्रश्न–६ : दानपिंड और दान कुल कौन से हक्त और वहाँ जाने का निषेध क्यों है ?

उत्तर– जो आहार केवल याचकों को दिया जाता है, घरवाले या अन्य गृहस्थ वहाँ बैठकर नहीं खाते हक्त वह पि ड अग्राह्य होता है । याचकों के लिये ही मात्र होने से जैन श्रमण को लेने में अदीन वृत्ति नहीं होती है, धर्म की लघुता होती है । सीमित दानपिंड होने पर अन्य को अ तराय होती है ।

कि तु जहाँ प्रचुर आहार दिया जाता है, खिलाया जाता है और दाता खुद भी वहीं खाते हक्त, तो अपनी विधि विवेक के साथ जैन साधु आवश्यक होने पर ग्रहण कर सकता है । वे दानपि ड और दानकुल इस प्रकार के होते हक्त– (१) जहाँ पर विशिष्ट उच्च भोज्य दानपदार्थ, अग्र(श्रेष्ठ) पदार्थ, लड्डु वगैरह बाँटे जा रहे हो (२) मर्यादित बना समस्त आहार हमेशा याचकों को दिया जाता है वह 'नितिय पिंड' (पूर्ण) कहा गया है (३) आहार जो बना है उसमें से आधा भाग अलग कर के जिन घरों में दान कर दिया जाता है । उसी

तरह (४) चौथाई और (५) षष्टा श, अष्टमा श, तृतीया श आहार दान में कर दिया जाता है । ये विभाग रूप दानपिंड लेने में दीनता और अ तराय दोष की मुख्यता के कारण ये दानपिंड लेने के लिये उन उन दानपिंड बाँटने वालों के घर गोचरी जाना नहीं कल्पता है । इन्हीं का निशीथ सूत्र के दूसरे उद्देशे में लघुमासिक प्रायश्चित्त विधान है ।

ये सभी मर्यादित आहार के दान कुल के कथन है । कि तु जहाँ दानपिंड की कोई सीमा नहीं है, वहाँ अ तराय दोष नहीं होता है और वहाँ जैन श्रमणों को यदि ससम्मान देने की भावना हो तो अदीनता भी नहीं होती है । ऐसी भोजनशालाओं आदि से यथा प्रस ग जैन श्रमण गोचरी कर ले तो वह इन सूत्रों में निषिद्ध नहीं है । ज्ञाता सूत्र आदि में साध्वियों के दानशाला में गोचरी जाने का वर्णन है ।

प्रश्न–७ : बडे जीमणवार के प्रस ग में गोचरी कब जा सकते हक्त ?

उत्तर– बहुत बडे जीमणवार में उस जीमणवार के विशिष्ट स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों के आसक्ति भाव से श्रमण को गोचरी जाना नहीं कल्पता है । इस अपेक्षा आसक्ति के कारण उस दिशा में भी जाना मना है तथा जिस जीमणवार–बडेभोज(स खडी) में वहाँ जाकर ठहरना पडता हो, रहना पडता हो तो वहाँ भी नहीं जाना । आहार की दुर्लभता और जरूरी परिस्थिति से ऐसी मोटी स खडी में जाना पडे तो दो कोष से अधिक दूर अर्थात् सात किलोमीटर से आगे हो तो वहाँ गोचरी नहीं जाना कि तु सात कि.मी. के भीतर हो तो जनाकुलता का समय जब न हो तो जा सकते है । यह अनेक गा वों की, अनेक दिनों की, चलने वाली स खडी की अपेक्षा है । सामान्यतया किसी भी छोटे बडे जीमणवार में आसक्ति परिणामों से जाना निषिद्ध है ।

किसी के घर व्यक्तिगत कोई भी महोत्सव हो, अठाई अर्थात् अठवाडिये के तप का उजमणा(समाप्ति उत्सव) हो, अन्य भी किसी भी प्रकार के ऋतु परिवर्तन आदि का महोत्सव हो उसमें अन्य श्रमण, ब्राह्मण आदि को भी भोजन दिया जाता हो तो वहाँ अनासक्ति से और आवश्यकता से साधु गोचरी जा सकता है जब कि लोगों की भीड नहीं हुई हो या समाप्त हो चुकी हो ।

ग्राम, नगर आदि का कोई महोत्सव हो, मेला या यक्ष महोत्सव आदि हो, वहाँ पर जो भी भोजनशाला आदि होती है, उसमें भी

उपरोक्त प्रकार से भिक्षु यथाप्रस ग विवेक के साथ गोचरी जा सकता है । यह निष्कर्ष इस अध्ययन के दूसरे तीसरे चौथे उद्देशक से प्राप्त होता है । चौथे उद्देशक अनुसार वर-वधू के घर शादी के पहेले या शादी के बाद के भोजन आदि प्रस गों में भी उपरोक्त विधि से जाया जा सकता है । इन तीनों उद्देशकों में निषेध और विधान दोनों है । अत: अपेक्षा बताकर यहाँ उभयमुखी स्पष्टीकरण किया है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन के अनुसार जहाँ साधु को गृहस्थों की प क्ति में खडा होना पडे वहाँ जाने का निषेध किया है । तात्पर्य यह है (१) दीनता न हो, पूर्ण सम्मान रहे (२) किसी को अ तराय न हो (३) धर्म की लघुता न हो (४) आसक्ति के भाव न हो (५) प क्ति(प गत) में खडा रहना न पडे और (६) भीड जनाकुलता न हो, ऐसे समय और ऐसे स्थान में विवेक के साथ साधु-साध्वी आवश्यक होने पर गोचरी जा सकते हक्त ।

यदि भिक्षु ऐसे स्थानों में गोचरी न जावे तो श्रेष्ठ ही है । कोई भी त्याग बढाना, अभिग्रह बढाना भी श्रेष्ठ है । कि तु आगम निरपेक्ष स्वमति एका तिक प्ररूपणा नहीं करने का विवेक रखना चाहिये और आगम आशय को तथा स यम नियम के मुख्य हेतु को लक्ष्य में रखना चाहिये । कई साधु साध्वी आगम निरपेक्ष व्यक्तिगत झूठे आग्रह में आगम के अनेका तिक सपरिस्थितिक विवेक को नहीं समझकर, निर्दोष आहार को छोडकर अनेक प्रकार के दोष-आधाकर्म, अभिहड आदि से युक्त आहार ग्रहण करना स्वीकार कर लेते हक्त । वह आगम के अनेका तिक ज्ञान विवेक के अभाव के कारण तथा स्वमान के कारण होता है, ऐसे अविवेक से बचना चाहिये तथा दीनता या आसक्ति वृत्ति से एव अविवेक से ऐसे स्थानों में जाना भी नहीं चाहिये । यदि अन्यत्र गोचरी सुलभता से हो सकती हो तो ऐसे स्थानों में नहीं जाना ही उपयुक्त होता है ।

प्रश्न-८ : ऊँच कुल आदि की गोचरी का साधु के लिये क्या विधान है ?

उत्तर- समाज के व्यवहार में जिन कुलों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार हो अथवा जो मा साहार या अनार्यता के कारण घृणित निंदित कुल हो, उनमें जैन श्रमणों को समाज व्यवहार की प्रमुखता से गोचरी जाना आगम में निषिद्ध है अर्थात् श्रमणों के लिये मुख्य गोचरी के

समाज है वैश्यवर्ग, ब्राह्मण वर्ग, क्षत्रिय वर्ग । उनका जिन कुलों के साथ परहेज का व्यवहार हो, वहाँ जाने से इन लोगों को अपने घर में साधु का आना उपयुक्त नहीं लगता । इस हेतु से शास्त्र में बिना किसी जाति का नाम खोले घृणित जुगुप्सित और निंदित कुलों में साधु को भिक्षार्थ जाने का निषेध स्पष्ट रूप से किया गया है और अनिंदित अजुगुप्सित कुलों के नाम कुछ उदाहरणार्थ दिये हक्त और कहा है कि इस प्रकार के जो भी अन्य कुल अजुगुप्सित हो वहाँ भिक्षु गोचरी जा सकता है । ऐसे प्रस ग में ऊँच नीच शब्द से कथन नहीं किया है कि तु जुगुप्सित अजुगुप्सित शब्द से विधान किया है, जो सामाजिकता से स ब ध रखता है ।

जहाँ गौतम स्वामी आदि के गोचरी जाने स ब धी वर्णन आता है वहाँ ऊँच नीच मध्यम कुल शब्द का प्रयोग है वहाँ सर्वत्र उन तीनों प्रकार के कुलो में गोचरी जाने का कथन है । वे तीनों शब्द समृद्धि की अपेक्षा धनवान, मध्यम और सामान्य घरों के लिये प्रयुक्त है । उसका आशय इतना ही है कि कल्पनीय सभी घरों में निष्पक्ष भाव से गोचरी जाना चाहिये । अमीर गरीब या मध्यम का अलगाव नहीं करना चाहिये या केवल धनाढय लोगों के यहाँ ही गोचरी जाना, ऐसा भी नहीं करना चाहिये । अत: सूत्रकार की दोनों जगह की अपेक्षाओं को सही तरह से समझकर अत्य त विवेक के साथ श्रद्धा, प्ररूपणा और व्यवहार करना चाहिये । दोनों जगह के सही आशय को समझे बिना या अपने मनमाने स कल्प या आग्रह से कोई भी एका त प्ररूपण में नहीं पडना चाहिये ।

तात्पर्य यह हुआ कि जुगुप्सित(अस्पृश्य) और लोकनिंदित कुलों में भिक्षार्थ नहीं जाना एव अमीर, गरीब के भेद से गोचरी नहीं करना चाहिये । तीनों प्रकार के घरों में सामुदायिक गोचरी करना चाहिये ।

प्रश्न-९ : गोचरी जाने योग्य उदाहरण रूप में कौन से कुल कहे हक्त ?

उत्तर- इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक में गोचरी जाने योग्य उदाहरण रूप में निम्न कुलों के नाम हक्त, यथा- (१) उग्रकुल-जागिरदार आदि (२) भोगकुल-पूज्य स्थानीय पुरोहित कुल (३) राजन्यकुल-राजमित्र स्थानीय या राज परिवार के कुल (४) क्षत्रिय कुल, सैनिक-राठोड आदि (५) ईक्ष्वाकुकुल-ऋषभदेव का कुल (६) हरिव शकुल-२२ वें

भगवान का कुल (७) गोपालों का कुल (८) वैश्य-वणिककुल (९) नापित कुल (१०) बढई (११) कोटवाल (१२) जुलाहा इत्यादि । अन्य भी ऐसे लोक व्यवहार में जो योग्य कुल हों, वे सभी भिक्षा योग्य कुल समझना चाहिये ।

प्रश्न-१० : गोचरी जाते समय उपकरण साथ में कैसे ले जाना ? सूक्ष्म वर्षा हो रही हो तो क्या करना ?

उत्तर- जिस तरह भगवती सूत्र आदि में वर्णित स न्यासी बाहर जाते समय अपनी वेशभूषा के सभी उपकरण साथ लेकर जाते हक्त । उसी तरह जैन मुनि भी अपनी वेशभूषा से जावे अर्थात् योग्य सभी उपकरण लेकर जावे कि तु पीछे कुछ भी नहीं छोडे, यह मतलब नहीं समझना । वेशभूषा में-चादर, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका, रजोहरण, आवश्यक पात्र सहित झोली इत्यादि । गच्छगत श्रमण के साथ अनेक श्रमण वृद्ध, स्थविर, आचार्य, उपाध्याय वगैरह उपाश्रय में रहते ही हक्त तो गोचरी जाने वाले के भी अवशेष उपकरण उपाश्रय में रह सकते हक्त ।

गोचरी जाने के समय थोडी या अधिक(तीव्र या देश)वर्षा चालू हो जाय, वैसे ही थोडी या अधिक धूँअर आ रही हो, पड रही हो; महावात-आँधी तुफान चल रहा हो तथा अधिक मात्रा में त्रस जीवों के झु ड के झु ड आकाश से नीचे पड रहे हो तो ऐसे समय में योग्य(आवश्यक) सभी उपकरण लेकर वेशभूषा सहित भी बाहर भिक्षा आदि के लिये नहीं जाना चाहिये कि तु विवेक पूर्वक उपाश्रय में ही रहना चाहिये । ऐसा इस अध्ययन में आये पाठ का आशय समझना चाहिये क्यों कि, दशवैकालिक सूत्र अध्ययन-५, उद्देशक-१, गाथा-८ में उस प्रकार का स्पष्ट कथन है ।

प्रश्न-११ : गृहस्थ के घर का दरवाजा ब द हो तो गोचरी किस तरह जाना चाहिये ?

उत्तर- अपरिचित और अस स्कारित घरों में दरवाजा, खिडकी, जाली, पडदा या का टो की वाड आदि कोई भी लगा हो तो उसे हटाना नहीं, खोलना नहीं । आवश्यक हो तो आज्ञा लेकर या आज्ञा मिलने पर खोल सकते हक्त । परिचित और स स्कारित घरों में उनकी सूचना पहले से हो अर्थात् खोलकर आने की आज्ञा हो तो खोलकर या पर्दा हटाकर जा सकते हक्त । फिर भी व्यवहार से घर में अपने प्रवेश की कुछ सूचना

हो जाय, ऐसे उच्चारण के साथ प्रवेश करना चाहिये । चोर की तरह जाने का कथन आगम में नहीं है और व्यवहारोचित भी नहीं है ।

यदि दरवाजा अन्दर से ब द हो तो आवाज देकर खुलवाना, गोचरी की सही विधि नहीं है । श्रावकों को इस बात का सही ज्ञान देकर स स्कारित करना चाहिये कि- गोचरी के समय सुपात्र दान की भावना के लिये अ दर से ब द रहने वाले दरवाजे ब द करके नहीं रहना चाहिये । अपरिचित घरों में दरवाजा सहज खुला हो तो जाना और खुल सकने वाला दरवाजा हो तो उसकी आज्ञा लेकर खोलकर जाना, अन्यथा नहीं जाना चाहिये । श्रावकों को दर्शन-प्रवचन के समय स स्कार देना चाहिये कि गोचरी के अमुक समय तक दरवाजा खुला रखने का विवेक रखना चाहिये ।

इतना स भव न होने पर आवाज देकर दरवाजा खुलवाकर जाना साधु-श्रावक दोनों के व्रत की अविधि होती है । उसे क्षेत्र काल की परिस्थिति का दोष समझना कि तु निर्दोष विधि नहीं समझना चाहिये ।

प्रश्न-१२ : जैन साधु किसी के साथ आहार करने का वात्सल्य भाव क्यों नहीं रखते, घृणा भाव क्यों रखते ?

उत्तर- जैन श्रमण किसी से घृणा या द्वेषभाव नहीं रखते हक्त । उनकी अपनी आहार की विधि अन्य श्रमणों से भिन्न होती है तथा जैन श्रमणों को बाह्य व्यवहार में अधिक समय न लगाकर देह पूर्ति के लिये अत्यल्प समय में आहार लाने और खाने का कार्य पूर्ण करना होता है । अत: जैन श्रमण भी आपस में अपने-अपने गच्छ के सिवाय आहार-पानी अलग ही रखते हक्त । आगे बढकर जैन श्रमण एक गच्छ या गुरु की निश्रा में होते हुए भी अपने श्रमणों के साथ आहार पानी का या सहयोग लेने-करने का त्याग भी कर सकते हक्त, यह एक जैन श्रमणों का त्याग प्रधान विशिष्ट आचरण है । इनके स यम जीवन में आवश्यक व्यवहार ही होता है कि तु व्यवहार की प्रधानता आहार के नाम से नहीं होती है । आहार तो वे मात्र अपनी देहपूर्ति के लिये अत्य त आवश्यक होने पर लाते हक्त उसे बाह्य व्यवहार या मान-सम्मान, आतिथ्य सत्कार का साधन नहीं बनाते । अति आवश्यक होने पर जैन श्रमण अन्य किसी भी श्रमण को आहार दे भी सकते हक्त और उनके साथ बैठकर खा भी सकते हक्त । ऐसे प्रस ग का उल्लेख इस

अध्ययन के पाँचवें उद्देशक में है । अतः घृणा आदि नहीं समझकर दीर्घ दृष्टि से सुव्यवस्था के लिये निर्दिष्ट आचार समझना चाहिये ।

प्रश्न–१३ : पैकि ग किये हुए बर्तनों को खुलवाकर खाद्यपदार्थ लेने में छः काय की विराधना कैसे स भव होती है ?

उत्तर– क्षेत्र काल के परिवर्तन से पैकि ग अनेक प्रकार के होते है । प्राचीन काल में घी, गुड आदि के घडे हरे पान(पत्ते) और गीली मिट्टी से पैकि ग करके रखे जाते थे । कई पक्के टीन वगैरह की पैकि ग अग्नि प्रयोग से खोली जाती थी । कई ढक्कन खोलने के समय उछल-कर दूर पड जाते हत्त, इत्यादि विभिन्न रिवाजों, तरीकों के स कलन से सूत्र में पैकब ध बर्तनों को खुलवाकर वस्तु लेने में पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति और त्रस जीवों के विराधना की स भावना बताई गई है । मिट्टी को गीली करके खोलना पड सकता है या पुनः लगाने में उसे गीला करना पडता है अतः पश्चात् कर्म दोष भी लगता है। वर्तमान के कोई पैकि ग में कि चित् भी विराधना या खतरा(शस्त्र से चोट लग जाना) न हो तो विवेक पूर्वक खाद्य पदार्थ लिये जा सकते हत्त ।

प्रश्न–१४ : वायुकाय की विराधना किस-किस तरह होती है ?

उत्तर– आगमोक्त विराधना दो प्रकार से होती है अर्थात् आगम में विराधना(समार भ) दो अपेक्षाओं से कही जाती है– जीवों की हिंसा होने से और जीवों की उत्पत्ति होने से ।

जिस प्रकार किसी ने दीपक को बुझाया तो जीव मरे और किसी ने दीपक जला दिया वह एक स्थान पर स्थिर पडा है, ट्यूबलाइट चालु कर दी, यहाँ पर अग्नि के जीव आकर उत्पन्न हुए । दोनों ही व्यक्ति अग्निकाय की विराधना करने वाले गिने जाते हत्त । जीवों की उत्पत्ति भी मृत्यु की निमित्तक है । उन जीवों के जन्म से ही वहाँ मरण की परम्परा चालू हो जाती है । जब तक वह दीपक या ट्यूबलाइट जलते रहेंगे, जीव वहाँ जन्मते रहेंगे, मरते रहेंगे । इस निमित्त और परम्परा के प्रवाह के कारण अग्नि जलाने वाला, दीपक ट्यूब लाइट जलाने वाला भी अग्निकाय की विराधना करने वाला गिना जाता है । वहाँ मच्छर, पत गा आदि त्रस जीव उत्पन्न होकर मरते हत्त, तो वह अग्नि जलाने वाला उन त्रस जीवों की भी विराधना करने वाला गिना जाता है । क्यों कि यदि उसने ट्यूबलाइट नहीं जलाई होती तो सेकडों

हजारों मच्छर वहाँ नहीं मरते, जलाई है तभी सेकडों हजारों त्रस जीव जन्मे और मरे ।

किसी ने एक बर्तन में या पत्थर के खड्डे में पेशाब कर दिया पूर्ण ब द वाडे में टट्टी पेशाब कर दिया । अन्तर्मुहूर्त बाद वहाँ स मूर्च्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति हुई, जन्म मरण चालू हुआ, तो वह इस अविवेक को करने वाला स मूर्च्छिम मनुष्यों की विराधना करने वाला गिना जायेगा, पर परा से विराधना तथा जन्म मरण का निमित्त होने से । जब कि व्यक्ति पुनः वहाँ आकर कभी उन जीवों को स्पर्श भी नहीं करता है, किसी प्रकार से उन जीवों को कष्ट भी नहीं पहुँचाता है । इस प्रकार आगम में विराधना करने वाला दो अपेक्षाओं से गिना गया है ।

ठीक इसी तरह वायुकाय के जीवों की विराधना भी दो तरह से गिनी जाती है– (१) हम कोई भी काया की या वचन की अथवा कोई भी योग स्प दन की प्रवृत्ति करते हत्त, उसमें वायुकाय की विराधना होती है । वायुकाय के जीव सर्वत्र पोलार स्थान में भरे ही होते हत्त । वे हमारी हर स्प दन प्रवृत्ति से मरते ही रहते हत्त । क्यों कि बादर एकेन्द्रिय जीव ऐसे ही शरीर नाम कर्म वाले होते हत्त कि स्पर्श मात्र से उन्हें अत्य त वेदना होती है और अनेकों हजारों या अस ख्य जीव भी स्पर्श करने मात्र से मरते रहते हत्त । अतः जहाँ भी हम वायुकाय में रहते हत्त, हमारा वायु के जीवों को स्पर्श होता है, हम जो भी स्प दन करते हत्त या स्थिर बैठे हत्त, तो भी हमारे स्पर्श में आने वाले वायु जीव मरते हत्त । जिस तरह वर्षा के समय कोई पानी की बू द आकर शरीर पर पड गई तो अपने स्पर्श से उसमें रहे अस ख्य जीव स्वतः मरते रहते हत्त । वैसे ही वायु काय के जीव हमारे स ब ध से सदा सर्वत्र मरते ही रहते हत्त । (२) कोई फूँक से या प खे से अथवा किसी भी पदार्थ को तीव्र वेग से हिलाता है, गति कराता है, फेंकता है, उससे हवा की, वायु की उदीरणा होती है, वायु की निष्पत्ति होती है । उसमें वायुकाय के जीव उत्पन्न होते हत्त । जैसे दीपक जलाने से वहाँ अग्रि के जीवों का जन्म प्रार भ होता है, वैसे ही हवा उत्पन्न होने से वहाँ विशेष वायुकाय के जीवों का उत्पन्न होना अर्थात् जन्म मरण होना प्रार भ होता है । अतः हवा पैदा करने से जीवों के जन्म मरण प्रार भ होने के निमित्त की दूसरे प्रकार की विराधना समझनी चाहिये ।

योगों का प्रवर्तन कम करने से प्रथम प्रकार की विराधना न्यून न्यूनतम होती जाती है और फूँकना या प खा चलाना आदि हवा करने का कार्य नहीं करने से द्वितीय प्रकार की वायुकाय की विराधना बिलकुल नहीं होती है ।

स यम ग्रहण करने वाले मुनि **दूसरे प्रकार** की विराधना के पूर्ण त्यागी होते हक्त और उस विराधना से बचने के लिये वे हर कार्य को यतना से विवेक से करते हक्त । **प्रथम प्रकार** की विराधना से बचने के लिए वे अपनी प्रवृत्तियों को घटाते रहते हक्त, निवृत्ति की तरफ बढने का लक्ष्य रखते हक्त । आवश्यक और आगम आज्ञा वाली प्रवृत्तिओं तक ही सीमित रहते हक्त । आगे बढकर निवृत्त साधनामय जीवन में अधिकतम ध्यान और कायोत्सर्ग में समय पसार करते हक्त ।

प्रथम प्रकार की विराधना शरीर के अ दर के सूक्ष्मतम स चार से भी चालू रहती है, जो केवलज्ञानी वीतरागी के तेरहवें गुणस्थान के अ तिम समय तक चलती है ।

आगम में श्रमणों के लिये वायुकाय की अहिंसा के सभी वर्णनों में दूसरे प्रकार की 'फूँकना और वींजना' रूप हिंसाकारी प्रवृत्ति का सर्वथा निषेध किया जाता है और उसी की सावधानी के लिये प्रत्येक कार्य यतना से, शा ति से, विवेक से करने की प्रेरणा की जाती है । प्रथम प्रकार की वायुकाय की हिंसा को रोकने हेतु स यमजीवन की समस्त विधियाँ, अनावश्यक प्रवर्तना को घटाने के लिये होती है और जो भी आवश्यक प्रवृत्तियों की शास्त्र में आज्ञा है वह भी स यम जीवन और दीर्घायु तक इस औदारिक शरीर के निर्वाह के लिये सूचित की गई है । भाव स यम की समाधि और शरीर की समाधि आदि लक्ष्यों से, सर्वज्ञों की दीर्घ दृष्टि से स यम की समस्त विधियाँ आगम में बताई गई है । यद्यपि अनेक विधियाँ गोचरी, विहार, प्रतिलेखना आदि प्रवृत्ति रूप है, फिर भी वे स यम जीवन या अहिंसक जीवन की सु दर सफलता के लक्ष्य से तथा शरीर और ब्रह्मचर्य की सुव्यवस्था के लक्ष्य से ही कही गई है । वे प्रवृत्तियाँ आयुष्य कर्म की सत्ता में आवश्यक और लाभप्रद होने से कही गई है । फिर भी मुनि जीवन में गृहस्थ जीवन की अपेक्षा अनेक प्रवृत्तियाँ घट जाती है और मुनि जीवन में भी आगे बढकर जो साधक निवृत्ति की तरफ बढ जाते हक्त, **आहार और व्यवहार** घटा देतेह्न्क्त,

दीर्घ तपस्या और ध्यान कायोत्सर्ग में लग जाते हक्त, उनकी प्रवृत्तियाँ घट जाती है । ये सभी तप साधनाएँ स यम जीवन में आगे बढाई जा सकती है । इस प्रकार प्रथम प्रकार की विराधना अल्प अल्पतम होती रहती है, कम की जा सकती है, कि तु स पूर्ण समाप्ति तो १४ वाँ गुणस्थान प्राप्त होने पर अर्थात् मोक्ष जाने के कुछ क्षण पूर्व शरीर छूटने के समय ही होती है । ये दो प्रकार की अपेक्षाओं से गिनी जाने वाली, आगमिक विराधना का स्वरूप बताया गया है ।

आगम की व्याख्याओं में वायुकाय के शस्त्र दो प्रकार के कहे गये हक्त– स्वकाय शस्त्र और परकाय शस्त्र । वायु के जीव, वायु जीवों या वायु शरीरों से भी मरते हक्त तथा अन्य किसी भी पदार्थों से या जीवों से भी मरते हक्त ।

कोई पर परा में ऐसी कथन प्रवृत्ति है कि वायुकाय के एक स्वकाय शस्त्र ही होता है, परकाय शस्त्र नहीं । यह एक अत्य त स्थूल दृष्टि की अपेक्षा है । ऊपर जो दूसरे प्रकार की विराधना फूँकना प खा करना आदि की बताई गई है, उस दृष्टि की अपेक्षा यह परम्परा धारणा चल रही है और उसी को मुख्य करके एका तिक प्ररूपणा की जाती है । कि तु सूक्ष्म दृष्टि और उभय दृष्टि से ऊपर विवेचन दिया गया है तदनुसार ऐसी एका तिक आग्रह भरी प्ररूपणा उपयुक्त नहीं है । कि तु दूसरे प्रकार की मुनि जीवन की निषिद्ध विराधना के एका गी दृष्टिकोण से चल पडी है । वास्तव में दूसरे प्रकार की विराधना की व्यवहार में मुख्यता है । जब कि प्रथम प्रकार की विराधना में समस्त प्रवृत्तियों का, हिंसा कार्यों का समावेश है ।

प्रश्न–१५ : धोवण पानी या अचित्त पानी की कोई स ख्या निश्चित है ?

उत्तर– पर परा और प्रचलन में २१ प्रकार का धोवणपानी होता है, ऐसा कथन चल गया है । जिसका आधार इसी अध्ययन का सातवाँ आठवाँ उद्देशक है । जब कि उस पाठ में कोई स ख्या का निर्देश भी नहीं है और कोई इसके आधार से स ख्या इक्कीस निर्धारित करे तो उसका ख डन उसी पाठ से हो जाता है । फिर भी एका गी अपेक्षा से कोई प्रचलन चला दिया जाता है और चल भी जाता है ।

इस अध्ययन के सातवें उद्देशक के अ त में एक सूत्र में तीन प्रकार के अचित्त पानी का नाम देकर अन्य भी इस प्रकार के अचित्त

पानी मिले तो भिक्षु ग्रहण कर सकता है, ऐसा कहा गया है । दूसरे सूत्र में छः अचित्त पानी के नाम देकर कहा गया है कि अन्य भी इस प्रकार के अचित्त पानी भिक्षु ले सकता है । यह इस सातवें उद्देशक के दो सूत्रों की वास्तविकता है । आठवें उद्देशक के प्रथम सूत्र में १२ प्रकार के अचित्त पानी के नाम हक्त जिन में बीज, गुठली आदि पडे हों तो उन्हें लेने का, छानकर लेने का भी निषेध है । विधान करने वाला वाक्य वहाँ मूलपाठ में नहीं है । फिर भी अर्थापत्ति से समझ लेते हक्त कि बीज गुठली आदि न हो तो वे पानी अचित्त होने से लिये जा सकते हक्त । इस सूत्र में भी बारह नाम देकर कहा गया है कि अन्य भी इस प्रकार के बीज आदि से युक्त पानी अचित्त हो तो भी अप्रासुक-अनेषणीय जानकर नहीं लेना ।

इन तीनों सूत्रों के अ दर आये नामों का योग करके ३+६+१२ =२१ स ख्या धोवण पानी के लिये चला दी गई है । पर तु वास्तविकता क्या है वह ऊपर स्पष्ट कर दिया गया है ।

इस २१ के अतिरिक्त दो नाम अचित्त पानी के दशवैकालिक सूत्र में अन्य है तथा निशीथ सूत्र में और भी एक नाम विशेष है जो अन्य सूत्रों में नहीं है । निशीथ उद्देशक १७ में 'अ बक जिय ' शब्द अधिक है । दशवैकालिक अध्ययन पाँचवें में 'वारधोयण ' शब्द नया है । उष्णोदक का अलग कथन भी यहाँ दशवैकालिक में है जिसका (तीनों का) कथन शब्द आचारा ग में नहीं है । आचारा ग सूत्र में आये शुद्धोदक से कोई उष्ण उदक अर्थ करते हक्त, वह भ्रम है । निशीथ सूत्र में शुद्धोदक को धोवण पानी के साथ गिना है वहाँ गर्म पानी अर्थ करना सर्वथा गलत होता है । अतः इन समस्त शास्त्र पाठों का सार यह है कि २१ प्रकार के धोवण, यह स ख्या एक चलाई गई पर परा मात्र है । अचित्त पानी आगम पाठों के अनुसार अनेक प्रकार के हो सकते हक्त । जो भी नाम दिये गये हक्त, वे तो उदाहरणार्थ दिये गये हक्त, ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न–१६ : क्या अचित्त पानी साधु स्वय हाथ से ले सकता है ?

उत्तर– विधि रूप से आहार पानी साधु अपने हाथ से उठाकर नहीं लेते । कि तु विशेष प्रस ग से कभी अचित्त पानी हाथ से लिया जा सकता है । इस अध्ययन के सातवें उद्देशक में यह विधान किया गया है कि गृहस्थ कह दे, आज्ञा दे दे या किसी परिस्थिति में साधु स्वय

गृहस्थ से आज्ञा मा ग ले, प्राप्त कर ले और पानी स्वय ग्रहण कर ले । इस प्रकार गृहस्थ की आज्ञा हो जाने से गृहस्थ के अचित्त जल के बर्तन को समूचा उठाकर अपने पात्र में पानी लिया जा सकता है, नहीं उठा सके ऐसा बर्तन या कु डी, कु ड हो तो गृहस्थ के अन्य छोटे बर्तन से अथवा साधु अपने पात्र से भर भर कर भी ले सकता है । कि तु इस तरह भोजन लेने का विधान किसी भी शास्त्र में किसी भी परिस्थिति से नहीं किया गया है ।

औषध आदि भी गृहस्थ के कहने से या आज्ञा प्राप्त कर साधु स्वय उठाकर ले लेते हक्त, वह भी पानी के विधान के आधार से अत्य त आवश्यक होने से प्रवृत्ति रूप में चालू है ।

स्वय साधु द्वारा पानी लेने की परिस्थिति अनेक कारणों से उपस्थित हो सकती है । अचित पानी सहज सुलभ नहीं होता है और सुलभ हो जब देने वाला उठा नहीं सकता या बच्चा है अथवा गर्भवती है इत्यादि कारण हो सकते हक्त । आहार में ऐसी स्थिति कम होती हक्त । क्यों कि आहार अधिक घरों में सहज बनता है और रहता भी है, मिल भी जाता है । अतः विवेकपूर्वक, परिस्थिति से कभी साधु स्वय अपने हाथ से गृहस्थ का बर्तन उठाकर पानी ले सकते हक्त परन्तु सर्वत्र सदा के लिये नहीं । आवश्यक प्रस ग और गृहस्थ की इच्छा आज्ञा होने पर ही लिया जा सकता है ।

प्रश्न–१७ : लहसुन क दमूल है ? क्या उसे साधु-साध्वी ले सकते हक्त ?

उत्तर– उत्तराध्ययन सूत्र में लहसुन को साधारण वनस्पति में गिनाया और वह भूमि के अ दर होता है अतः अन तजीवी और क दमूल है । भगवती सूत्र में कहा गया है कि गोशालक के आजीविकोपासक भी क दमूल के त्यागी होते थे । तो फिर श्रमणोपासक तो अवश्य ही क दमूल के त्यागी होने ही चाहिये । जब श्रावक क दमूल के त्यागी होंगे तो श्रमणों के पात्र में क दमूल आने का प्रस ग ही कैसे हो सकता ? फिर भी दशवैकालिक सूत्र अध्ययन तीसरा एव आचारा ग प्रस्तुत प्रथम अध्ययन और सातवें अध्ययन में आये वर्णन से यह ध्वनित होता है कि साधु अचित बने लहसुन या उसके ख ड एव रस को ग्रहण कर सकते हक्त ।**सार**– आदर्श मार्ग से साधु एव श्रावक को क दमूल का उपयोग नहीं करना चाहिये क्यों कि गोशालक के श्रावक भी क दमूल का उपयोग नहीं करते थे ।

क दमूल में अन त जीवों की विराधना है, फिर भी एकेन्द्रिय जीव है । वनस्पति जीव है । इन्हें प चेन्द्रिय के मा स भक्षण के समान तो नहीं कहा जा सकता । मा स भक्षण नरक में जाने का कारण बताया है । कि तु क दमूल रूप एकेन्द्रिय के आहार को ऐसा नहीं कहा जा सकता । अत: जैन साधु के गोचरी के कुलों में घरों मे किसी देश प्रा त में कई खाद्य पदार्थों में लहसुन डाला जाता है । कोई प्रा तों में अदरक और हल्दी का बहुलता से उपयोग होता है । ऐसे क्षेत्रो में ये चीजें अचित रूप में साधु की गोचरी में आ जाना पूर्ण स भव रहता है ।

दूसरी बात यह है कि औषध रूप में, स्वास्थ्य के किसी कारण से भी लहसुन का उपयोग फायदेम द माना जाता है । इत्यादि कारणों से अचित्त लहसुन और अचित्त क दमूल साधु के लिये एका तिक मद्य-मा स जितना निषिद्ध आगमों में नहीं है । फिर भी भगवती सूत्र के गोशालक उपासकों के कथन से प्रभु महावीर ने अपने श्रावकों को क दमूल के त्यागी बनने की प्रेरणा दी है । ***उसी को लक्ष्य में रखकर विधि मार्ग से, राजमार्ग से, साधु और श्रावकों को लहसुन, हल्दी, अदरक, आलू आदि समस्त क दमूल जाति के पदार्थों के खाने का परहेज ही रखना चाहिये । कि तु सूत्र विपरीत अति प्ररूपणा करने के आग्रह में नहीं पहुँचकर विवेक से भाषण करना चाहिये ।*** जिनधर्म, वीतराग मार्ग, त्याग का मार्ग है इसमें त्याग बढे तो लाभ ही है । त्यागने में नुकशान नहीं है कि तु सूत्र विपरीत मनमानी अति प्ररूपणा करना विशेष पाप है, ऐसा समझना चाहिये ।

इस अध्ययन के आठवें उद्देशक में वनस्पति के अनेक विभागों का अलग-अलग सूत्रों से कथन करके उनके अप्रासुक अनेषणीय अवस्था में भिक्षु के लिये ग्रहण करने का निषेध है । जिनमें लहसुन एव उनके विभागों तथा अर्क(रस) के लिये भी अप्रासुक अनेषणीय लेने का निषेध है । प्रतिपक्ष में लेने का विधान यहाँ किसी वनस्पति के लिये नहीं है । इस शास्त्र में ही आगे सातवें अध्ययन में प्रतिपक्ष विधान में लहसुन लेने का स्पष्ट कथन है । दशवैकालिक सूत्र के तीसरे अध्ययन में सचित्त क दमूल लेने को अनाचार में गिनाया गया है, वहाँ भी प्रतिपक्ष रूप अचित्त का स्पष्टीकरण नहीं है ।

प्रश्न–१८ : नारियल, खजूर आदि का मस्तक किसे समझना ?

उत्तर– इन वृक्षों के ऊपरी भाग में होने वाला अवयव विशेष समझना चाहिये । व्याख्याकारों ने इसके **फलों का गिर भाग** ऐसा भावार्थ किया है । आठवें उद्देशक में अनेक प्रकार की सचित्त हरी वनस्पतियों एव फलों के निषेध का प्रकरण है अत: सभी अग्राह्य और अप्रासुक वनस्पति पदार्थों का स ग्रह है कि तु इस नारियल आदि के सूत्र में 'णण्णत्थ' शब्द लगा होने से सूत्र का अर्थ, भावार्थ,रहस्यार्थ क्लिष्ट हो गया है । क्यों कि फल या फल का गिर अर्थ करे तो वहाँ नहीं कहे गये फलों के गिर भाग का अलगाव होगा और सचित्त अचित्त समझने का भ्रम उपस्थित होगा । अत: वृक्षों का ऊपरी विभाग विशेष, ऐसा अर्थ ऊपर सूचित किया है । **गहरा विचार करने पर ज्ञात होता है कि इस सूत्र में णण्णत्थ से लेकर कुछ शब्द अप्रास गिक जुड गये हक्त, प्रक्षिप्त हो गये हक्त ।** ऐसा स्वीकार करने पर सूत्र का सीधा और स्पष्ट अर्थ हो जाता है कि अग्रबीज आदि वनस्पतियाँ भी अप्रासुक और अनेषणीय हो तो ग्रहण नहीं करना । यही समीचीन समाधान इस सूत्र का गले उतरने जैसा होता है ।

प्रश्न–१९ : क्या कुम्भीपक्व फल अचित्त होते है ?

उत्तर– इस अध्ययन के आठवें उद्देशक में अनेक प्रकार के कुम्भीपक्व फलों के नाम कहकर कुम्भीपक्व विशेषण लगाकर उन फलों को अनेषणीय अप्रासुक कहा है । इसकी टीका में आचार्य शीला क ने कुम्भीपक्व फलों को पकाने की विधि बताकर कहा है कि इस प्रकार धूँए और ताप से फल का गिर भाग पकता है कि तु वे फल या उनके बीज अचित्त नहीं हो जाते । अत: ये कुम्भीपक्व फल अप्रासुक अनेषणीय रहते हक्त ।

प्रश्न–२० : आहार परठने योग्य हो तो उसकी क्या विधि होती है ?

उत्तर– परठने योग्य आहार कई प्रकार का होता है यथा– सचित्त, रसचलित, त्रस जीव मिश्रित, शस्त्र परिणत की अपेक्षा मिश्र(सचित्त), निर्दोष अचित्त अतिमात्रा में आया हुआ, शय्यातरपि ड, आधाकर्मी आदि विशेष दोष युक्त, विष युक्त, अखाद्य पदार्थ मिश्रित, प्रत्याख्यान वाले पदार्थ एव लीलन फूलन युक्त पदार्थ । इन सभी की परठने की विधि इस प्रकार है— (१) विष युक्त या रोग पैदा करने वाले खराब पदार्थ अचित्त हो तो धूल रेत या राख आदि अचित्त पदार्थ में मिलाकर परठकर ऊपर से भी राख रेत आदि से ढक दिये जाते हक्त

(२) सचित्त, रसचलित, लीलन फूलन से युक्त पदार्थ को रेत राख आदि किसी में नहीं मिलाया जाता कि तु इन पदार्थों के जीवों की हिंसा का अधिकतम बचाव स भव हो, उस तरह पोलार वाले स्थानों में, जैसे कि पत्थर ख डहर के ढेर, अन्य किसी प्रकार के ढेर में, जिस में बीच-बीच में जगह हो, का टों की वाड में इत्यादि स्थलों में विवेक से परठा जाता है (३) त्रस जीव मिश्रित खाद्यपदार्थ एका त या दिवाल के पास परठे जाते हक्त जिससे कि जीवों पर किसी का पाँव नहीं आवे, वे जीव चलकर निकलकर दिवाल के सहारे सुरक्षित बैठ सके, जा सके और उन्हें छाँया भी मिल सके । धूप में या शीघ्र धूप आने वाली हो ऐसी जगह में त्रस जीव युक्त पदार्थ नहीं परठे जाते । जिस खाद्य पदार्थ में त्रस जीव निकल कर साफ हो सकते हों, वे नहीं परठे जाते । जो पदार्थ त्रस जीवों के पडने और मर जाने से अखाद्य जैसे ही हो गये हों तो वे विवेक पूर्वक परठ दिये जाते हक्त । (४) अचित्त निर्दोष आहार ज्यादा मात्रा में होने से, एका त में खुली जगह में कुछ ऊँचाई वाली जगह में परठ दिये जाते हक्त । (५) अचित्त सदोष खाद्यपदार्थ आवागमन के मार्ग से अति दूर, एका त में, खुल्ले में परठ दिये जाते हक्त ।

अचित्त खाद्य पदार्थों को परठने में भाष्यकारों ने अनेक विकल्पों से अनेक विधियाँ, स केत आदि बताये हक्त । जिसका हेतु है कि उसका उपयोग पशुपक्षी कर सके, कभी कोई मानव भी कर सके और कभी किसी परिस्थिति में साधु-साध्वी भी कर सके, इत्यादि विशेष अनुभव आवश्यक भाष्य से करने चाहिये ।

परठने के समय लोगों की दृष्टि न पडे, आवामगन न हो, धर्म की या खुद साधु की हीलना निंदा न हो, इसका पूर्ण विवेक रखना चाहिये । ऐसा विवेक जो रख सके, उसे परठने के लिये भेजा जाता है, न कि छोटे या नव दीक्षित को । आहार परठने का कार्य अनुभव-शील विवेकी साधु को ही करना चाहिये । सकारण आहार परठने का प्रायश्चित्त आगम में नहीं है, कि तु विराधना और दीर्घ दृष्टिकोण से समाचारी में जो प्रायश्चित्त विधान हो वह गुरु आज्ञा से निर्जरार्थ ग्रहण कर लेना चाहिये । सचित्त और दोष युक्त आहार का प्रायश्चित्त तो गवेषणा करने वाले को आता है । परठने वाले को व्यावहारिक और सामाचारिक प्रायश्चित्त यथालघुष्क(अल्पतम) आता है ।

सचित्त पानी या त्रस जीव युक्त पानी हो तो जलीय स्थानों के निकट जाकर उनके बाहर योग्य गीली जगह हो तो वहाँ परठा जाता है फिर वह पानी आदि आगे पानी में चले जाय । अथवा ऐसी जगह बाहर न हो, पूर्ण सूखा किनारा हो तो पानी में विवेक से परठा जाता है । परठने वाला अप्काय की विराधना आदि का एक उपवास प्रायश्चित्त ग्रहण करता है, यह विधि भी भाष्य-निर्युक्ति(आवश्यक सूत्र) में बताई है । शास्त्र के मूल पाठों में आहार परठने के निर्देश अनेक जगह है कि तु आहार परठने की स्पष्ट विधि तो व्याख्याओं से ज्ञात होती है । सचित्त पानी परठने की विधि मूल पाठ में आचारा ग सूत्र के दूसरे श्रुत स्क ध के छट्ठे पात्रेषणा अध्ययन में बताई गई है । वहाँ भी गृहस्थ को पुनः लौटाना या सचित्त पानी में स्वय डालना आदि विधि बताई है ।

प्रश्न– २१ : इक्षु–गन्ने के लिये उज्झितधर्मा होने से किसी शास्त्र में कहीं तो साधु को लेने की मनाई की है और कहीं लेने का विधान किया है, ऐसा क्यों ?

उत्तर– गन्ना पूर्ण पक जाने पर छाल–छिलके सहित अचित्त हो जाता है, पर्व भाग को छोडकर यदि छिलके सहित टुकडे मिले तो छिलकों की अपेक्षा फक्तकना ज्यादा गिना गया है । उसके साथ में फलियों आदि का पाठ भी है । जिन सि ग आदि फलियों को ऊपर के छिलके सहित सेककर अचित्त किया गया है, वैसी फलियों में फेंकना ज्यादा होने से इन फलियों और गन्ने को इस अध्ययन के दसवें उद्देशक में अग्राह्य कहा है । आगे सातवें अध्ययन में इक्षु के लेने स ब धी विवेक और विधान है, वहाँ फेंकने योग्य छिलके नहीं है ऐसा समझना । रस चूसने के बाद कूँचा फेंकना पडे, उसे नगण्य कर दिया गया है । फलियाँ सेकी हुई है और ऊपर के विशेष फेंकने योग्य छिलके निकल गये हक्त तो ग्राह्य है ।

प्रश्न–२२ : क्या साधु सचित्त नमक खा सकते हक्त ?

उत्तर– जिस प्रकार सचित्त पानी आ जाने पर गृहस्थ को वापिस दे दिया जाता है अथवा परठ दिया जाता है । उसी प्रकार सचित खाद्य पदार्थ भी भूल से आ जाने के बाद अल्प समय में ज्ञात हो जाने पर गृहस्थ को वापिस कर दिया जाता है । गृहस्थ लेना न चाहे या अधिक दूर चले गये हो तो परठ दिया जाता है । यदि गृहस्थ के देने से या

आदेश से सचित्त नमक खाया जा सके तो सचित्त पानी परठने की आवश्यकता भी नहीं होगी । कि तु ऐसा स यम का आचार नहीं है और शास्त्रकार का ऐसा आशय भी नहीं है ।

इस अध्ययन के दसवें उद्देशक में कहा गया है कि कोई सचित्त नमक का निम त्रण करे तो उसे अनेषणीय अप्रासुक समझकर छोड देना चाहिये । यदि किसी ने पीसी शक्कर की जगह पीसा अचित्त नमक दे दिया है ऐसी भूल हो जाने पर बाद में अन्य घर में गोचरी करते आदि कभी ध्यान आवे तो वापिस उसी घर में जाकर पूछना कि यह नमक(अचित्त) तुमने जानकर दिया या अनजान से ? इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सचित्त नमक जानकर निम त्रण का विषय अलग है और यह तो भूल से ग्रहण होने का प्रस ग अलग है । सचित्त वस्तु भूल से या जानकर ग्रहण हो गई हो तो भी उसे परठने का ही शास्त्र में विधान है खाने का नहीं । यहाँ गृहस्थ की पुन: आज्ञा मिल जाने पर अदत्त नहीं रहने से साधु के खाने का विधान है । अत: अचित्त नमक ही भूल से शक्कर की जगह ग्रहण हुआ हो ऐसा समझना चाहिये । सूत्रों के अर्थ परमार्थ आगम सापेक्ष हों, उन्हें ही ग्रहण करना चाहिये । आगम विपरीत तात्पर्य निकालने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये ।

प्रश्न–२३ : मद्य और मा स के आहार को नरक का कारण बताया गया है फिर भी शास्त्र में जगह–जगह साधु के लिये ऐसे विषय के पाठ क्यों आते हक्त ?

उत्तर– दशवैकालिक सूत्र में बताया गया है कि साधु का आहार मद्य मा स और मत्स्य से रहित होता है और वे बार बार विगयों का भी त्याग करके लूखा आहार करते हक्त । ठाणा ग सूत्र में मा साहार और मद्यपान नरकायु ब ध के कारण कहे गये हक्त । इनका सेवन जैन साधु तो क्या जैन श्रावक भी नहीं करते । जो गोचरी के कुल कहे गये हक्त उसमें भी दो शब्द विशेषण रूप में लगाये हक्त– अजुगुप्सित और अगर्हित । अगर्हित का मतलब है अनिंदित, प्रतिष्ठित । जहाँ मा साहार किया जाता है, पकाया जाता है, वे लोक में जुगुप्सित कुल नहीं हो तो भी निन्दित गर्हित कुल गिने जाते हक्त । वैसे मा साहारी घरों में गोचरी जाना भी वर्जित है ।अत: साधु के गोचरी स बधी या आहार स ब धी पाठों में मा स विषयक पाठ उपयुक्त नहीं है । जो भी पाठ उपलब्ध हक्त उनमें

लेखनकाल के बाद पर परा में हुई विकृति का या दुर्मानस का प्रभाव है, ऐसा समझना चाहिये । इन स्थलों का स शोधन होना आवश्यक होते हुए भी एका गी दृष्टि के कारण ये पाठ प्रक्षिप्त है, ऐसा मान कर भी धकाया जाता है तथा कई आचार्य शब्द कोषों का आल बन लेकर वनस्पतिपरक अर्थ करते हक्त ।

आचारा ग सूत्र में ऐसे आपत्ति जनक पाठ चार जगह हक्त जो साधु की गोचरी से स ब ध रखते हक्त । वे इस अध्ययन के चौथे-आठवें-नवमें उद्देशक में और दशवें उद्देशक में हक्त । साध्वाचार के प्रकरण में और साधु के गोचरी जाने के घरों के प्रस ग में मा साहार का कथन शास्त्र स गत नहीं हो सकता है । भगवती सूत्र में स्वय भगवान महावीर के प्रकरण में, निशीथ सूत्र में और सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र में ऐसे आपत्तिजनक मा स मद्य के स ब धी विधायक पाठ है । आचार्य आदि अनेक गीतार्थ श्रमणो ने सम्मेलनों में भी यह निर्णय लिया है कि– ***आचारा ग सूत्र, भगवती सूत्र, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि सूत्र में जिनवाणी विपरीत पाठ है । जो गणधर रचित नहीं है । वैसे मा स मद्य के पाठ प्ररूपणा करने योग्य नहीं है ।***

तात्पर्य यह हुआ कि ये पाठ गणधर रचित जिनवाणी नहीं है, तो प्रक्षिप्त ही है, ऐसा सीधा ही कहना चाहिये । प्रक्षिप्त है ऐसा जानकर, मानकर भी उन पाठों को शास्त्र में रखना और फिर वनस्पति परक अर्थ भी करना या अर्थ ही नहीं करना, यह सुविचारकता नहीं हो सकती । वास्तव में जैन शास्त्रों में साधु के लिये मा स मद्य का विधान हो ही नहीं सकता क्यों कि इन्हें नरक का कारण स्पष्ट कहा है । तो फिर साधु जीवन के गोचरी से इनका स ब ध कि चित् भी नहीं हो सकता तथा मा सभक्षण की प्ररूपणा प्रेरणाजनक सूर्यप्रज्ञप्ति का पाठ तो अत्य त ही निष्कृ ष्ट दरज्जे का है । ये सभी पाठ स शोधन की आवश्यकता वाले हक्त । क्यों कि इन्हें जिनवाणी नहीं माना जाता है । फिर भी ज्यों का त्यों मूल पाठ रखा जाता है, वह आगम स पादन की कर्तव्यनिष्ठता नहीं कही जा सकती ।

अत: सार यह समझना है कि मद्यमा स का आहार श्रावकों के भी योग्य नहीं है । साधु ऐसे आहार खाने वालों के घरों में गोचरी भी नहीं जा सकता है क्यों कि वे निन्दित कुल गिने जाते हक्त । अत:

ऐसे अशुद्ध आहार स ब धी शास्त्र के पाठ मध्यकाल में आई विकृतियों के कारण से है । उनका सही स शोधन स पादन किया जाना आवश्यक है । कथा वर्णन में, साधु या श्रावक के अतिरिक्त व्यक्तियों के वर्णन में, ऐसे पाठ हो तो समझदारों के लिये चर्चा के विषय नहीं बनते हक्त । जैसे कि ज्ञाता सूत्र की कथाएँ या दु:खविपाक सूत्र की प्रत्येक कथाएँ । कथाओं के वर्णन साधु श्रावक अवस्था से भिन्न है, उनके वर्णन से धर्म के सिद्धा तो पर चोट नहीं होती है । वे तो सा सारिक रुचि वाले जीवों के प्रास गिक घटना वर्णन होते हक्त । कि तु आचारा ग, निशीथ सूत्र के विधान सूचक पाठ सीधे साध्वाचार से स ब ध रखते हक्त, भगवती सूत्र का पाठ सीधा केवली तीर्थंकर प्रभु महावीर स्वामी से स ब ध रखता है और सूर्य-प्रज्ञप्ति सूत्र के पाठ तो मा सभक्षण की प्ररूपणा प्रेरणा करने वाले हक्त । इन पाठों को ज्यों का त्यों छपाने वाले स पादक जिनवाणी के महान अपराधी होते हक्त । शासन सेवा की जगह कुसेवा करते हक्त । दुर्बुद्धि से प्रक्षेप कर अन त स सार बढाने वालों के सहायक और अनुमोदक होते हक्त ।

सच्चे अर्थ में वे स पादक गणधरों को बदनाम करते हक्त कि उनको भाषा विवेक या वचन प्रयोग विवेक भी नहीं था कि जिन मद्य-मा स शब्दों के प्रयोग से नरकायु ब धने का विषय कहा है, उसी मद्य-मा स शब्द से साधु की गोचरी और भगवान महावीर की औषध का विषय भी कह दिया और उन्हीं शब्दों से यात्रा करने की सफलता और कार्यों की सिद्धि होना कह दिया । माने न माने ऐसे पाठों को छपाने वाले स्पष्ट ही तीर्थंकर गणधर एव जिनशासन की महान आशातना करने के भागी होते हक्त ।

इसके अतिरिक्त जो स घ, साधु, आचार्य आदि यह सामुहिक निर्णय कर लेते हक्त कि ***उपर्युक्त सूत्र के पाठ जिनवाणी नहीं है, गणधरों की रचना नहीं है, प्ररूपणा करने योग्य नहीं है*** ऐसी घोषणा करके भी ज्यों का त्यों मूल पाठ छपाकर रख देते हक्त, ऐसे लोगों को कर्तव्य हीन और महान अकर्मण्य कहा जाय तो भी कम होगा । ऐसे लोग भविष्य में जैनागमों की घोर निंदा करवाने के पात्र होते हक्त ।

जैन धर्म का एक सच्चा श्रावक भी अनार्य लोगों के मा साहार को सहन नहीं कर सकता, मा साहार की बात सुनना भी पस द नहीं कर सकता; वहाँ सूत्र छपाने वाले आचार्य और विद्वान स त अपने ही

शास्त्रो में मा स की प्ररूपणा और प्रेरणा करने वाले मूल पाठ को छपाकर अपने आपको भगवान के और जिनशासन के महान ईमानदार और वफादार होने का स तोष करते हक्त, ऐसे पाठों को स शोधन करना भी अन त स सार बढाना मानते हक्त, यह समझ भ्रम ही है । जैसे कि अपने शरीर का कोई अ ग विकृत हो गया हो और समझ में आ गया हो फिर भी उसे स भाले रखना, शुद्धि नहीं करना, समझदारी नहीं कही जा सकती । कि तु शरीर के प्रति उपेक्षा ही कही जायेगी । ठीक इसी तरह ये ऊपर चर्चित सूत्रा श जिनागम की प्ररूपणा से विपरीत पाठ हक्त, गणधरों की रचना नहीं है, ऐसा स्वीकार कर लेने के बाद भी ज्यों का त्यों छपाकर रख देना किसी भी प्रकार की समझदारी या बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती ।

प्रश्न–२४ : सात पि डेषणाओं का तात्पर्यार्थ क्या है उनमें आपस में क्या विशेषता है ?

उत्तर– गोचरी के आहार आदि से स ब धित सात प्रकार के अभिग्रहों को यहाँ सात पि डेषणा की स ज्ञा से सूचित किया है । जिनका भावार्थ इस प्रकार है–(१) दाता का हाथ या पात्र किसी भी पदार्थ से लिप्त नहीं हो उससे भिक्षा ग्रहण करना, अन्यथा नहीं लेना । गोचरी देने के बाद दाता को पानी की विराधना नहीं करनी पडे, हाथ वगैरह धोना नहीं पडे, ऐसा विवेक रखकर लेना । (२) किसी भी खाद्य पदार्थ से हाथ आदि लिप्त हो खरडे हुए हों तो उनसे ही भिक्षा लेना अन्यथा नहीं लेना । (३) जिन बर्तनों में आहार बना है या बनाकर व्यवस्थित रखा है उन्हीं में से सीधा दिया जाय, वैसा मिले तो लेना, अन्यथा नहीं लेना । (४) दालिया, भू गडा, खाखरा आदि जिन पदार्थों से पात्र में कोइ लेप नहीं लगे, ऐसे पदार्थ मिले तो लेना, अन्यथा नहीं लेना । (५) भोजन जिन मौलिक बर्तनों में रखा हो, उसमें से अन्य बर्तन में परोसने आदि किसी प्रयोजन से निकाला हो, कहीं ले जाने के लिये टीपन आदि में या अन्य छोटे बर्तन में डाला हो, वैसा मिले तो लेना, अन्य न लेना । (६) हाथ में या थाली में अपने या अन्य के लिये परोसा गया, खाने के लिये ले लिया, उस आहार में से यदि मिले तो लेना, नहीं मिले तो नहीं लेना । (७) बला-जला, बचा-खुचा, देखते ही जिसे सामान्य जन लेना या खाना नहीं चाहे ऐसा अमनोज्ञ, फेंकने जैसा आहार

यदि मिले, कोई दाता देना चाहे तो लेना, अन्य अच्छा मनोज्ञ आहार नहीं लेना । अ त में इन सभी पडिमाओं के साधकों को शिक्षा दी गई है कि कोई भी कौन सी भी पडिमा(अभिग्रह) अपनी क्षमता अनुसार धारण करे कि तु अपने को अच्छा या ऊँचा और दूसरों को हल्का या निम्न समझने का प्रयत्न नहीं करे । जिनको जो समाधि और उत्साह हो वह करते हक्त, हम सभी जिनाज्ञा के अनुसार अपनी अपनी समाधि भाव अनुसार करते हक्त, ऐसा समझे, माने अर्थात् अपना उत्कर्ष और अन्य का अपकर्ष करने का यहाँ सर्वथा निषेध किया गया है ।

दूसरा अध्ययन : 'शय्यैषणा'

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में कितने उद्देशक है, उनमें विषय क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में तीन उद्देशक हक्त । सभी में मकान, पाट, स थारा, घास स ब धी विधि निषेध का वर्णन है । अधिकतर स यम के अयोग्य मकानों का और उनसे होने वाले दोषों का कथन करके, निर्दोष योग्य मकान में रहने की सूचना दी गई है ।

प्रश्न–२ : कैसे मकानों में साधु को नहीं ठहरना चाहिये ?

उत्तर– साधु साध्वी के वास्ते ही जो मकान बना है अथवा साधु के लिये खरीदा है या मिश्र दोषवाला है, कुछ स स्कार सुधार कार्य किये हक्त, सफाई करी है, सचित्त या अचित्त सामान इधर उधर रखा है, गृहस्थ परिवार स युक्त मकान है, अत्यधिक नीचा छत वाला मकान या झोंपडी है, त्रस जीव कीडी आदि से स कुल मकान है या जहाँ अन्य भी पानी, पृथ्वी, ओस, पा च प्रकार की फूलन, हरीघास, बीज, मकडियाँ आदि जीव हक्त; इस प्रकार के मकानों में साधु को ठहरना नहीं चाहिये । कि तु एका त, निर्दोष, स्वत त्र, शा त, जनाकूलता रहित स्थान में ठहरना चाहिये ।

प्रश्न–३ : क्या उक्त मकानों में साधु एका त रुप से कि चित् भी नहीं ठहर सकते ?

उत्तर– साधु के निमित्त से बने आधाकर्मी औद्देशिक और मिश्रजात मकान, जिसका प्रार भिक निर्माण लक्ष्य साधु के वास्ते हुआ है, वे मकान

एका त रुप से सदा के लिये साधु के उपयोगी नहीं होते हक्त । इससे अतिरिक्त सुधार, स स्कार, सफाई आदि दोष वाले मकान गृहस्थ के उपयोग में आ जाने पर या लम्बा समय बीत जाने के बाद उपयोग में लिये जा सकते हक्त, ऐसी छूट इस अध्ययन में दी गई है । जिसका निर्णय गुरुज्ञानी आचार्य बहुश्रुत आदि के जिम्मे होता है । सामान्य साधु इस अधिकार को लेकर अविवेक या दुरुपयोग नहीं करे ।

परिस्थिति वश गृहस्थ युक्त या पानी, अग्नि युक्त मकान में ठहरना पडे तो एक या दो दिन से अधिक नहीं ठहरना । कीडी आदि जीवों से युक्त मकान ही मिला, अन्य न मिलता हो तो एक दिन रात्रिवास विवेक सहित पूर्ण किया जा सकता है ।

प्रश्न–४ : गृहस्थ स युक्त मकानों में स भवित दोष क्या कहे हक्त ?

उत्तर– (१) कोई भी अशाता रोग होने पर उसे देखकर अनुक पा वश गृहस्थ अनेक प्रकार की सेवा करेगा । (२) गृहस्थ आपस में झगडे, बोल बोल करे तो स कल्प विकल्प होंगे । (३) गृहस्थ के रत्न आभूषण या अल कृत सुरूप स्त्रियों को, बच्चों को देखकर ऊँचा-नीचा मन स कल्प-विकल्प, मोह भाव उत्तेजित होगा । (४) कोई स्त्रियाँ पुत्र प्राप्ति हेतु अब्रह्मचर्य सेवन की प्रेरणा कर सकती है । (५) साधु के स कोच शर्म से गृहस्थ अपने कार्यों को अनियमित आगे पीछे करेगा । (६) साधु के लिये भी आर भ समार भ आहार निष्पादन आदि करेगा, गर्मी सर्दी की व्यवस्था सुरक्षा करेगा । (७) साधु की असावधानी से रात्रि में कोई चोर घुस सकता है । (८) कोई भी चोरी हो जाय तो साधु पर आक्षेप आ सकता है । (९) यदि चोर के लिये हल्ला करे, पकडे तो स यम मर्यादा भ ग होती है ।

प्रश्न–५ : गृहस्थ स युक्त मकान के प्रस ग में साधु और गृहस्थ की विपरीत वृत्ति कैसे बताई है ?

उत्तर– यहाँ दूसरे उद्देशक में कहा गया है कि कितनेक गृहस्थ शुचि धर्मी होते हक्त अर्थात् साफ सफाई बाह्य पवित्रता की वृत्तिवाले होते हक्त कि तु भिक्षु, जैन श्रमण तो मैल परीषह जीतने वाले, स्नान आदि नहीं करने वाले होते हक्त । साथ ही यथा प्रस ग आवश्यक होने पर स्वमूत्र का प्रयोग करने वाले होते हक्त । जिससे पसीने, मैल आदि की एव लघुनीत की ग ध भी हो सकती है । गृहस्थ को इनसे अरुचि,

घृणा, प्रतिकूलता हो सकती है । इसलिये भी गृहस्थ स युक्त मकान में साधु को नहीं ठहरना चाहिये । वह पाठ इस प्रकार है– **गाहावई णामेगे सूइ समायारा भव ति, से भिक्खू य असिणाणए मोयसमायारे भवइ, से तग्ग धे, दुग्ग धे, पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ ।।**

प्रश्न–६ : इस अध्ययन में साधु के ठहरने योग्य मकानों के नाम कौन कौन से हक्त ?

उत्तर– सूत्र में कहे गये दोषों से रहित मकान कोई भी हो, किसी भी नाम वाले हो, भिक्षु वहाँ ठहर सकते हक्त । साधु जहाँ ठहरता है या जहाँ ठहरना है, उसे शास्त्रकार उपाश्रय शब्द से ही कहते हक्त अर्थात् शय्या और उपाश्रय ये दो नाम साधु के ठहरने के मकान के लिये प्रयुक्त है । कि तु गृहस्थों की अपेक्षा मकानों के नामों का निर्देश इस प्रकार है– (१) लुहारशाला आदि (२) धर्मशाला (३) देवस्थान, म दिर (४) सभाभवन(होल) (५) प्याऊ (जलघर) (६) दुकान (७) गोदाम (८) गेरेज (यानगृह) (९) यानशाला (१०) चूने आदि के कारखाने (११) घास–दूब आदि की चीजें चट्टाई आदि बनाने के कारखाने (१२) चर्म के कारखाने (१३) वल्कल के कारखाने (१४) कोयले के कारखाने (१५) काष्ट कर्म, सुथारशाला, लकडी के कारखाने (१६) स्मशान (१७) शून्यगृह (१८) पर्वत की गुफा (१९) शा ति कर्म (यज्ञ, हवन, जाप आदि) स्थान (२०) पाषणम डप– शिला से बना स्थान (२१) अन्य भी ऐसे भवन या गृहों में (१) बाँस की कुटिया (२) घास की झोंपडी (३) खण्डहर (४) बगीचा (५) वृक्ष के नीचे (६) तृणपु ज के नीचे (७) पराल पु ज के नीचे (८) परिव्राजकों के मठ में ।

उपरोक्त २० नाम इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक के एक ही सूत्र में है और सात नाम अन्यत्र है । इन स्थानों में जहाँ पानी हो या आर भ होता हो तो वहाँ उसके आस पास के एका त कमरे समझ लेना चाहिये अथवा ये स्थान, इन नाम वाले स्थान जब खाली हों वैसे समय का समझ लेना चाहिये । तात्पर्य यह है कि निर्दोष कोई भी स्थानों में साधु ठहर सकता है । उनमें शास्त्रोक्त अकल्पनीयता हो या अल्प अकल्पनीयता हो तो अन्य आगम आज्ञाओं अनुसार कहीं १–२ रात्रि, कहीं मास कल्प या कहीं चातुर्मास रहा जा सकता है और जहाँ पूर्ण निषेध हो वहाँ नहीं ठहरना चाहिये ।

विशेष नियम : आचारा ग प्रस्तुत अध्ययन और दशवैकालिक अध्ययन आठवें में कहा गया है कि जो मकान **उच्चार-पासवण भूमि** या **उच्चार भूमि** से स युक्त हो, वहीं प्रज्ञावान साधु को ठहरना उपयुक्त होता है अर्थात् जिस मकान में या आस पास में मलमूत्र या पानी आदि परठने के लिये साधु मर्यादा के योग्य जगह हो तो वहीं पर साधु को ठहरना चाहिये । जहाँ पर यह सुविधा न हो और किसी कारण से ठहरना पड गया हो तो १–२ दिन में ही वहाँ से अन्यत्र विचरण कर देना चाहिये । ऐसे स्थान में ठहरने से स यम या शरीर की अनेक हानियाँ सूत्र में सूचित की गई है तथा मर्यादा उल्ल घन एव लोकापवाद होने की स भावना भी रहती है ।

अत: आगम की इस ध्रुव आज्ञा की उपेक्षा साधु साध्वी को किसी भी स्वार्थ या परमार्थ के नाम से नहीं करनी चाहिये एव श्रावक वर्ग को भी अपने धर्मध्यान करने के भवन स्थानक में इस विषयक समाधान को प्राथमिकता देकर विवेक करना चाहिये, उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ।

प्रश्न–७ : क्या साधु मकान की कल्पनीयता आदि के स ब ध में गृहस्थों को समझा सकता है ? ऐसा करने में कोई प्रेरणा दोष नहीं लगेगा ?

उत्तर– इस अध्ययन के तीसरे उद्देशक के प्रथम सूत्र में इसी बात की चर्चा की गई है । भाषा की स क्षिप्तता आदि कारणों से उस सूत्र का भावार्थ समझना कुछ क्लिष्ट सा लगता है । उस सूत्र का सार यह है कि साधु मकान के स ब ध में समझा सकता है कि इस प्रकार से, अनेक प्रकार से मकान सदोष हो जाते हक्त । निर्दोष, पूर्ण शुद्ध उपयोगी मकान मिलने साधु को बहुत सुलभ नहीं होते हक्त । लोग साधु के लिये कई प्रकार के सुधार परिकर्म आदि कर देते हक्त या मकान बना देते हक्त, वे अकल्पनीय होते हक्त ।

इसके अतिरिक्त गृहस्थों के कई मकान होते हक्त, भाइयों में विभक्त होते हक्त, कइयों के पास अतिरिक्त मकान होते हक्त, खाली पडे रहते हक्त, अनुपयुक्त हो जाते हक्त या छोड दिये जाते हक्त अर्थात् किसी भी प्रकार से भेंट दे दिये जाते हक्त, ऐसे मकान साधु के उपयोग में आ सकते हक्त इत्यादि सरलता से गृहस्थों को अपना मकान स ब धी आचार विचार, आगम उद्देश्य साधु समझा सकता है । मकान की कल्पनीयता,

अकल्पनीयता आदि समझा सकता है । उस सूत्र के अ तिम वाक्य को प्रश्न की भाषा में कहा गया है कि क्या ऐसा प्ररूपण करता हुआ साधु सम्यक् भाषण करता है ? उत्तर में कहा गया है कि हाँ, वह सम्यक् कथन करता है । अत: साधु भाषा समिति के विवेक से किसी भी आचार विचार विधि निषेध को समझा सकता है, कि तु उसे किसी प्रकार का आदेश वचन या सावद्य प्रेरक वचन नहीं बोलना चाहिये ।

प्रश्न–८ : अन्य स न्यासी आदि से युक्त मकान में ठहरना पडे तो जैन मुनि को किस विवेक से रहना चाहिये ?

उत्तर– परिस्थिति वश कभी ठहरना पडे तो अत्यधिक विवेक रखना चाहिये । उनके सामान को इधर उधर करना नहीं, उनसे किसी भी प्रकार का प्रतिकूल व्यवहार करना नहीं, रात्रि में अ धकार में जाना आना हो तो भी पूर्ण विवेक सावधानी से जाना । उनकी वस्तु या अ गोपा ग से स्पर्श, टक्कर न हो ऐसा विवेक रखना । इत्यादि इस अध्ययन में स्पष्ट विधि बताई गई है । इस प्रकार के वर्णन से यह स्पष्ट होता कि साधु के आचार व्यवहार में मकान स ब धी एका तिक आग्रह नहीं है, प्रस गवश अन्य मकान की उपलब्धि या स योग न हो तो एक दिन के लिये कहीं भी कैसे भी विवेकपूर्वक समभावों के साथ समय व्यतीत कर लेना चाहिये ।

प्रश्न–९ : मकान ग्रहण करने की विधि क्या है ?

उत्तर– (१) मकान के स ब ध में औद्देशिक आदि दोषों की जानकारी अनुभवज्ञान से या पूछकर करना (२) मकान का मालिक कौन है या किसके जिम्मे वह मकान है, यह जानना (३) आसपास में या मकान में परठने की जगह है या नहीं, यह जानना (४) मकान मालिक या जिम्मेदार व्यक्ति से आज्ञा प्राप्त करना (५) कितना मकान और उसकी कौन कौन सी जगह काम में लेना या पूरा मकान काम में लेना आदि सीमा का स्पष्टीकरण करना (६) गृहस्थ और कोई सूचना दे तो उसे सुनना या पूछ लेना (७) कितने साधु हक्त या और भी आने वाले हक्त उसका भी स्पष्टीकरण जरूरी हो तो करना (८) कब तक या कितना ठहरना हो यह भी आवश्यक लगे तो या गृहस्थ पूछे तो स्पष्ट करना (९) अनेक व्यक्तियों का सामुहिक मकान हो तो एक व्यक्ति की आज्ञा लेना । जिसकी आज्ञा ली हो उसका नाम गोत्र आदि से

परिचय कर याद रखना । फिर उसके घर गोचरी नहीं जाना । (१०) ठहरने के बाद में उस गृहस्थ को अप्रीति या अभाव हो ऐसा कोई व्यवहार नहीं करना (११) अपनी आगमोक्त मर्यादाओं का पूर्ण विवेक के साथ पालन करना (१२) वहाँ से विहार करना हो, जाना हो, तब मकान और वहाँ के उपकरण आदि को विवेक के साथ व्यवस्थित रखकर फिर मकान मालिक या जिम्मेदार को स भलाकर जाना अथवा मालिक जो निर्देश कर दे उसके अनुसार स भलाकर या व्यवस्थित करके जाना ।

प्रश्न–१० : सूत्र में मकान की ९(नौ) क्रियाएँ क्या कही है ?

उत्तर– सदोष या निर्दोष अपेक्षित आशय के अनुसार शय्या के नौ विभाग शास्त्रकार ने किये हक्त, उन्हें क्रिया शब्द के साथ उपलक्षित किया है । जिनमें कोई ज्यादा दोष वाले, कोई कम दोष वाले, कोई निर्दोष मकान भी है और कुछ साधु द्वारा कल्प मर्यादा भ ग करके रहने से स ब धित है । यह वर्णन इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक में है उसका सार यह है कि– (१) मासकल्प या चातुर्मास कल्प मर्यादा का उल्ल घन करके अधिक ठहरने को कालातिक्रा त क्रिया कहा है । (२) एक कल्प काल रहने के बाद उससे दुगुना काल अन्यत्र बिताये बिना और चातुर्मास बाद तिगुणा काल अन्यत्र बिताये बिना, वापिस वहीं पर आकर रहा जाय उसे उपस्थान क्रिया कहा है । (३) गृहस्थों ने कोई भी नये मकान बनाये हक्त उनमें गृहस्थों के उपयोग में आने के बाद ठहरे तो अभिक्रा त क्रिया है । **यह निर्दोष मानी गई है** ।(४) नये बने मकानों में सर्व प्रथम साधु ठहरे तो उसे अनभिक्रा त क्रिया कहा है । (५) गृहस्थ अपने मकान को साधुओं के लिये दे दे और खुद दूसरा मकान नया बना ले, ऐसे मकान में ठहरने को वर्ज्य क्रिया से सूचित किया है । (६) आग तुकों, स न्यासियों और जैन श्रमणों को गिन-गिन कर उनके लक्ष्य से कोई मकान धर्मशाला बना दी गई है, उसमें जैन साधु ठहरे तो इसे महावर्ज्य क्रिया कहा है । (७) जैन, शाक्य, तापस, गैरिक, आजीवक आदि केवल गृहत्यागी पाँच प्रकार के श्रमणों के लिये ही कोई मकान, धर्मस्थान गृहस्थ ने बनाया है, उसमें ठहरे तो इसे सावद्य क्रिया कहा गया है ।(८) जैन श्रमण को ही उद्देश करके मकान बनाया या परिकर्म आर भ समार भ के कार्य किये, ऐसे मकान

में ठहरने को महासावद्य क्रिया कहा है । (९) गृहस्थों ने अपने उपयोग के लिये मकान बनाये हक्त और उन्हें उपयोग में ले रहे हक्त, उनमें सहज साधु भी कभी ठहर जाता है, इसे अल्प सावद्यक्रिया अर्थात् असावद्य क्रिया कहा है । **यह कल्पनीय शय्या में समाविष्ट है ।** इस प्रकार इस प्रकरण में कही गई तीसरी और नवमी दो कल्पनीय क्रियाएँ है । यहाँ क्रिया शब्द प्रयोग कुछ सार्थक भी है कुछ रूढ प्रयोग भी है, ऐसा समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न–११ : घास पाट के स ब ध में क्या विवेक बताया गया है ?

उत्तर– घास जीव युक्त न हो और उपयोग में आ सके ऐसा हों, यह विवेक रखना । पाट अधिक भारी न हो, सहज स्थाना तरित किया जा सके, टूट फूट जैसा असमर्थ न हो, ठीक हालत में हो, हिल बिल (चूँ चूँ शब्द) करनेवाला न हो, गृहस्थ वापिस लेवे ऐसा हो, जीव युक्त, जालों युक्त न हो ।

घास पाट के स ब ध में अन्य दोष आदि की चर्चा सूत्र में नहीं है फिर भी यथास भव क्रीत, अभिहड आदि दोष समझ लेना । विशेष यह है कि पाट घास में आधाकर्मी उद्देशिक महान आर भ समार भ के दोष; अग्नि, पानी आदि के आर भ के अभाव के कारण नहीं होते हक्त । केवल सामान्य दोष ही स भव है जो काला तर से या उपयोग में आ जाने से कल्पनीय हो जाते हक्त क्यों कि मकान के दोषों में आधाकर्मी औद्देशिक आदि के अतिरिक्त दोष वाले मकान काला तर से और पुरुषा तरकृत हो जाने से कल्पनीय हो जाते हक्त, जिसमें कि ऊपर बाँस, कवेलु से छत करना या दिवाल बनाना अथवा दिवाल तोडकर दरवाजा बनाना आदि सभी काला तर से या गृहस्थ के उपयोग में आ जाने से कल्पनीय बताये हक्त। अत: घास पाट आदि कोई जि दगी भर या सदा के लिये अकल्पनीय नहीं होते हक्त । फिर भी जो कोई ऐसा मानते हक्त वह उनका व्यक्तिगत भ्रम एव अविवेक है तथा सूत्र के आशय को समझे बिना ओघ स ज्ञा से मान लेना मात्र है, अविचारकता है ।

घास के नाम शास्त्र में इस प्रकार हक्त– (१) इक्कड (२) कढिण (३) ज तुग (४) परग (५) मोरग (६) तृण (७) सोरग (८) कुश–दूब (९) कूर्चक (१०) पिप्पलक (११) पराल(यह चावल आदि का चार प्रकार का होता है) ये सभी प्रकार के घास सूखे और बीज रहित हो तो

ग्रहण कर उपयोग में लिये जा सकते हक्त फिर वापिस दे दिये जाते हक्त ।

प्रश्न–१२ : इस अध्ययन में सोने की क्या विधि बताई है ?

उत्तर– बडे छोटे के विवेक से या बिमार, मेहमान साधु का विवेक रखकर यथा योग्य शयन स्थान अपने लिये सूर्यास्त पूर्व प्रतिलेखन कर लेना चाहिये, प्रमार्जन कर लेना चाहिये । फिर सोते समय पुन: भूमि का प्रमार्जन कर शयन आसन बिछाना चाहिये । फिर उसे पूँजकर, साथ ही पूरे शरीर को पूँज कर फिर आसन पर बैठना चाहिये । फिर कायोत्सर्ग में इरियावही, आत्मजागरण आदि करके यतनापूर्वक सोना चाहिये । सोते हुए किसी अन्य साधु का किसी प्रकार का स्पर्श या आशातना नहीं करते हुए विवेक पूर्वक सोना चाहिये । यहाँ यह भी बताया गया है कि उबासी, छींक, वायुनिसर्ग आदि वायुवेग के समय हाथ से यतना करने का विवेक रखना चाहिये । अ त में सम-विषम, अनुकूल-प्रतिकूल, मनोज्ञ-अमनोज्ञ मकानों में भी समभावपूर्वक समय व्यतीत करने का उपदेश दिया गया है और कहा गया है कि कि चित् भी ग्लानि, दु:ख भाव नहीं करना चाहिये ।

प्रश्न–१३ : क्या ऊपर की म जिल में साधु ठहर सकते हक्त ?

उत्तर– सूत्र में ऊपर की म जिल वाले ऊँचे मकानों में ठहरने के लिये मना किया है वहाँ उनके साथ 'अ तरिक्ष जात' विशेषण लगाया है और वहाँ पाँव फिसलने, पडने, गिरने, कपडा, पात्र आदि के उडने, गिरने आदि दोष बताये हक्त । इससे यह स्पष्ट होता है कि ऊपरी म जिल के साथ लगा विशेषण 'अ तरिक्षजात' सार्थक है उसका मतलब यह है कि ये ऊपरी स्थान चौतरफ से खुले जैसे हो, दिवाल पाली आदि से पूर्ण सुरक्षित न हो, सहज ही गिर पडने की शक्यता हो, ऐसे स्थान यहाँ पर अपेक्षित हक्त । ऐसा नहीं समझने पर अ तरिक्षजात शब्द की कोई विशेषता नहीं होती है । अत: सूत्र के स पूर्ण वर्णन और अ तरिक्ष-जात शब्द प्रयोग के कारण ऐसा समझना चाहिये कि पूर्ण सुरक्षित ऊपर की म जिलों में ठहरने की शास्त्रकार की मनाई नहीं है । अत: ऐसे सुरक्षित स्थानों पर वस्त्र-पात्र भी ऊँचे रखे जा सकते हक्त । उपलक्षण से जहाँ कपडे उडने, पडने की स भावना न हो ऐसे स्थान में रस्सी आदि पर कपडे सुखाये जा सकते हक्त । कपडे का सामान्य हिलना

साध्वाचार में निषिद्ध नहीं समझना चाहिये, जितना कि पहने ओढे चद्दर चोलपट्टे गोचरी विहार में सहज रूप से या हवा से हिलते हक्त ।

तीसरा अध्ययन : 'ईर्या'

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम क्या है, इसमें कितने उद्देशक है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम 'ईर्या' अध्ययन है । जिसे 'ईर्याख्य' भी लिखा जाता है । पिंडेषणा, शय्यैषणा के लय में ईरियेषणा भी लिख दिया जाता है, जो प्रवाह मात्र से समझना । नाम के अनुसार ही इस अध्ययन में समस्त वर्णन ईर्या समिति स ब धी है । जिसमें विहार, चातुर्मास, नौकाविहार, पथिक से वार्ता आदि विषयों में विवेक बताया गया है । इस अध्ययन के तीन उद्देशक हक्त ।

प्रश्न–२ : चातुर्मास कब कहाँ करना ?

उत्तर– जब वर्षा से त्रस जीवोत्पत्ति ज्यादा हो जाय, अ कुरे ज्यादा निकल जाय, मार्ग चलने लायक न रहे, तो फिर विहार नहीं करना कि तु चातुर्मास के लिये ठहर जाना चाहिये । जिस ग्रामादिक में रहने की और स्वाध्याय करने के जगह की सुविधा हो, बाहर शौच जाने की या परठने की सुविधा हो, आवश्यक उपकरण, पाट आदि सुलभ हो, निर्दोष आहार पानी, गोचरी सुलभ हो । माँगने फिरने वाले भिक्षाचरों की बहुलता न हों, भीड, जनाकुलता मार्गों में न हो, सहज चलने का मार्ग मिलता हो । ऐसे स्थान में चातुर्मास ठहरना चाहिये । चातुर्मास बाद भी रास्ते साफ हो जाय तभी विहार करना चाहिये ।

प्रश्न–३ : चलते समय साधु को क्या विवेक रखना तथा विहार में क्या विवेक रखना ?

उत्तर– (१) मार्ग में कीडी आदि हों तो पाँवों को स भाल कर रखना अर्थात् त्रस जीव पाँव के नीचे न आ जाय, इस तरह पाँव ऊँचा, टेढा करते हुए जीवों को बचाते हुए चलना । (२) पहले से या जब ज्ञात हो जाय कि इस रास्ते में जीव जन्तु, हरी घास, फूलण अथवा पानी, नदी, नाला आदि आता है तो दूसरा मार्ग हो तो उस रास्ते को सीधा हो

तो भी छोड देना । कई बार साधु छोटा(सोर्ट कट) रास्ता लेते हक्त फिर बीच में बहुत विराधना होती है, तकलीफ भी होती है । अतः पाँच-दस मिनिट अधिक लगे तो भी साधु को ऐसे सोर्ट कट देखने की आदत नहीं रखकर स्वच्छ जीव रहित मार्ग का निर्णय करना चाहिये । (३) रास्ते चलते किसी से बातें करते हुए नहीं चलना । (४) रास्ते में जिधर अनार्य लोग, सेना का पडाव, दो राज्यों के बीच ताजा वैर विरोध हो, लम्बी अटवी हो तो अन्य मार्ग की खोजकर के उधर जाना कि तु ऐसे आपत्ति जनक रास्तों से नहीं जाना । (५) दीक्षा ज्येष्ठ साधु या गुरु आचार्य आदि के साथ चलते समय विनय विवेक रखना । बडों के हाथ पाँव से स्पर्श न हो इस तरह चलना । कोई राहगीर मिले और पुछे तुम कौन हो, कहाँ जा रहे हो, कहाँ से आये, कितने हो इत्यादि तो बडों को जवाब देने दे, बीच में भी न बोले । ये सभी सूचनाएँ इस अध्ययन के प्रथम उद्देशक में विस्तार से की गई है ।

प्रश्न–४ : साधु नाव में बैठ सकता है ? पानी में चल सकता है ?

उत्तर– विधि मार्ग से साधु पानी की एक बू द को भी स्पर्श नहीं कर सकता । कि तु परिस्थिति से विहार में चलते समय रास्ते में पानी आ जाय, अन्य कोई मार्ग खोजने पर भी नहीं मिल सके या मिलना स भव न हो, उस पानी में से जाना आवश्यक हो जाय तो उस पानी में चल कर पार करना पडता है । उसके लिये यहाँ दूसरे उद्देशक में विवेक ज्ञान बताया है । जिसका सार यह है कि जहाँ पानी कम ऊँडा हो और कम चौडा हो वहाँ से शा तिपूर्वक पानी को नहीं गिडोलते हुए, पाँव को पानी से ऊपर उठाते हुए चले । इसके पूर्व पाँवों का प्रमार्जन कर ले, भ डोपकरणों को व्यवस्थित स भाल कर चले ।

यदि पानी अधिक हो और कोई उपाय नहीं हो तो विवेक और सावधानी के साथ नौका से भी उस मार्ग को पार किया जा सकता है । उपकरणों को एक कपडे में बा धकर सागारी स थारा पचक्ख कर, पूरे शरीर का प्रमार्जन करके फिर नाव के निकट जाने के लिये जल में ऊपर बताई विधि से चले । यह सब वर्णन इस अध्ययन के प्रथम, द्वितीय उद्देशक में है । नाव में कहाँ किस तरह बैठना, कौन सी नाव में बैठना, किस में नहीं बैठना, कोई साधु को पानी में फेंक दे तो क्या करना, क्या नहीं करना वगैरह विस्तृत वर्णन मूल पाठ में है ।

प्रश्न–५ : साधु अचानक कहीं खड्डे में गिर जाय तो क्या करे ?

उत्तर– साधु खड्डे आदि उबड-खाबड रास्तों में जावे नहीं । उसे विवेक पूर्वक मार्ग का निर्णय कर के चलना चाहिये । यह कहने के बाद भी सूत्र में बताया गया है कि स योगवशात् साधु ऐसे खड्डे आदि मे गिर जाय, जहाँ से बाहर आने का मार्ग न हो तो वह झाडी, वृक्ष आदि के सहारे से भी बाहर आ सकता है, किसी को आवाज देकर उसकी मदद से भी बाहर आ सकता है ।

प्रश्न–६ : विहार में स्थलों, जलाशयों, मकानों वगैरह को ईशारा करके दिखाया जा सकता है ?

उत्तर– साधु को च चल वृत्ति और कुतुहल वृत्ति का पूर्ण त्याग करना होता है । उसे प्रश्नोक्त किसी भी स्थानों को हाथ ऊँचे करके या अ गुली निर्देश–ईशारा करके एक दूसरे को दिखाना, बातें करना मना है । इस बात को सूत्र में अनेक जलाशयों, स्थलों, मकानों के नाम गिनाकर विस्तार से निषेध किया है और उससे होने वाली विराधना आदि का भी निर्देश किया है ।

प्रश्न–७ : मार्ग में चोर मिल जाय तो साधु क्या करे ?

उत्तर– रास्ते के स ब ध में साधु पहले से ही लोगों से पूर्ण जानकारी करके ही चले । मार्ग में चलते हुए अचानक चोरों के सामने आने की जानकारी मिले तो डरे घबरावे नहीं, धैर्य रख कर अपने क्रमानुसार चले । भागने छिपने का प्रयत्न न करे । कभी चोर आकर उपस्थित हो जाय, छीनकर सामान ले ले तो घबरावे नहीं, दीनता भी करे नहीं । सामान को नीचे रखकर बैठ जाय या खडा रहे, अपने हाथ से उन्हें देना भी नहीं, वे स्वय लेने लगे तो खींचना भी नहीं तथा फिर किसी को शिकायत आदि भी करना नहीं । रागद्वेष भी नहीं करना । स भव लगे तो धर्म शिक्षा वाक्यों से उसे उपदेश देकर उपकरण प्राप्त कर सकता है ।

प्रश्न–८ : मार्ग में कोई लोग बिना विवेक की बातें पूछे तो साधु झूठ बोल सकता है ?

उत्तर– (१) यह गाँव कैसा है ? यहाँ के लोग कैसे हक्त ? यहाँ पशु आदि कितने हक्त ? यहाँ जमाना कैसा है ? इस प्रकार के प्रश्न पूछने पर साधु उत्तर देवे नहीं, मौन रखे, चलता रहे । खुद साधु भी ऐसे प्रश्न गृहस्थ से पूछे नहीं ।(२) कोई हिंसक व्यक्ति जानवर, पक्षी के

स ब ध में पूछे, कोई वनस्पति आदि के स ब ध में पूछे कि ये चीजें तुमने मार्ग में कहीं देखी है ? तो जानते हुए भी मौन रखे और चलता रहे, कोई जवाब न दे, यह भी न कहे कि मक्तज्ञानता हूँ, हाँ देखे हक्त । मौन पूर्वक चलने की स्पष्ट आज्ञा शास्त्र में दी गई है ।(३) इन्ही सूत्रों के साथ यह भी कथन है कि कोई पूछे– यहाँ से उस गाँव की दूरी कितनी है ? गाँव का सही मार्ग कितना दूर है ? ऐसा पूछने पर भी साधु मौन पूर्वक चले कि तु ऐसी बातों का जवाब न दे और यह भी न कहे कि मक्त जानता हूँ ।

इन सभी उत्तरों में अनेक सावध या आपत्तिकारी विकल्प रहते हक्त । जैसे कि वह व्यक्ति अपनी गलती से मार्ग भटक जाय, थका हुआ होने से उसे ज्यादा दूर लग जाय, फिर साधु को झूठा समझे या निंदा करे इत्यादि आशयों से सूत्र में निषेध करके मौन का अवल बन लेकर चलते रहने का स केत है । जब मौन का ध्रुव आदेश है तो फिर झूठ बोलने के आदेश की कल्पना करनी उचित्त नहीं है । सूत्रों के शब्दों और रचना को सही ढ ग से समझकर योग्य अर्थ करना ही विवेक युक्त होता है । क्यों कि हिंसक के प्रश्न पर और गाँव की दूरी पूछने के प्रश्न पर आगम का उत्तर एक समान शब्दों से दिया गया है । अत: जीव दया-रक्षा के नाम से झूठ बोलने का समझना, अगले सूत्रों से भी उपयुक्त नहीं होता है । सभी सूत्रों में मौन रहना स्पष्ट कह दिया है । फिर झूठ बोलना कहने का कोई मतलब नहीं रहता ।

चौथा अध्ययन :'भाषा'

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में उद्देशक कितने हक्त और उनमें क्या विषय है ?

उत्तर– इस अध्ययन में दो उद्देशक हक्त जिनमें साधु-साध्वी के लिये भाषा प्रयोग करने का विवेक बताया गया है । दशवैकालिक सूत्र के सातवें अध्ययन में भाषा विवेक गाथाओं के रूप में बताया गया है और यहाँ उसे गद्य पाठ के रूप में बताया गया है । दोनों सूत्रों में

अधिका श विषय समान है, कुछ ही भिन्नता है । दोनों ही सूत्रों में विषय को अत्यधिक स्पष्ट किया गया है । क्यों कि भाषा विवेक समझना साधु-साध्वी को अत्य त आवश्यक है । दोनों सूत्रों में विषय समान होने से विषय की विशेष चर्चा दशवैकालिक सूत्र में की जायेगी ।

प्रश्न–२ : दशवैकालिक की अपेक्षा यहाँ क्या विशेष ज्ञातव्य है ?

उत्तर– प्रार भ के सूत्र में कहा गया है कि– क्रोध में, मान में, माया में और लोभ में अर्थात् इनके वश में होते हुए जो भी भाषा साधु-साध्वी बोलते हक्त, वह सब सावद्य भाषा की गिनती में है । जो जानबूझकर या अनजान में भी कठोर भाषा बोलते हक्त, तो वह भी सावद्य(सपाप) भाषा कही गई है । साधु बोलते समय पूर्ण सोचकर अकषाय भाव से बोले और भविष्य स ब धी वचन बोलने में पूरा पक्का निर्णय करके ही बोले । यह प्रथम सूत्र का सार है ।

अ तिम सूत्र में कहा गया है कि – (१) साधु पहले क्रोध भाव का त्याग करे, मन में से भी क्रोध को निकाल दे फिर बोले । उसी तरह(२–४) भावों में से पहले मान, माया, लोभ के परिणामों को पूर्णतया निकाल कर साफ पवित्र मानस करके फिर बोले (५) **अणुवीई–** सोच विचार कर फिर बोले अर्थात् मुझे स यम विधि से कल्पता है, योग्य है, दूसरों का अहित तो नहीं होगा, इत्यादि सोचे, तोले, फिर बोले (६) **णिष्ठाभाषी–** भाषा स ब धी पूर्ण निष्ठा या अधिकार के साथ बोले, उटपटा ग नहीं बोले अर्थात् लि ग, वचन, काल, प्रत्यक्ष, परोक्ष आदि जब जो जहाँ उपयुक्त हो उसका पूर्ण सही प्रयोग करके बोले । इस स ब ध में सूत्र में १६ प्रकार कहे हक्त । (७) **णिसम्मभासी–** अच्छी तरह सुनकर समझकर सामने वाले के आशय को भली भाँति विचार कर, ध्यान में लेकर फिर बोले । (८) **अतुरिय–** शा ति से बोलने की आदत बनावे, उतावल से नहीं बोले क्यों कि ऐसा करने से नहीं चाहते हुए भी कई बार भाषा की गलतियाँ हो जाती है । (९) **विवेकभासी–** क्षेत्र-काल का, सामने वाले व्यक्ति का, वातावरण का विवेक रखे । मधुर सत्य बोलने का लक्ष्य रखे, कटु– चुभने वाले, दूसरों को क्रोध उत्पन्न कराने वाले या निंदाजनक वचन नहीं बोलना । पापकारी–पाप की प्रेरक, पाप की अनुमोदक, पाप की प्रश सक भाषा नहीं बोले । सभी प्रकार से पूर्ण विवेक रखकर आगम आज्ञानुसार साधु के योग्य

भाषा बोलना, विवेक भाषा है । **समियाए–** इन सब बातों का ध्यान रखकर सम्यक् भाषा बोलना, असम्यक् भाषा नहीं बोलना अर्थात् भाषा समिति युक्त भाषा बोलना । इस प्रकार प्रार भ और अ तिम सूत्र में स क्षिप्त कथन किया गया है ।

प्रश्न–३ : इस अध्ययन में एक ही भाषा को बोलना और नहीं बोलना दोनों कैसे कहा गया है ?

उत्तर– कोई भी वस्तु में वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श अच्छे-खराब हों, उनके विषय में राग या द्वेष के भाव में परिणत होकर अर्थात् अत्य त खुश होकर अथवा चहेरा या भाव भ गी बिगाडकर उन वर्ण, रस आदि को खराब या अच्छा नहीं कहना । कि तु जानकारी देने, स्वरूप बताने हेतु पूर्ण शा ति, समभाव, विवेक के साथ उस चीज को अच्छी या खराब बताया जा सकता है । इस अपेक्षा से इस सूत्र में कहा गया है कि यह सुशब्द है, यह दुर्गंध है, यह मधुर है, यह कडुवा है, खारा है, फीका है ऐसा नहीं बोले । यहाँ रागद्धेषात्मक भावों की अपेक्षा निषेध है और उसके बाद के सूत्र में कहा कि सुशब्द को सुशब्द कहे, दुर्गंध को दुर्गंध कहे इत्यादि जैसी वस्तु है, आवश्यक होने पर या आवश्यक समझकर उसका सम परिणामों में रहते हुए स्वरूप ज्ञान कराया जा सकता है ।

प्रश्न–४ : साधु अतिशयोक्ति में किसी को कुछ भी कह सकता है ?

उत्तर– साधु की भाषा में विवेक होना आवश्यक है । वह सामान्य लोगों की भाँति अतिशयोक्ति की भाषा नहीं बोल सकता है । यथा– किसी अच्छे गुणवान सज्जन या पुण्यवान को यह देव है, ऐसा सीधा वचन नहीं कहना तथा आकाशदेव, वर्षादेव, बिजलीदेव, अग्निदेव आदि शब्द बोलने का भी साधु के लिये निषेध है ।

प्रश्न–५ : भाषा कितने प्रकार की है और साधु के बोलने योग्य भाषा कौन सी है ?

उत्तर– सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार चार प्रकार की भाषा सावद्य, कठोर, अहितकर हो तो कोई भी भाषा बोलना साधु को नहीं कल्पता है । सत्य और व्यवहार भाषा सावद्य-कठोर आदि न हो तो बोलना कल्पता है । आदेश निर्देश आदि व्यवहार भाषा है ।

पाँचवाँ अध्ययन : वस्त्रैषणा

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में कितने उद्देशक हक्त और उनमें क्या मुख्य विषय है ?

उत्तर– इस अध्ययन में दो उद्देशक हक्त जिन में स पूर्ण विषय वस्त्र स ब धी विधिविधान का है ।

प्रश्न–२ : मुनि कैसे और कितने वस्त्र ग्रहण करे, रखे ?

उत्तर– इस अध्ययन के प्रथम सूत्र में ६ प्रकार के वस्त्र ग्रहण करने का उल्लेख है अर्थात् सूत्रोक्त ६ जाति के वस्त्रों में से जब जैसी सुलभता, अनुकूलता और गुरु आज्ञा हो, कोई भी जाति का वस्त्र साधु-साध्वी ले सकते हक्त, उपयोग कर सकते हक्त । (१) ऊनी वस्त्र (२) अलसी आदि की छाल से बना वस्त्र *[निशीथ चूर्णि]* (३) सण का वस्त्र (४) सूती वस्त्र (५) ताड पत्र से निर्मित वस्त्र (६) आक आदि से बना वस्त्र । विकलेन्द्रिय त्रस जीवों की हिंसा से बने रेशम, मलमल, आदि के वस्त्र का ग्रहण 'ज गिय' प्रथम शब्द में होता है कि तु व्याख्या में बताया है कि साधु के लिये सर्वथा वर्ज्य है ।

जो साधु पूर्ण स्वस्थ, समर्थ, श्रेष्ठ स घयण वाला, बलवान और युवान है, उसे सूत्रोक्त इन प्रकारों में से किसी एक जाति के वस्त्र से निर्वाह करना चाहिये । जो जब सुलभ हो और गुरु आज्ञा हो वैसा सूती आदि का कोई भी एक जाति के वस्त्र धारण करे । साथ में दूसरी जाति के ऊनी आदि के वस्त्र नहीं रखे ।

प्रश्न–३ : वस्त्र ग्रहण-धारण में क्या विशेष ध्यान रखना चाहिये ?

उत्तर– (१) गवेषणा नियमों का पालन करना अर्थात् साधु के लिये बना या खरीदा नहीं लेना (२) साधु के लिये धोया, र गा, (नील आदि पदार्थ से) स्वच्छ, चमकीला किया हो तो नहीं लेना (३) कीमती, आकर्षक और सूत्र में निषिद्ध हों वह नहीं लेना (४) वस्त्र लेने गये हों, उस समय गृहस्थ बाद में थोडी देर से या कल परसों आना आदि कोई भी स केत वचन कहे, उसे स्वीकार नहीं करना कि तु उसी समय जैसा मिले वह ले लेना (५) यदि गृहस्थ कहे धोकर अच्छा करके दूँगा तो मना कर देना (६) वस्त्र पूरा खोलकर प्रतिलेखन कर देखभाल कर विवेक

विधि से ग्रहण करना (७) स्वय को शरीर की अपेक्षा अनुकूल योग्य एव उपयोगी हो वैसा लेना । गृहस्थ या साधु के आग्रह से अनमन से नहीं लेना (८) वस्त्र लेने के समय से लेकर फटे तब तक स्थिर चित्त से स्वय उसका उपयोग कर सके, वैसा सोच-विचार कर लेना (९) किसी को देना, लेना, फाडना, छोडना आदि वस्त्र निमित्त प्रप च नहीं करना (१०) वस्त्र याचना करने के लिये दो कोष से दूर नहीं जाना ।

प्रश्न–४ : वस्त्रों को धोने या र गने के स ब ध में सूत्राज्ञा का आशय क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में वस्त्र को धोने र गने का निषेध और विधि भी कही है । इनका सूत्राशय और सूत्राज्ञा इस प्रकार समझना चाहिये– जब साधु वस्त्र को ग्रहण करता है तब उसे शक्य और सुलभ स्थिति में ऐसे ही विवेक से वस्त्र लेना चाहिये कि वह वस्त्र ग्रहण करके सीधा उपयोग में लिया जा सके । वस्त्र को लेते ही उसके स ब धी परिकर्म धोना आदि या सीवन आदि न करना पडे ऐसा ध्यान रखकर वस्त्र लेना । इसी कारण जहाँ वस्त्र नया ग्रहण करने का विधान किया जाता है वहीं पर **न धोएज्जा, न रएज्जा** पाठ रहता है अर्थात् जैसा तैसा वस्त्र ले लेना फिर उसे धोना या नील वगैरह लगाकर दाग आदि को नहीं दिखने योग्य बनाना, ऐसी प्रवृत्ति सामान्यतः नहीं करनी पडे, यह विवेक अवश्य रखना चाहिये । यह आशय सूत्रकार का स्पष्ट रूप से और सही रूप से समझने योग्य है । सामान्य और स्थविरकल्पी साधुओं को वस्त्र धोने का सर्वथा निषेध करने का सूत्रकार का आशय नहीं है ।

वस्त्र ग्रहण के बाद के सूत्रों में प्रथम उद्देशक में स्पष्ट कर दिया गया है कि ग्रहण करने के बाद 'मुझे वस्त्र पुराना और अमनोज्ञ ग ध वाला मिला है' ऐसा सोचकर अल्प या अधिक परिमाण में वस्त्र धोना, सुग धित करना आदि प्रवृत्ति नहीं करे । ऐसा निषेध करने के बाद फिर वस्त्र कहाँ नहीं सुखाना, इसकी विधि कही है, जिसका तात्पर्य स्पष्ट है कि पहनने योग्य वस्त्र उपयोग में लेने के बाद कभी भी उन्हें धोना आवश्यक होने पर उसे सुखाना हो तो योग्य स्थलों पर सुखाना, अयोग्य जगह पर नहीं सुखाना ।

निशीथ सूत्र में प्रायश्चित्त विधानों में समस्त प्रकार से वस्त्र धोने मात्र का प्रायश्चित्त नहीं कहकर, विभूषा के लिये वस्त्र आदि

धोने का प्रायश्चित्त कहा है । उससे भी वस्त्र धोने का एका त निषेध नहीं होता है । अत: जो निषेध है वह नये ग्रहण करते समय विवेक से ग्रहण करने की सूचना के आशय से है । सामान्य विधान और वस्त्रधारी साधु के प्रस ग के सूत्र को जिनकल्पी के लिये कह देना भी अप्रास गिक होता है ।

प्रश्न–५ : दूसरे उद्देशक में छल कपट नहीं करने के सूत्र का क्या आशय है ?

उत्तर– साधु स्वार्थ वश कोई भी होशियारी या ठगाई आदि फिजूल की प्रवृत्तियाँ करे नहीं । जो वस्त्र ग्रहण करना अत्यावश्यक हो, गुरु आज्ञा लेकर गवेषणा करके गृहस्थों से प्राप्त करे । सरलता युक्त, कपट रहित मानस एव व्यवहार रखे । यहाँ यह बताया गया कि बडे समूह में विविध प्रकृति के स त हो सकते हक्त । विविध प्रस ग भी बन सकते हक्त । तदनुसार कोई किसी परिस्थिति से किसी से शाल, कम्बल आदि माँगकर लेकर कहीं विहार करे । फिर वापिस आवे तो वस्त्र खराब हो जाने से या उसके जोड लग जाने से पुन: वह साधु लेने से इन्कार कर दे । ऐसी घटनाओं को देखकर कोई मनचला साधु सोचे कि अमुक वस्त्र बहुत अच्छा है, उसे कैसे ही ले लिया जाय । पूर्व श्रुत घटनाओं के आधार से वह सोचे कि उस साधु से कोई बहाना या कारण बनाकर माँग कर लिया जाय फिर कुछ दिन बाद थोडा खराब या सिलाई सा धवाला करके दिया जाय तो वह लेगा नहीं और वह वस्त्र सहज अपना हो जायेगा । यह माया स्थान है, कपट वृत्ति है, धोखा, ठगाई है, ऐसा स कल्प या प्रवृत्ति साधु करे नहीं ।

साथ ही अच्छे वस्त्र को खराब या खराब को अच्छा करने की फिजूल प्रवृत्ति में समय बरबाद करे नहीं । इधर से उधर देना लेना, व्यर्थ की बातें बनाना, प्रप च करना आदि वस्त्र स ब धी कर्मब ध और समय खर्च करना नहीं । स्थिर चित्त से लिये वस्त्र का उपयोग करना और वस्त्र लेते समय ही पूर्ण विचार करके लेना ।

* धर्म क्रियाओं एव तपस्या का आचरण कठिन एव दुर्लभ है कि तु उसके साथ भावों की मलिनता का सर्वथा त्याग होना महा दुष्कर है, जो आराधना के लिये नीता त आवश्यक है ।

छट्ठा अध्ययन : पात्रैषणा

प्रश्न–१ : साधु को किन किन जाति के पात्र रखने की आज्ञा है ?

उत्तर– इस अध्ययन के प्रार भ में साधु-साध्वियों के कल्पनीय पात्र की तीन जातियों का उल्लेख किया गया है यथा– लकडी, मिट्टी और तुम्बा । अन्य शास्त्रों में जहाँ कहीं भी साधु के पात्र का विषय आया है वहाँ ये तीन जाति, स ख्या और नाम के साथ कही गई है ।

अन्यमत के स न्यासी के वर्णन में भी इन तीन जाति के पात्रों का ही उल्लेख मिलता है । तात्पर्य यह है कि गृहत्यागी स न्यास आश्रम के भिक्षुओं के लिये सादगी आदि दृष्टियों से यही योग्य पर परा प्राचीन काल से रही है ।

वर्तमान में समय प्रभाव से प्लास्टिक के पात्र बर्तन आदि, अनेक तर्कों एव सुविधाओं को लेकर साधु समाज में प्रविष्ट हो रहे हक्त, यह समय प्रभाव है । प्लास्टिक के उपकरण आज सहज सुलभ होते हक्त, वजन में हल्के होते हक्त, मूल्य भी अल्प होता है । इनमें फूटना, जोडना, सीना आदि परिकर्म का समय खर्च भी बचता है इत्यादि आगम और स यम के अनेक आशय इसमें पुष्ट होते हक्त ।

तथापि आगमकारों ने स न्यास अवस्था के सादगी के योग्य तीन जाति को ही स्वीकारा है । उनमें विवेक जागृति अधिक रखने का अभ्यास रहता है । उन तीनों जाति के पात्रों में प्राय: गृहस्थ लोग नहीं खाते हक्त । उन तीन जाति से गृहस्थ और साधु के उपकरणों का अलगाव स्पष्ट रहता है । परिग्रह वृत्ति नहीं पनपती है और गृहस्थ उपकरण लोटा गिलास आदि की प्रवृत्ति भी उन तीन जाति में नहीं बढती है । जब कि प्लास्टिक का उपयोग करने पर गृहस्थ योग्य लोटा, गिलास बाल्टी, परात, धामा आदि उपकरण बढते जाते हक्त । इस प्रकार उभय पक्ष का चि तन करते हुए भी आगम आज्ञा तीन जाति के पात्र की अपेक्षा है, यही पहलू बलवान है, इसी में स यम भावों की ज्यादा सुरक्षा है, सुविधावाद तथा जमानावाद से साधक बचा रह सकता है ।

प्रश्न–२ : किन-किन जाति के पात्र रखने का स्पष्ट निषेध है ?

उत्तर– इस अध्ययन में और निशीथ सूत्र उद्देशक ग्यारह में निम्न जाति

के पात्रों का निषेध हक्त– (१) लोहे का पात्र (२) तरुआ= राँगा-कथीर-कली के पात्र (३) ताँबे के पात्र (४) सीसे के पात्र (५) चाँदी के पात्र (६) सोने के पात्र (७) पीतल के पात्र (८) रत्नजडित पात्र (९) मणि के पात्र (१०) काच के पात्र (११) काँस्य पात्र (१२) स ख (१३) सि ग (१४) दाँत (१५) वस्त्र के पात्र (१६) पत्थर के पात्र (१७) चर्म के पात्र (१८) अन्य भी अनेक प्रकार के ऐसे ही पात्र । इस प्रकार यहाँ तीन जाति के अतिरिक्त सभी का इस सूत्र से निषेध है । उन तीनों जाति को यहाँ निषेध के सूत्र में बहुमूल्य में नहीं दिया गया है । उसका तात्पर्य यह है कि वह तीन जाति तो अल्प मूल्य हो या बहुमूल्य, साधुता के लिये सादगी रूप में स्वीकार्य है ।

जब कि वस्त्र के विधान में जिन ५-६ जाति के वस्त्रों को कल्पनीय कहा गया है उन्हीं को बहुमूल्य और निषेध के सूत्रों में भी स्पष्ट उल्लेख के साथ लिया गया है । जिससे स्पष्ट होता है कि सूती, ऊनी आदि वस्त्र भी बहुमूल्य और आकर्षक, वर्णवान हो तो निषिद्ध है। कि तु पात्र में तीन जाति का किसी भी रूप में निषेध नहीं है । उसमें मात्र कोरणी और र ग बिर गे करने का या रखने का निषेध है ।

प्रश्न–३ : क्या साधु को एक वस्त्र और एक पात्र ही रखने का इस सूत्र में विधान है ?

उत्तर– वस्त्रैषणा और पात्रैषणा के अध्ययनों में वस्त्र पात्र की जातियाँ बताकर फिर विशिष्ट कथन(विधान) किया गया है कि जो समर्थ युवान निरोग साधु हों, वह इनमें से कोई भी एक जाति के वस्त्र-पात्र ही रखे, दो जाति के एक साथ नहीं रखे । यहाँ वस्त्र-पात्र की जातियों, प्रकारों के प्रस ग से जो कथन है, उसे जाति की अपेक्षा ही समझना उचित्त एव शास्त्र सम्मत है । क्यों कि यदि समर्थ युवान निरोग साधुओं को स ख्या से एक पात्र का विधान होता है तो गौतम स्वामी आदि चरम शरीरी समर्थ साधुओं को भी एक पात्र का नियम हो जाता है । जब कि भगवती सूत्र आदि में गौतम स्वामी के भी अनेक पात्र होने का उल्लेख है । अतः प्रास गिक एक जाति के वस्त्र या पात्र ऐसा ही अर्थ करना चाहिये । जिससे समस्त समर्थ साधुओं को यह ध्यान रखना चाहिये कि वे एक जाति के वस्त्रों से निर्वाह करे, और एक जाति के पात्रों से निर्वाह करे अर्थात् सूती वस्त्र रखे तो उन्हीं से

निर्वाह करे, ऊनी नहीं रखे । लकडी के पात्र रखे तो उन्हीं से निर्वाह करे, मिट्टी के नहीं रखे ।

स ख्या से एक पात्र के अर्थ की कल्पना या पर परा मनघड त और सूत्राशय से विपरीत है । यहाँ ऊणोदरी करने वाले साधक या विशिष्ट साधना करने वाले साधक उपकरण कम करे, एक ही वस्त्र-पात्र रखे या नहीं रखे तो भी आगम सम्मत है । कि तु वैधानिक एक वस्त्र-पात्र के नियम की कल्पना करना ठीक नहीं है ।

प्रश्न–४ : गवेषणा और विवेक रखते हुए भूल से सचित्त पानी आ जाय तो क्या करना ?

उत्तर– उसी समय पात्र में लेते ही मालूम पड जाय तो पुनः उसी सचित्त जल में या जल वाले पात्र में दे दिया जाता है । कुछ दूर जाने पर ध्यान में आवे तो भी स भव हो तो उसी घर के उस बर्तन में दे दिया जाता है । स भव न हो या गृहस्थ न ले अथवा गुरु आज्ञा किसी कारण से न हो तो अन्यत्र ले जाकर पात्र सहित पानी परठा दिया जाता है । पात्र परठना स भव न हो तो सस्निग्ध अर्थात् गीली भूमि में पानी परठ दिया जाता है । गीली भूमि न मिले तो अन्य किसी जल में परठ दिया जाता है और अ त में अर्थात् अन्य कोई उपाय न हो तो योग्य स्थ डिल भूमि में परठ दिया जाता है । सर्वत्र अप्काय की विराधना का प्रायश्चित्त तो आता ही है । हीनाधिक विराधना के कारण कुछ प्रायश्चित्त में हानि-वृद्धि हो जाती है । क्रमिक विवेक से निर्णय करके परठा जाता है कि तु उपयोग में नहीं लिया जाता । यह वर्णन इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक में आता है ।

प्रश्न–५ : वस्त्र पात्र की चार-चार प्रतिमाएँ कौन सी है ?

उत्तर– वस्त्र पात्र ग्रहण करने के चार प्रकार के अभिग्रह(स कल्पों) को यहाँ प्रतिमा शब्द से कहा है, यथा– (१) कोई भी जाति का स कल्प निश्चित्त कर लेना, फिर उसी जाति का मिले तो लेना, अन्यथा पुराने या फूटे जैसे भी हो उन्हीं से निर्वाह करना (२) जिस जाति का वस्त्र-पात्र सामने दिखे, दृष्टिगोचर हो, गृहस्थ दिखाकर निम त्रण करे तो वह सामने दिखने वाला आगम सम्मत वस्त्र-पात्र लेना (३) गृहस्थ के उपयोग में स्वाभाविक रूप से आ चुके हों, ऐसे कोई भी आगम सम्मत वस्त्र-पात्र लेना (४) गृहस्थ के उपयोग में आकर उच्छिष्ट से

हो गये हक्त, उपयोग में लेने से अलग कर दिये हक्त, दिखने में अमनोज्ञ से हक्त, फिर भी लज्जा निवारण या उपयोग में आने के योग्य है, वैसे वस्त्र-पात्र ग्रहण करना ।

सातवाँ अध्ययन : अवग्रह

प्रश्न–१ : क्या सहवर्ती साधुओं की कोई वस्तु लेने से भी अदत्त दोष लगता हक्त ?

उत्तर– इस सातवें अध्ययन का नाम 'अवग्रह' है जिसका प्रास गिक अर्थ है– आज्ञा लेना । यह अवग्रह पाँच प्रकार का बताया गया है यथा– (१) देवेन्द्र का अवग्रह=सामान्य वस्तु रेत, पत्थर, तृण, मार्ग, स्थ डिल भूमि आदि के लिये शक्रेन्द्र की आज्ञा लेना (२) राजा का (३) गृहस्थ का (४) शैय्यातर का अवग्रह अर्थात् मकान में रही वस्तु की आज्ञा (५) साधर्मिक का(साथ रहने वाले श्रमण या आग तुक श्रमण साथ मिल जाने पर उनकी वस्तु उपकरण लेने का अवग्रह ।) ये पाँच प्रकार की आज्ञा यथा समय लेने का स केत दूसरे उद्देशक के अ त में है । प्रथम उद्देशक के प्रार भ में बताया है कि भिक्षु जिनके पास दीक्षित हुआ है, जिन साधुओं के साथ वह रहता है, उनके कोई भी अतिरिक्त उपकरण की विशिष्ट आज्ञा लेकर के फिर ही उस वस्तु को ग्रहण कर सकता है अर्थात् जो वस्त्र पात्र सामुहिक रूप में उपयोग में लिये जाते हक्त उन्हें छोडकर किसी भी साधु की किसी भी चीज को हाथ भी लगाना हो, उठाकर देखना हो या उपयोग में लेना हो तो अलग से स्पष्ट आज्ञा लेनी चाहिये । इस प्रकार अदत्त त्याग का महत्व इस अध्ययन के प्रार भ में बताया गया है ।

व्यवहार प्रवृत्ति में कई साधु या साध्वी जो साथ में विचरण करते हक्त, वे अपने सि घाडे के समस्त साधुओं से सदा उपयोग में आनेवाले उपकरणों की उपयोग में लेने की या स्पर्श करने आदि की आज्ञा ले लेते हक्त और दे देते हक्त । इस प्रकार सभी को समुच्चय रूप में आज्ञा दे देनी चाहिये और ले लेनी चाहिये । उसके अतिरिक्त जो विशिष्ट उपकरण बाँध कर रखे जाते हक्त या और भी किसी तरह रखे जाते हक्त

तो उनके लिये पुन: जब काम हो तब आज्ञा लेने का विवेक रखना चाहिये । यह साधु के सूक्ष्म अदत्त त्याग का विवेक है । अन्यथा कभी किसी साधु को कषाय का या क्लेश अशा ति का कारण भी बन सकता है ।

प्रश्न–२ : साधु को छत्र चर्म कब रखना कल्पता है ?

उत्तर– इस अध्ययन में आज्ञा लेने के साधु के उपकरणों में से अनेक के नाम गिनाये हक्त । अन्यत्र व्यवहार सूत्र में भी वृद्ध साधु के वर्णन प्रस ग में ऐसे उपकरणों के नाम हक्त तथा अन्य मतावलम्बी साधुओं के प्रकरण में भी ऐसे उपकरणों के नाम इसी श्रुतस्क ध के दूसरे अध्ययन के तीसरे उद्देशक में कहे हक्त ।

शारीरिक परिस्थितियों से स्थविरकल्पी भिक्षु को कब किस परिस्थिति में कौन से उपकरण रखकर शरीर एव स यम जीवन को पार पहुँचाना पड सकता है, यह ग भीर विचारणा एव चि तन का विषय है अर्थात् ऐसी परिस्थितियों को पार करने के लिये कोई एका तिक आग्रह सदा के लिये रहे, यह नहीं हो सकता । ऐसी ही अपेक्षा से सूत्रों में अनेक विषय प्रस गोपात आते हक्त जैसे कि नौकाविहार आदि ।

उन सभी सूत्रों का, सूत्रगत विषयों का स ब ध परिस्थिति पर और व्यक्ति पर तथा ज्ञानी गीतार्थ बहुश्रुत गुरु की आज्ञा पर निर्भर रहता है । राजमार्ग, विधिमार्ग या ध्रुवमार्ग तो वही रहता है जो, स्पष्ट रूप से शास्त्र में आचरणीय या अनाचरणीय बताया गया है ।

शास्त्र में छत्र धारण को दशवैकालिक, सूयगडा ग सूत्र आदि अनेक सूत्रों में अनाचरणीय बताया है । अत: छत्र रखना साध्वाचार में विहित नहीं है, यही प्ररूपणा करने और स्वीकारने योग्य है । अपवाद परिस्थितियों के कोई भी प्रस ग, प्ररूपणा और प्रचार के योग्य नहीं होते हक्त । छत्र के समान चर्म आदि कोई भी उपकरण अकारण अपरिग्रही भिक्षु को रखना विधि नहीं है । साधु को सामान्यतया वस्त्र-पात्र आदि १४ उपकरण रखना ही राजमार्ग है । उसके अतिरिक्त जब जितने समय तक जिस उपकरण को रखना अत्य त जरूरी ही हो और साथ में गुरु आज्ञा हो तभी वह आवश्यक परिस्थिति तक उस उपकरण को रख सकता है । कि तु प्रवाह या अनुकरण मात्र से देखा देखी या मनमाने कोई भी उपकरण नहीं रखा जा सकता । जब कभी

जिसकी जरूरत होने से जो उपकरण रखा हो, जरूरत समाप्त होते ही उसे छोड देना आवश्यक होता है । उसे सदा के लिये मनमाना रखना या दूसरे ने रखा तो में भी रखूँ, ऐसे अनावश्यक रखने वाले वास्तव में जिनाज्ञा के चोर माने गये हक्त । क्यों कि साधु सूक्ष्म अदत्त का भी त्यागी होता है और प्रभु आज्ञा या शास्त्र आज्ञा का उल्ल घन कर उपकरण रखना, गुरु आज्ञा बिना उपकरण रखना, बढाना, ये अदत्त महाव्रत के दोष हक्त । दशवैकालक सूत्र और प्रश्नव्याकरण सूत्र में ऐसे साधुओं के लिये चोर सूचक शब्दों का प्रयोग किया गया है यथा– तपचोर, रूपचोर (साधुलि ग उपकरण स ब धी), व्रतचोर, आचारभावचोर(समस्त छोटे-मोटे विधान की अपेक्षा) ।

प्रश्न–३ : क्या अन्य स प्रदाय के साधु के साथ एक पाट पर बैठा जा सकता है ?

उत्तर– इस अध्ययन में कहा गया है कि साधु जहाँ पर है, वहाँ कोई आग तुक साधु जो अपने सा भोगिक, एक मा डलिक आहार स ब ध वाले पधारें तो उन्हें स्वय के आहार पानी में से निम त्रण करके देवे । यदि अन्य सा भोगिक समनोज्ञ=शुद्ध व्यवहार वाले साधर्मिक साधु आ जाय, जिनके साथ एक मा डलिक आहार स ब ध नहीं है तो उन्हें अपने ग्रहण किए मकान स्थान, पाट, पाटला, स थारा, घास आदि का निम त्रण करे, देवे ।

अपना ही आहार पानी देने का तात्पर्य जैसे एक साथ बैठकर खाना स्पष्ट है, वैसे ही अपना ही मकान, पाट देने से मकान में साथ रहना और पाट आदि में साथ बैठना स्पष्ट है ।

इससे स्पष्ट है कि लि ग और प्ररूपण में जो समान है एव आचार में व्यवहारोचित है, समाज में प्रतिष्ठित है, जिन्हें प्रस गोपात सम्मान दिया जाता है, आदर दिया जाता है, व दन व्यवहार भी रखा जा सकता है, अपने मकान में सम्मान के साथ ठहराया जा सकता है, एक साथ चातुर्मास भी किया जा सकता है, साथ में बैठकर प्रवचन भी दिया जा सकता है, ऐसे स्वलि गी साधुओं के साथ पाट आदि का परहेज करना, अलग-अलग पाट का आग्रह रखना, आगम से उपयुक्त नहीं है, व्यक्ति समझ भ्रम हो सकता है । एक लि ग व्यवहार वाले एक क्षेत्र में ससम्मान विचरण करने वाले, साधुओं से पाट का परहेज

नहीं करना ही शास्त्र स गत है । उन्हें ससम्मान अपने मकान में ठहराना एव अपने पाट आदि का निम त्रण करके उनके साथ बैठना आगम के इस पाठ से स्पष्ट होता है । उन्हें अपना पाट देना और खुद अलग पाट पर बैठना, उस अपने दिए पाट पर नहीं बैठना, ऐसा तो इस सूत्र का अर्थ नहीं होता है और अपना ठहरा मकान उन्हे निम त्रण करना, देना और खुद उस में नहीं बैठना, नहीं रहना ऐसा भी अर्थ नहीं हो सकता है ।

अत: जो कोई भी आगम के नाम से ऐसे साधर्मिक अन्य सा भोगिक साधुओं के साथ पाट व्यवहार का परहेज करते हक्त अर्थात् उन्हें अपना पाट निम त्रण पूर्वक देकर फिर उन से अलग पाट पर बैठते हक्त उन्हें इस शास्त्र पाठ पर विचार करना चाहिये और समाज में विवेक के साथ रहना चाहिये । इस अपेक्षा गुजरात प्रा त के साधुओं का विवेक प्रश सनीय है । वहाँ ९–१० जितने भी स प्रदायों के साधु विचरण करते हक्त, भले उनका आहार पानी का स ब ध न भी है कि तु पाट का परहेज वे कोई भी किसी से नहीं करते हक्त । गुजरात की प्रचलित परम्परा इस अध्ययन के पाठ से पुष्ट है, सही है, अनुकरणीय है । अन्य प्रा त वालों को ऐसी शास्त्रानुकूल पर परा का अनुकरण करना चाहिये । कि तु गुजरात में जाकर भी ऐसी पाट स ब धी छुआछूत प्रवृत्ति का प्रचार करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये । सार यह है कि स्थानकवासी प्रतिष्ठित समस्त गच्छवाले साधुओं को आपस में पाट का परहेज–अलगाव नहीं रखना चाहिये ।

प्रश्न–४ : सूई केंची आदि कैसे लेना या कैसे लौटाना चाहिये ?

उत्तर– सर्वत्र सुलभ सूई, केंची आदि उपकरण सामान्य रूप से साधु-साध्वी अपने पास में नहीं रखते हक्त । वे जरूरत होने पर गृहस्थ के घर से याचना करके लाते हक्त, यही सामान्य राजमार्ग है । इसलिये इस अध्ययन में बताया गया है कि जो साधु अपने लिये गृहस्थ के उपकरण लाया हो या गृहस्थ ने उस एक साधु की अपेक्षा दिये हों तो गृहस्थ की आज्ञा स्वीकृती बिना अन्य को नहीं देना, स भालकर रखना और लौटाने भी स्वय जाना । देते समय यह विवेक रखना कि ऐसे तीक्ष्ण उपकरण अपने हाथ से गृहस्थ के हाथ में देना नहीं कि तु भूमि पर रखकर या अपनी हथेली में रखकर कहे कि यह आपका उपकरण सूई आदि ले लीजिये । इस प्रकार विधि विवेक के पीछे आशय

यह है कि उपकरण सुरक्षित रहे, साधु को अदत्त न लगे, गृहस्थ के भावों में विकृति, अश्रद्धा न होवे ।

प्रश्न–५ : किन स्थानों की साधु को आज्ञा नहीं लेना, ग्रहण नहीं करना, उपयोग नहीं करना ?

उत्तर– (१) स्त भ, ऊखल आदि कम चौडे ऊँचे स्थान (२) पतली या चौडी दिवाल अर्थात् २–३ इ च चौडी या एक फूट चौडी ऐसी दिवालों पर (३) खुल्ला आकाश चौतरफ हो ऐसे मकान के ऊपरी विभाग, छत वगैरह (४) सचित्त पृथ्वी पर या उसके आस पास में, पानी से स्निग्ध भूमि, सचित्त शिला-पत्थर आदि पर (५) जीव युक्त सडेगले काष्ट पर (६) गृहस्थ, पशु स युक्त मकान या मकान का मार्ग गृहस्थ अथवा सामग्रियों से स युक्त हो (७) अनेक चित्रों एव कोरणी कार्यों से आकर्षक एव दर्शनीय पदार्थों से स युक्त मकान हो इत्यादि स्थानों में रहना या बैठना नहीं तथा ऐसे स्थानों की आज्ञा भी नहीं लेना, उन्हें ग्रहण नहीं करना ।

प्रश्न–६ : वन उपवन में ठहर कर क्या साधु वहाँ आम, इक्षु आदि को ग्रहण कर सकता है ?

उत्तर– इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक में कुछ पदार्थों के वन उपवनों में ठहरने का कथन किया गया है और विहार आदि कारणों से कभी किसी भी साधु-साध्वी को उन पदार्थों के खाने की आवश्यकता या इच्छा हो और वहाँ पर कोई भी अचित्त होने की प्रक्रियाएँ की जाने वाली शालाएँ आदि हो, जहाँ उन पदार्थों को उबाला, काटा जाता हो, रस या अर्क निकाला जाता हो, साधु की स यम विधि से मिल सकता हो तो एषणा नियमों का पालन करते हुए उन पदार्थों को या उनके टुकडे आदि विभागों को अथवा रस-अर्क को लिया जा सकता है, उपयोग किया जा सकता है । उदाहरण रूप में सूत्र में गन्ना, आम और लहसुन तीन स्थलों और पदार्थों का जिक्र किया गया है । तात्पर्यार्थ से अन्य भी फल वनस्पति के प्रकरण को समझा जा सकता है ।

साधु जहाँ जिसकी आज्ञा से ठहरा हो उस शय्यातर का वर्जन करना आवश्यक होता है उसके अतिरिक्त अन्य आस पास के स्थलों उपवनों में से ये पदार्थ ग्रहण करना समझना चाहिये । यहाँ लहसुन स ब धी सात सूत्र जो हक्त, उस पर ऊहापोह–चर्चा का प्रस ग

उत्पन्न होता है कि तु आगमों में गोचरी के लिये वनस्पति स ब धी खाद्य पदार्थों के विषय में कोई एका तिक नियम नहीं है । सचित्त त्याग का नियम आवश्यक है, ऐसा समझना चाहिये । क्षेत्र काल के अनुसार ऐसे पदार्थों के गृहस्थ प्रचलन के अनुसार प्रस ग बनते हक्त । यथा– गुजरात प्रा त में इस युग में अदरक और हल्दी(कच्ची) उबली हुई या बिना उबली(नींबू के रस युक्त) आमतौर से जैन गृहस्थों में उपयोग की जाती है और साधु-साध्वी भी प्राय: उपयोग में लेते हक्त । जब कि आलू, प्याज, लहसुन या अदरक, हल्दी आदि सभी पदार्थ जमीक द में और अन तकाय में तो है ही । आगम शास्त्रों में इन सब के नाम एक साथ आते हक्त । इनका कम ज्यादा महत्व आगम से नहीं है कि तु क्षेत्रकाल आदि की अपेक्षा से होता है जैसे कि गुजरात में अदरक हल्दी का कोई ऊहापोह नहीं है । वैसे ही प्रा त, क्षेत्र, काल विशेष से अचित्त वनस्पति के खाद्य पदार्थों का प्रस ग साधु के लिये स भव रहता है अस भव नहीं होता है ।

किसी भी खाद्य पदार्थ का किसी भी व्यक्ति या समुदाय के लिये त्याग करना श्रेष्ठ है कि तु उसका आगम निरपेक्ष मनमाने या एका तिक प्ररूपण करना अपराध है और फिर कुतर्क करना कि– अचित्त तो मा स आदि भी मिल सकता है, यह सर्वथा अविवेक और कुतर्क है । क्यों कि मा स का आगमों में एका त निषेध है, नरक का कारण बताया है, वनस्पति पदार्थों के लिये उसकी समानता नहीं की जा सकती है । शास्त्रों का अध्ययन नहीं करने से ऐसे एका तिक, दुराग्रह, परम्पराएँ, प्ररूपणाएँ एव कुतर्क आदि असमन्वय के मानस से पैदा होते हक्त ।

सार यह है कि त्याग मार्ग श्रेष्ठ है उसका प्रचार भी श्रेष्ठ है, कि तु आगम विपरीत प्ररूपण या दुराग्रह त्याज्य है अर्थात् कल्पनीय और शास्त्र सम्मत पदार्थों का भी त्याग की भावनाओं से त्याग करने की प्रेरणा विवेक के साथ की जा सकती है । कोई भी गच्छ-समाचारी में अनेकानेक त्याग के नियम कायदे भी बनाये जा सकते हक्त कि तु उसका प्ररूपण-कथन का तरीका आगम विपरीत नहीं होना चाहिये और जो ऐसे त्याग नहीं करने वाले हों उन पर असत्याक्षेप नहीं होने चाहिये ।

किसी भी त्याग के महत्व को समझाने में अनेक तरीके हो सकते हक्त । उनमें से जो आगम विपरीत तरीका न हो ऐसे श्रेष्ठ विविध उपायों, तरीकों से अपना आशय समझाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

लहसुन स ब धी सात सूत्रों का अर्थ मूर्तिपूजक प्राचीन आचार्य भी यही करते हक्त कि तु उनके समुदाय में आगम पढते ही कम है। मूर्तिपूजकों के ग्र थ 'सेन प्रश्न' में भी लहसुन ग्रहण करना अर्थ स्वीकार किया है। फिर भी कुछ अविवेक भाषी क दमूल को मा स तुल्य कह देते हक्त ।

इक्षु के ऊपर से कठोर छिलके उतारने के बाद भी वह कुछ उज्झित धर्म वाला रहता है अर्थात् खाने के बाद कुछ थूँकना, फेंकना पडता है कि तु उसका एका तिक निषेध नहीं है, ऐसा इन विधिनिषेध सूत्रों पर से स्पष्ट होता है ।

प्रश्न–७ : इस अध्ययन में सात अवग्रह प्रतिमा कौन सी कही है ?

उत्तर– आज्ञा लेने स ब धी अर्थात् स्थान, मकान ग्रहण करने स ब धी सात अभिग्रह नियमों को सात पडिमा कहा गया है, वे इस प्रकार है– **(१)** सभी अपेक्षा से योग्य, शास्त्र सम्मत मकान, शास्त्रोक्त विधि का पूर्ण पालन करते हुए ग्रहण करूँगा, उसमें कोई भी दोष या अपवाद का सेवन या प्रायश्चित्त स्थान का सेवन नहीं करूँगा। इस अभिग्रह को नहीं करने वाले श्रमण कभी किसी परिस्थिति से मकान स ब धी अपवाद सेवन एव प्रायश्चित्त ग्रहण कर लेते हक्त। **(२–५)** इन अभिग्रहों में चौभ गी दी गई है जिसमें स्वय के लिये या अन्य भिक्षुओं के लिये भी स्थान की याचना करने या नहीं करने स ब धी विषय लिया गया है तथा उपयोग में लेने नहीं लेने का स कल्प है यथा– **२.** अपने लिये और दूसरों के लिये, दोनों के लिये स्थान की याचना करूँगा और उपयोग में लूँगा **३.** मक्त दूसरों के लिये भी ग्रहण करूँगा कि तु दूसरों के ग्रहण किये स्थान का उपयोग नहीं करूँगा **४.** दूसरों के लिये ग्रहण नहीं करूँगा कि तु, दूसरों के ग्रहित स्थान का उपयोग करूँगा **५.** अन्य के लिये स्थान की याचना भी नहीं करूँगा और अन्य के याचित्त का उपयोग भी नहीं करूँगा । केवल अकेले के लिये ग्रहण करूँगा **(६)** ठहरने के स्थान में ही अर्थात् उसी मकान में ही जो योग्य घास पाट मिलेगा वह ग्रहण करूँगा, अन्यत्र से नहीं लाऊँगा **(७)** मकान में भी जहाँ घास पाट जिस तरह बिछा रखा है, उसकी वहीं प्रतिलेखना कर उपयोग में लूँगा कि तु उसे स्थाना तरित नहीं करूँगा, मकान में कहीं भी उठाकर नहीं ले जाऊँगा ।

इन प्रतिमाओं के अभिग्रह में स्वय पर नियत्रण है ऐसा समझना

चाहिये अर्थात् पाँचवी प्रतिमा वाला कहीं ठहरा हुआ है वहाँ कोई साधु आवे और जगह की अनुकूलता देखकर अपने लिये आज्ञा लेकर ठहरे तो उसे मना नहीं किया जाता । अव्यवहारिकता या परनिय त्रण वृत्ति नहीं की जाती ।

विशिष्ट निर्जरा और वृत्तिस क्षेप के लिये अभिग्रह गुरु आज्ञा और अपनी योग्यता, क्षमता अनुसार, विवेक के साथ, अकषाय भावना से किये जाते हक्त । अकेले रहकर भी किये जा सकते हक्त ।

अध्ययन : आठ से चौदह

प्रश्न–१ : इन अध्ययनों को द्वितीय चूलिका क्यों कहा जाता है ?

उत्तर– आगम के अवशेष विषय को या परिशेष विषय को कहने वाले, नूतन परिशिष्ट रूप विभाग को चूडा या चूलिका नाम दिया जाता है या वह प्रकरण चूलिका(चूडा) कहा जाता है । यथा– दशवैकालिक में दस अध्ययन रूप आचार विषयों के बाद दो नये उत्तम उपयोगी शिक्षा विषयों को कहने वाले नये विभाग रूप दो अध्ययनों को दो चूलिका कहा गया है। जो वास्तविक घटित होता है। जब कि आचारा ग सूत्र स्वय दो श्रुतस्क ध रूप है । अतः उस दो श्रुतस्क ध आचारा ग के पूर्ण होने के बाद अन्य नये विषय को कहने वाले कोई प्रकरण होते तो उन्हें चूलिका कहा जा सकता था । कि तु सूत्र के मौलिक विभाग रूप दूसरे श्रुतस्क ध को ही चूलिका कह देना बराबर नहीं है । चूलिका तो सूत्र के दो विभाग रूप दो श्रुतस्क धों से अलग होनी चाहिये ।

यदि श्रुतस्क ध को ही पा च चूलिका और पा च चूलिका को ही द्वितीय श्रुतस्क ध कह दिया जायेगा तो प्रथम श्रुतस्क ध भी एक चूलिका या अनेक चूलिका हो सकेगा, कि तु ऐसा करना या कहना ठीक नहीं है । अतः वास्तव में अध्ययनों के समूह रूप दो श्रुतस्क ध आचारा ग सूत्र के हक्त, ऐसा ही समझना ठीक है । चूलिका के कथन निशीथ सूत्र की आचारा ग से अलग रचना के बाद कभी भी प्रचलित हुए होंगे, जिनका प्रभाव सूत्रों के मूल पाठ पर भी हुआ है ।

आचारा ग द्वितीय श्रुतस्क ध से प्रायश्चित्त विभाग रूप निशीथ सूत्र (प च अध्ययनात्मक) जब अलग किया गया उसकी जगह दूसरे सूत्र के दो अध्ययन लाकर रखे गये, इत्यादि कारणों प्रस गो से कभी दो चूलिका और आगे बढकर कभी पाँच चूलिका यों पूरा श्रुतस्क ध ही चूलिका-भ डार बना दिया गया, कह दिया गया, मौखिक और लिखित प्रचार होता गया है ।

अत: स क्षेप में समझना यही है कि द्वितीय श्रुतस्क ध के सभी अध्ययन आचारा ग के श्रुतस्क ध रूप विभाग है । विकृत परम्पराओं एव अन्यान्य कारणों, स योगों से ये चूलिका रूप कहे जाने लगे हैं । उसी कारण से समवाया ग सूत्र में भी चूलका का कथन प्रवेश पाया है ।

प्रश्न–२ : 'स्थान' नामक आठवें अध्ययन का हार्द क्या है ?

उत्तर– खडे रहने की प्रतिज्ञा वाले विशिष्ट साधक का यह प्रकरण है । साधक को अपने खडे रहने के लिये मकान या कोई स्थान ग्रहण करना होता है । अत: प्रार भ में स्थान की गवेषणा स ब धी विषय का कथन किया है, जो शय्या अध्ययन में पहले कहा जा चुका है । विस्तृत पाठ की अपेक्षा से इस **स्थान** अध्ययन में और आगे के **निषद्या** अध्ययन में मकान की गवेषणा के उन १४ सूत्रों का पुनरुच्चारण किया गया है । इसके बाद साधक के खडे रहने के चार प्रकार के अभिग्रह कहे हैं । यथा– **(१)** किसी अचित्त कल्प्य स्थान में खडे रहूँगा, कभी अवल बन भी लूँगा । हाथ-पाँव को हिला सकूँगा और मर्यादित कमरा आदि क्षेत्र में स चरण भी करूँगा । यह पहली प्रतिमा अभिग्रह का स्वरूप है । **(२)** दूसरी में स चरण ब द कर दिया जाता है । **(३)** तीसरी प्रतिमा में हाथ-पाँव हिलाना ब द कर दिया जाता है । **(४)** चौथी प्रतिज्ञा में अवलम्बन–दिवाल आदि का सहारा भी नहीं लिया जाता है ।

चारों प्रकार से प्रतिमा धारण करने वाला काया के व्युत्सर्ग का अभ्यासक्रम आगे बढाता है और कायक्लेश तप के साथ ध्यान और व्युत्सर्ग तप भी करता है । यह साधक खडे रहने की साधना आजीवन या सीमित समय के लिये कर सकता है । यदि लम्बे समय के लिये हो तो उसमें आहार निहार आदि में बैठना स भव होगा, उसके अतिरिक्त वह खडा ही रहता है । अथवा प्रतिदिन भी मर्यादित समय या रात्रि भर खडे रहना, इस प्रकार का अभिग्रह कर सकता है । मूल पाठ में

इन प्रतिमाओं के समय के स ब ध में कुछ भी नहीं कहा गया है । अधिकतम या पूर्णतया खडे रहना ही इस प्रतिमा का ध्येय है । सोना या बैठना पूर्णत: या अधिकतम त्याग ही होता है ।

प्रश्न–३ : नौवें निषद्या अध्ययन में क्या विशेषता है ?

उत्तर– निषद्या का अर्थ बैठना भी है, स्वाध्याय करने के लिये बैठना, रहना भी है अथवा भय जनक, शून्य स्थान स्मशान आदि में रहना भी है । अलग-अलग प्रस ग से शास्त्र में इस शब्द का प्रयोग किया गया है । इस अध्ययन में ऐसे विशिष्ट साधकों की चर्चा का कथन है कि– जो बैठने का अभिग्रह करते हैं, वे खडे भी रह सकते हैं कि तु सोने का त्याग इनको भी आवश्यक होता है ।

स्थान की गवेषणा और चार अभिग्रह पूर्व के अध्ययन के समान इसमें भी है । सीमित भूमि कमरा आदि में ये स्थान परिवर्तन करके बैठ सकते हैं प्रथम प्रतिमा में । आगे की प्रतिमा पूर्व अध्ययन के समान समझें । चौथी प्रतिमा वाला बिना सहारे स्थिरता से कायोत्सर्ग मुद्रा में बैठेगा । इनकी भी समय मर्यादा आगम में स्पष्ट नहीं होने से पूर्व अध्ययन में समझाये अनुसार वैकल्पिक समझ लेना चाहिए ।

खडे रहने से विकार भावों की स्वत: निर्मूलता होती जाती है कि तु बैठने में विकार भावों की, कुतूहल भावों की स भावना रह सकती है । अत: निषद्या अभिग्रह के साधक स्वाध्याय या ध्यान अथवा व्युत्सर्ग के लिये कहीं किसी स्थान में अनेक साधु(२–३–४ आदि) भी इकट्ठे हो जाय तो एका त होने पर भी वे आपस में किसी भी प्रकार की आलि गन, चुम्बन, स्पर्शन आदि काया की विकृत चेष्टाएँ, विकारों को जागृत या पुष्ट करने वाली चेष्टाएँ, आपस में न करे अर्थात् परस्पर स्पर्श मात्र का भी त्याग रखे । यही इस अध्ययन में कुतूहल की युवा उम्र की अपेक्षा विशेष सूचना की गई है ।

प्रश्न–४ : साधु को किन स्थानों में मल-मूत्र त्यागने के लिये नहीं जाना चाहिये, नहीं परठना चाहिये ? वे अकल्पनीय स्थान कौन से है ?

उत्तर– जहाँ पृथ्वीकाय आदि छकाय में से किसी भी त्रस स्थावर जीवों की विराधना हो और कोई भी मनुष्यों को पीडाकारी हो, अव्यवहारिकता हो, लोगों को अप्रतीति–द्वेष उत्पन्न हो, ऐसे कोई

भी स्थानों में साधु को शौच निवृत्ति के लिये, उच्चार-पासवण व्युत्सर्जन के लिये नहीं जाना चाहिये, नहीं बैठना चाहिये । ऐसे अनेक स्थानों के नाम इस अध्ययन में अलग-अलग सूत्रों से विस्तारपूर्वक बताये गये हक्त ।

जहाँ पर अनेक गृहस्थ, सज्जन लोग शौचनिवृत्ति के लिये जाते हों, जो स्थान शौच निवृत्ति के लिये किसी के द्वारा निषिद्ध न हो या उस स्थान के मालिक की साधु को शौच निवृत्ति के लिये आज्ञा हो और वह स्थान जीव विराधना वाला न हो, ऐसे स्थान में स यम विधियों का पालन करते हुए साधु शौच निवृत्ति के लिये जा सकता है, परठ सकता है ।

प्रश्न–५ : मल–मूत्र विसर्जन की या परठने की साधु की क्या विधि बताई है ?

उत्तर– यदि योग्य दूरी पर अचित्त जगह शौच निवृत्ति के लिये उपलब्ध हो और शारीरिक बाधा का उद्वेग मर्यादित हो तो श्रमण वहाँ जा सकता है । जाने के पूर्व उसे अपने साथ में जीर्ण वस्त्रख ड ले जाना आवश्यक होता है । यदि जीर्ण वस्त्रख ड उसके पास न हो तो साथी श्रमण से याचना करके ले जावे । जिसका उपयोग शौच निवृत्ति के बाद अ ग शुद्धि के लिये, जल शुद्धि के पूर्व किया जाता है । जिससे अल्प जल से अ ग शुद्धि हो सके ।

जहाँ पर सूर्य का ताप दिन में कभी भी आता हो ऐसे स्थान में बैठे । लोगों का आवागमन या दृष्टि स चार न हो ऐसे स्थान में बैठे । किसी प्रकार की जीव विराधना अर्थात् हरी घास या त्रस जीव, कीडी आदि की विराधना न हो, यह विवेक रखे ।

यदि जहाँ पर बाहर जाने जैसी योग्य जगह उपलब्ध न हो या शारीरिक बाधा अत्य त वेग पूर्वक हो तो साधु अपने ठहरे हुए स्थान आवागमन न हो ऐसी जगह में जाकर, अपने पात्र आदि में मल विसर्जन करके फिर उसको विवेक पूर्वक ले जाकर, योग्य स्थान में सूत्रोक्त विधि-निषेधों का ध्यान रखकर परठ दे ।

इस अध्ययन से एव निशीथ सूत्र से तथा अन्य आगम वर्णनों से; ये दोनों प्रकार की विधियाँ साधु के मल विसर्जन के लिये स्पष्ट होती है । दोनों विधियों को गुरु सानिध्य से भलीभाँति समझ लेने पर एव खुद के विवेक निर्णय की क्षमता होने पर, साधु को मल विसर्जन

में किसी क्षेत्र में दुविधा जैसी स्थिति नहीं रह सकती । यदि किसी क्षेत्र में दोनों प्रकार की विधिओं से भी योग्य परिष्ठापन स भव न हो तो वहाँ पर साधु को ठहरना नहीं कल्पता है । फिर किसी भी लाभ के आग्रह से ऐसे स्थानों में जाना या रहना साधु के लिये उचित नहीं है, सर्वथा वर्जित है ।

कारण यह है कि ऐसे स्थानों में जाने या रहने की प्रवृत्ति करने पर फिर अनेक सावद्य और आगम विपरीत आचरणों को करने की प्रेरणा मिलती है और भावना जगती है । फिर स यम का मुख्य लक्ष्य और अनुकम्पाभाव और छ काय रक्षण के आचार का धीरे-धीरे विनाश होता है । अत: योग्य क्षेत्रों में परिष्ठापन भूमि से स पन्न स्थानों में ही ठहरने, रहने का स यम साधक को विवेक रखना चाहये ।

प्रश्न–६ : उच्चार पासवण नामक इस अध्ययन में कठिन शब्द और उनके अर्थ क्या है ?

उत्तर– उब्बाहिज्जमाणे= बाधा होने पर । **पायपु छणस्स असईए**= वस्त्र खण्ड के न होने पर । यहाँ पात्र और रजोहरण अर्थ किया जाता है कि तु पाँव पोंछने का वस्त्र ख ड और उपलक्षण से किसी भी अ ग को पोंछने का वस्त्र ख ड अर्थ विशेष उपयुक्त है । पात्र के लिये पादप्रोंछन शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता । अ तिम सूत्र में स्वपात्र और परपात्र शब्द प्रयोग है और रजोहरण सदा साथ ही रहता है, नहीं होने का प्रस ग विरुद्ध पडता है । **किरियाए**=बाधा से, क्रिया से, प्रक्रिया से । **क्य** =खरीदी हो । **परिसाड ति**=डालते हक्त, रखते हक्त, इकट्ठे करते हक्त । **पइरिंति**=फैलाते हक्त, बिखेरते हक्त । **सालीणि**=चावल । **वीहीणि**= धान्य, धाणी । **जवजव**=जवार, ज्वार । **आमोयाणि**= बिल, खड्डे, ऊँची नीची भूमि, **पगडाणि**=बडे खड्डे, जिन में जाने-आने का रास्ता न हो । **कडयाणि**=घास के ड डे, कचरा, जहाँ फिसलने की स भावना हो । **माणुस्सर धणाणि**=भोजन बनाने के स्थान, बडे चूल्हे, भट्ठी । **करणाणि**= रखने पालने के स्थान । **आरामाणि, उज्जाणाणि** =बगीचा और गाँव के बाहर पडाव डालने का मैदान, ये दोनों शब्द बगीचे के अर्थ में भी प्रयुक्त होते हक्त । **अट्टालयाणि**=कोट के ऊपर घूमने का मार्ग या युद्ध करने के स्थल । **चरिया**=कोट के नीचे अ दर की तरफ घूमने का मार्ग । **गोपुर**=गो घाट, दरवाजे के आगे ढलाव वाला मार्ग । **चउम्मुह**=जहाँ

से चार रास्ते की शुरुआत होती है । **चच्चर**=अनेक रास्ते जहाँ से प्रार भ होते हक्त या मिलते हक्त । **चउक्क**=दो रास्ते आपस में मिलने, काटने से जहाँ चार दिशाओं का रास्ता होता है । **खारदाहेसु**=सज्जीखार पकाने के स्थान । **मडय थूभियासु**=मृतक स्तूप के पास । **सेयणपह सि**=पानी की नालियाँ । **ओघायण सि**=नदी का पानी बहने का मार्ग । **णवियासु**= नवीन । **गो-लेहणियासु**=हल चलाई भूमि, **खाणि सु**=अन्य कोई मिट्टी, पत्थर की खान । **गवायणि सु**=पशुओं के बैठने का स्थल, इकट्ठे होने का स्थल । **डाग** =खेत वाडी में होने वाले खरबूज, तरबूज । **हत्थ कर**= कोथु भरी–कोथमीरी । **लावय**=तीतर जैसा पक्षी । **कवि जल**=कुरज ।

प्रश्न–७ : अध्ययन ग्यारह में श्रवण निषेध का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– ग्यारहवें अध्ययन में विस्तार से श्रोतेंद्रिय के विषयों का, शब्द स्थलों का, देश काल के प्रचलित प्रवर्तनों का स ग्रह किया गया है । जिससे अनेक सा स्कृतिक एव ऐतिहासिक जानकारियाँ भी मिलती है । पूरे अध्ययन के तात्पर्यार्थ को अ तिम एक सूत्र में पुन: समाविष्ट कर दिया है, यथा– देखे हुए, न देखे हुए, सुने हुए, न सुने हुए, मनुष्य स ब धी या देव स ब धी, कमनीय=आकर्षक शब्दों के श्रवण में आकर्षित नहीं होना उनके सुनने रूप के कौतूहल को प्राप्त नहीं होना अर्थात् किसी चीजों के शब्दों को, गीतों, वाजित्रों की ध्वनि के सुनने का इच्छुक नहीं बनना ।

ये प्रवृत्तियाँ आसक्तिमूलक है और आसक्ति प्रेरक भी है । साधु का जीवन स्वाध्यायशील एव विरक्ति भावों में ओतप्रोत होना चाहिये । कुतूहल वृत्ति और इधर उधर भ्रमण करते रहने की प्रवृत्ति स यम साधना या आराधना के योग्य नहीं है । उससे स यम पज्जवों की, स यम धन की हानि होती है । श्रोतेंद्रिय की आसक्ति से जीव कर्मों की वृद्धि करता है, स सार वृद्धि करता है, ऐसा भगवती सूत्र में जय ति श्राविका के प्रश्नोत्तरों में कहा गया है । इसलिये इस अध्ययन में साधु के लिये श्रोतेंद्रिय की सूक्ष्म या स्थूल समस्त आसक्ति और तत्स ब धी प्रवृत्ति का निषेध किया गया है । श्रवण प्रवृत्ति से सावद्य का अनुमोदन भी होता है तथा आत्मा पुद्गलान दी बनने की तरफ अभिमुख होता है जिससे आत्माभिमुखता का ह्रास होता है ।

प्रश्न–८ : ग्यारहवें अध्ययन में कठिन शब्दों के अर्थ क्या है ?

उत्तर– मुइ ग=मृद ग । **ण दी**=सु दर ध्वनि के ढोल । **झल्लरि**=झालर । **वितत** =चर्मावनद्ध वाजि त्रो के ताडित शब्द । **तत**=तारवाले वाजि त्रो के शब्द । **घन**=का स्य तालों को आपस में टकराकर किये जाने वाले शब्द । **झुसिर**=पोलार युक्त वाजि त्रो में फूँक देकर या बोल कर किये जाने वाले शब्द । सूत्र में प्रयुक्त वाजि त्रो के शब्दार्थ इन चार प्रकार के वाजि त्रो के विभाजन को ध्यान में रखकर ही करना चाहिये । **जूहिय-ठाणाणि**=वर–वधु के स्थल । **माणुम्माणिय**=मापतौल करने के स्थल, धर्मका टा । **डि ब**=राजा और युवराज में क्लेश । **कलहाणि** =सामान्य वचन क्लेश । **महासव**=मेला । **महुस्सव**=शादी वगैरह महोत्सव । **विछड्डेमाणाणि**=भिक्षाचरों को बाँटते, देते । **विगोवेमाणी** = पशुपक्षियों के देते हुए **विसाणिय**=गरीब आदि को भोजन देकर या करवाकर । **परिवुत्त म डिय**=परिवार से घिरी हुई और आभूषणों से म डित । **अल किय**=सभी प्रकार से अल कृत । **णिबुज्झमाणि** = घोडे पर सवारी करके ले जाती हुई । **सज्जेज्जा**=लगाव रखना । **गिज्झेज्जा**=अत्य त लालायित रहना । **मुज्झेज्जा** =उसी में प्रवृत्त होना, काया से मुर्च्छित होना । **अज्झोववज्जिज्जा**=तन मन सभी से एकमेक तल्लीन हो जाना, अन्य कोई भान नहीं रहना ।

प्रश्न–९ : बारहवें रूप आसक्ति अध्ययन में क्या विशेषता है ?

उत्तर– शब्द श्रवण श्रोतेंद्रिय के विषय की आसक्ति का परिणाम है और रूप देखना, दृश्य देखना ये चक्षु इन्द्रिय के विषय की आसक्ति का परिणाम है । इन दोनों आसक्तियों में औदारिक शरीर को पुद्गल पोषण नहीं मिलता, केवल इच्छामन की तृप्ति और कार्मण शरीर की अर्थात् कर्मों की पुष्टि होती है । ये शब्द और रूप की आसक्तियाँ पर परा से विकार भावों की पोषक भी है । अन्य समस्त वर्णन, प्रश्न-२१२ के समान समझना । दोनों अध्ययन में अनेक सूत्र समान है । चार प्रकार के वाजि त्र के सूत्र इस **रूप-अध्ययन** में नहीं है । शेष सभी श्रवण के स्थान दर्शनीय स्थान के रूप में भी उपयुक्त हो जाते हक्त । चित्रकर्म, कोतरणीकृत्य, अन्य भी कलाकृति के स्थलों को देखने जाने का सूत्र 'रूप' अध्ययन में विशेष है । **ग थिम**=फूल गूँथने आदि के कार्य । **वेढिम**=वस्त्र आदि वेष्ठित करके बनाये जाने वाले स्थल । **पूरिम**=रिक्त स्थल पूरित करने के, कसीदा करने के स्थल । **स घातिम** =स ग्रह करके कोई भी वस्तु तैयार की जाती वैसे स्थल । **विविहाणि**

वेहिमाणि = अन्य भी अनेक प्रकार के वेष्टन के स्थल । **कुच**=स्तन । **सव्वओ सव्वत्ताए**= सभी प्रकार से और परिपूर्ण ।

प्रश्न–१० : पर-किरिया का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– तेरहवें अध्ययन में पर-किरिया का निषेध है अर्थात् गृहस्थ के द्वारा साधु को अपने शरीर स ब धी अरस-परस की कोई भी प्रवृत्ति नहीं करानी चाहिये । इससे गृहस्थ साधु का मिश्रीभाव-एकमेकता होती है । गृहस्थ सेवा या मोह भाव वृद्धि से कर्म ब ध होता है । **सायए**= मन से अनुमोदन न करे । **णियमे**=वचन काया से, आदेश निर्देश भी न करे ।

प्रश्न–११ : साधु गृहस्थ से औषध उपचार करा सकता है । म त्र त त्र से उपचार करा सकता है ?

उत्तर– इस तेरहवें अध्ययन के अ तिम सूत्र में शुद्ध या अशुद्ध म त्रों से उपचार कराने का निषेध किया गया है ।अशुद्ध का मतलब आर भजनक शब्दोच्चारण से है । इसी प्रकार वनस्पति का छेदन-भेदन, उबालना आदि प्रक्रिया करानी पडे, ऐसे उपचार भी कराने का निषेध है । अ त में कहा गया है कि कर्मों का विपाक अत्य त कटुक होता है, उसी से जीव दु:ख पाते हक्त । फिर भी वे जीव पापाचरण करके पुन: अशाता वेदनीय का स ग्रह करते हक्त । अत: सावद्य चिकित्सा नहीं करानी चाहिये । यहाँ साधु को रोग परीषह सहन के आदर्श में रहने की प्रेरणा से निर्वद्य म त्रप्रयोग चिकित्सा का भी निषेध किया गया है । **खणित्तु**=खोदकर । **कड्डित्तु**= निकाल कर । **तेइच्छ आउट्टाविज्जा**= चिकित्सा करे।

प्रश्न–१२ : अन्योन्य क्रिया का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– साधु-साधु तथा साध्वी-साध्वी परस्पर में अकारण या गाढा-गाढी कारण बिना, एक दूसरे के शरीर का स्पर्श, मर्दन आदि सूत्रोक्त निषिद्ध क्रियाएँ नहीं करें, यह इस चौदहवें अध्ययन के वर्णन का आशय है । सूत्रालापक 'परक्रिया' अध्ययन के समान है । यथा स भव समस्त सूत्र विषय को यहाँ साधुओं के परस्पर स ब ध से समझ लेना । विशिष्ट परिस्थिति में सेवा भावना का निषेध नहीं है । निषेध का उद्देश्य मोह वृद्धि के भावों का निग्रह एव स्वाध्याय रमणता में स यम के समय का अधिकतम उपयोग होने के लिये तथा परस्पर निरर्थक प्रवृत्तियाँ न बढे, इसके लिये विस्तृत कथन किये गयेक्त ।

प द्रहवाँ अध्ययन : भावना

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में मुख्य विषय क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम **भावना** अध्ययन है । इसमें भगवान महावीर स्वामी का जीवन परिचय और महाव्रतों की भावनाओं का वर्णन है ।

प्रश्न–२ : यह अध्ययन मौलिक है या स कलित ?

उत्तर– यह अध्ययन स्थाना ग सूत्र कथित ब धदशासूत्र से यहाँ स कलित है । इसमें पच्चीस भावनाओं का विस्तृत वर्णन है । यहाँ स कलित करने के बाद कभी भी श्रमण भगवान महावीर स्वामी का जीवन परिचय, परिवार परिचय, दीक्षा विधि आदि का स क्षिप्त स कलन कल्प सूत्र के आधार से लेखन काल में योग्य समझकर कर दिया गया है । अत: वर्तमान में यह अध्ययन आचारा ग सूत्र के ही मौलिक अध्ययन रूप में स्वीकार कर लिया गया है । स्वार्थ या अज्ञान वश किये गये प्रक्षेप दोषों के अतिरिक्त, अन्यान्य सूत्रों से स पादित विषय भी मौलक रूप में तो वहाँ गणधर रचित ही होता है; जिसका कि सूक्ष्मतम विवेक ज्ञान विशिष्ट अध्ययन एव अनुभव के बाद ही स भव है । उसके पूर्व गुरु आज्ञा एव श्रद्धा का विषय ही रहता है । इस प द्रहवें सोलहवें अध्ययन स ब धी ऐतिहासिक स केत प्रश्न– १३२ में किया गया है ।

प्रश्न–३ : प च कल्याणक और छ: कल्याणक क्या है ?

उत्तर– तीर्थंकरों के (१) जन्म (२) दीक्षा (३) केवल ज्ञान (४) निर्वाण, इन चार प्रस गों में महोत्सव करने ६४ इन्द्र एव हजारों देव देवियाँ मनुष्य लोक में आते हक्त, लोक में इन चारों प्रस गों पर देवता के शरीर आदि से स्वाभाविक क्षणिक प्रकाश होता है । अत: इन चार प्रस गों को ठाणा ग सूत्र में "लोक उद्योत कर" कहा गया है अर्थात् लोक के किसी विभाग में ये चारों प्रस ग उधोत करने वाले हक्त कि तु **स पूर्णलोक** नहीं समझ लेना चाहिये । ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि सूत्र के अनुसार इन प्रस गों को इन्हें "महोत्सव या महिमा" कहा जा सकता है ।

प च कल्याणक या छ: कल्याणक ये शब्द ३२ शास्त्र के मूल पाठ में नहीं है । प्राचीन आगमकालीन भी नहीं है । 'कल्याणक' शब्द भी मौलिक आगमों में न होकर पीछे की कल्पना का शब्द है ।

उपरोक्त चार प्रस गों के साथ गर्भ में आने के समय को मिलाकर पाँच और गर्भस हरण को मिलाकर ६ स ख्या की जाती है उसके बाद कल्याणक शब्द कल्पित करके इनके साथ जोड दिया जाता है । अत: प चकल्याणक या छ: कल्याणक यह कोई आगमिक शब्द नहीं है ।

इस अध्ययन में भगवान महावीर स्वामी के ये छ: प्रस ग बताये गये हक्त । यहाँ भी इन्हें कल्याणक शब्द से नहीं कहा गया है कि तु यह कहा गया है कि– भगवान के जीवन के पाँच प्रस ग उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के च द्र योग के समय हुए थे और भगवान का निर्वाण(मोक्ष) स्वाति नक्षत्र के च द्रयोग के समय हुआ था । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र को आगम की अल कारिक भाषा में "हस्तोत्तर" कहा गया है । जिसका तात्पर्य है कि हस्त नक्षत्र जिसके बाद है उस नक्षत्र में भगवान का जन्म, दीक्षा आदि हुए थे ।

प्रश्न–४ : भगवान किस विमान से आयु पूर्ण कर के आये थे ?

उत्तर– भगवान दसवें देवलोक के जिस विमान में देव रूप में थे उसका नाम शास्त्र में इस प्रकार है "महाविजय सिद्धार्थ पुष्पोत्तरवर पु डरीक दिशास्वस्तिक वर्धमान महाविमान" से बीस सागरोपम का आयुष्य पूर्ण कर भगवान आषाढ सुदी छट्ठ के दिन देवान दा ब्राह्मणी की कुक्षी में गर्भ रूप में उत्पन्न हुए । विमान का यह नाम मूल पाठ में है ।

प्रश्न–५ : महीनों का प्रार भ वदी से होता है या सुदी से ?

उत्तर– अनेक आगमों के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक महिने के प्रार भ में वदी पक्ष होता है और बाद में सुदी पक्ष होता है । इस प द्रहवें अध्ययन से भी यह स्पष्ट होता है । यथा–

(१) भगवान महावीर ग्रीष्म ऋतु के चौथे महीने एव आठवें पक्ष में आषाढ सुदी छट्ठ के दिन देवलोक से च्यवे और गर्भ में आये । (२) वर्षावास के तीसरे महीने एव पा चवें पक्ष में आसोज वदी तेरस के दिन भगवान का स हरण हुआ (३) ग्रीष्म ऋतु के पहले महीने के दूसरे पक्ष में चैत्र सुदी तेरस के दिन भगवान का जन्म हुआ । (४) हेम तऋतु के प्रथम महीने के प्रथम पक्ष में मिगसर वदी दसमी के दिन भगवान दीक्षित हुए । (५) ग्रीष्म ऋतु के दूसरे महीने के चौथे पक्ष में वैशाख सुदी दसमी के दिन भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । इन पा चों कथन से यह स्पष्ट है कि तीन मुख्य ऋतुएँ है । चैत्र, श्रावण, मिगसर उनका प्रथम

महीना है और सभी महीनों में पहले वद पक्ष फिर सुद पक्ष होता है । भगवान के मोक्ष जाने की तिथि का वर्णन अन्यत्र इस प्रकार है (६) वर्षावास का चौथा महिना सातवाँ पक्ष कार्तिक वदी अमावस के दिन भगवान सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए ।

किसी कारण से गुजरात आदि कोई कोई प्रा तो में सुदी पक्ष पहले माना जाता है और वदी पक्ष बाद में माना जाता है । उनका वर्षावास आषाढ वद से प्रार भ होता है, हेम त ऋतु कार्तिक वद से प्रार भ होती है और ग्रीष्म ऋतु फाल्गुन वद से प्रार भ होती है । यह उस क्षेत्र का **व्यवहार सत्य** बन गया है । कि तु आगम सम्मत कथन तरीका नहीं है, आगम से तो स्पष्ट ही विरुद्ध कथन तरीका है ।

प्रश्न–६ : भगवान को जन्म से अवधि ज्ञान था, उसका उपयोग कब किया था ?

उत्तर– कई पुण्यवान जीव देवलोक से मनुष्य भव में आते समय वहाँ के अवधिज्ञान को साथ में ला सकते हक्त । क्यों कि ज्ञान को अनुगामी कहा गया है, वह परभव में साथ चल सकता है । तीर्थंकर तो सभी नियमत: अवधिज्ञान लेकर ही गर्भ में आते हक्त । गर्भकाल में जन्म के बाद भी वह अवधिज्ञान तीर्थंकरों का स्थाई रहता है उससे वे जब भी उपयोग लगावे तब स कल्पित योग्य परोक्ष विषय को जान सकते हक्त ।

प्रस्तुत अध्ययन में कहा गया है कि देवलोक का आयु समाप्त होने वाला है, मक्त गर्भ में आ गया हूँ, स हरण होगा, हो रहा है और स हरण हुआ इतना भगवान उस समय भी जानते थे । एक गति से मरकर दूसरी गति में जाते हुए(वाटे वहेता) जीव को १–२–३ सूक्ष्म समय ही लगते हक्त । उस छोटे समय को भगवान अवधिज्ञान उस समय से नहीं जान सकते, क्यों कि अवधिज्ञान का उपयोग अस ख्य समयात्मक होता है ।

भगवान ने अवधिज्ञान से माता के परिणामों को जानकर गर्भ में पुन: हलन-चलन प्रार भ किया और यह प्रतिज्ञा की थी कि मक्त माता-पिता के जीवन काल तक दीक्षा नहीं लू गा । तदनुसार २८ वर्ष की वय में माता पिता के स थारा पूर्वक दिव गत हो जाने के बाद दीक्षा का निर्णय भाई के समक्ष रखा था । जिसका विस्तृत वर्णन इस शास्त्र में नहीं है फिर भी यहाँ स केत रूप में कहा गया है कि माता-पिता

के काल करने पर अपनी प्रतिज्ञा के समाप्त होने पर भगवान ने दीक्षा लेने का निर्णय प्रगट किया ।

प्रश्न–७ : भगवान का गर्भ स हरण क्यों किया गया ? क्या ब्राह्मण नीच कुल में है ?

उत्तर– इस अध्ययन में भगवान महावीर स्वामी के गर्भ स हरण की तिथि बताई गई है । उसके साथ यह कहा गया है कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी के अनुकम्पक=भक्तिस पन्न भक्तिवान देव ने अपना जीताचार– अपना पर परानुगत ध्रुवाचार समझकर अथवा शक्रेन्द्र की आज्ञा होने से कर्तव्य समझकर स हरण किया । शक्रेन्द्र के आदेश देने का और उस आदेश के कारण का कथन यहाँ नहीं है । कल्प सूत्र में वह वर्णन इस प्रकार है–

शक्रेन्द्र ने जब अवधिज्ञान-दर्शन से यह देखा कि २४ वें तीर्थंकर देवान दा ब्राह्मणी की कुक्षी में आये हक्त, तब उसे यह विचार हुआ कि– तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि (१) अ त्यकुल(क्षुद्र)(२) प्रा तकुल(अधर्मी) (३) तुच्छकुल(छोटा परिवार) या अप्रसिद्ध कुल अथवा धोबी, नाई आदि (४) दरिद्रकुल(गरीब) (५) कृपण कुल(दान नहीं देने वाले) (६) भिक्खकुल(भिक्षा से जीवन यापन करने वाले या भोजन माँगने वाले) (७) ब्राह्मणकुल, इन कुलों में उत्पन्न नहीं होते हक्त कि तु (१) उग्रकुल (२) भोगकुल (३) राजन्यकुल (४) इक्ष्वाकुकुल (५) क्षत्रियकुल (६) हरिव शकुल । ऐसे कुलों में भी जिनका मातृ-पितृ कुल अकल कित हो वहाँ उत्पन्न होते हक्त । ऐसा विचार कर के इन्द्र ने हरिणेगमेषी देव को आदेश दिया ।

इस पाठ में ब्राह्मण या किसी जाति के लिये नीच कुल शब्द का प्रयोग नहीं है तथा अ त, प्रा त, दरिद्र, तुच्छ और माँगने वाले कुलों में भी ब्राह्मण को समाविष्ट नहीं करके उन सभी से उसे स्वत त्र अलग गिनाया है । गर्भ में आने वाले कुलों के नामों में भी ऊँच कुल शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है तथा उन कुलों में वणिक वैश्य कुलों को भी नहीं कहा है । अत: प्रास गिक जिन कुलों में जन्मते हक्त और जिन कुलों में नहीं जन्मते हक्त, उनके नाम निर्देश किये गये हक्त । तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण और वैश्य दोनों कुलों में भी तीर्थंकर नहीं जन्मते हक्त वे केवल क्षत्रिय आदि उपरोक्त कुलों में ही जन्मते हक्त । अत: ब्राह्मण या

वैश्य कुल को ऊँच या नीच कुछ भी कहने का शास्त्रकार का आशय नहीं है ।इस प्रकार शास्त्र के मूल पाठ में नीच-ऊँच के शब्द नहीं है । पर परा की अविवेकजन्य भाषा में ऐसा कथन प्रचलित हो गया है, जो उचित नहीं है ।

पर परा में तो यह भी कहा जाता है कि मरीचि के भव में नीच गौत्र का ब ध किया था वह बाकी रह गया था इसलिये ब्राह्मण कुल में आये । यह कथन भी आगम तत्त्वों से विपरीत है । मरीचि के जीव को नयसार के भव में समकित की प्राप्ति हो गई थी । एक बार समकित आ जाने के बाद कोई भी जीव एक क्रोडा-क्रोड सागरोपम से भी कम स्थिति के कर्म बांधता है कि तु उससे अधिक नहीं बा धता है । जब कि मरीचि और महावीर के बीच एक क्रोडा-क्रोडी सागरोपम साधिक समय होता है । अत: मरीचि स ब धी कथन की यह तुकब दी भी कभी चल गई है । नीच गौत्र कर्म से ब्राह्मण कुल मिले यह भी मनकल्पित है । ऐसा किसी भी शास्त्र पाठ में नहीं है । ब्राह्मण कुल को शास्त्र में कहीं भी अपवित्र नहीं कहा गया है । सम्माननीय और पवित्र कुल में ही लिया गया है । उन कुलों में गोचरी जाना, उन्हें श्रावक या श्रमण बनाना आदि कुछ भी निषिद्ध नहीं है । तीर्थंकर से दूसरे क्रम के लोकपूज्य पद और श्रमण शिरोमणी पद पर भगवान महावीर ने सभी ब्राह्मण गौत्रीय उच्च आत्माओं को आसीन किया था और गौतम आदि के साथ प्रार भ से अ त तक सदा सम्मान युक्त व्यवहार रखा था । अपने धर्मशासन के प्राण रूप द्वादशा गी आगम की मौलिक रचना और स पादन का कार्य भी उनके जिम्मे रखा था । इसे अपमान नहीं सम्मान ही कहा जायेगा ।

सार यह है कि ब्राह्मण को नीच कुल कहना या समझना एक प्रकार की भ्रमणा है और नीच गौत्र के उदय से कोई ब्राह्मण बनता है यह भी नासमझ की बात है । तीर्थंकर आदि महापुरुष क्षत्रिय आदि ऊपरोक्त छ कुलों में ही जन्मते हक्त, यह स्वभाव मात्र है । वे वणिक (वैश्य) कुल में भी नहीं जन्मते । इसलिये शक्रेन्द्र ने स हरण करवाया और भगवान का तीर्थंकर रूप में गर्भ स हरण हो जाना, एक गर्भ में नहीं रह सकना, इसे लोक की आश्चर्यजनक घटना कही गई है– ठाणा ग सूत्र १०. ठाणा ग सूत्र में भी ब्राह्मण के कुल में आने को अच्छेरा नहीं कहा कि तु तीर्थंकर जैसे महापुरुषों का गर्भ काल में इधर उधर

किया जाना, इसे आश्चर्य कहा गया है । ठाणा ग सूत्र के इस १० अच्छेरे के पाठ में भी नीचकुल या ऊँचकुल की कोई बात नहीं है ।

प्रश्न–८ : इस अध्ययन में भगवान के जन्म और परिवार के स ब ध में क्या विशेष जानने योग्य है ?

उत्तर– (१) भगवान महावीर पूर्व भव में दसवें देवलोक में थे **(२)** भगवान की गर्भ में आने की तिथि आषाढ सुदी छट्ठ, जन्मतिथि चैत्र सुदी तेरस, दीक्षा तिथि मिगसर वदी दसम, केवलज्ञान तिथि वैसाख सुदी दसम, निर्वाण तिथि कार्तिक वदी अमावस और गर्भ स हरण तिथि आसोज वदी तेरस ।**(३)** भगवान पूर्व भव से अवधिज्ञान साथ में लेकर जन्मे थे, जो केवलज्ञान उत्पन्न होने तक स्थाई रहा । **(४)** चौथे आरे के पिचहत्तर वर्ष और साडे आठ महीना शेष रहने पर भगवान गर्भ में आ गये थे । **(५)** भगवान की प्रथम माता देवान दा ब्राह्मणी और पिता ऋषभदत्त ब्राह्मण थे । लोक प्रसिद्ध माता त्रिशला क्षत्रियाणी और पिता सिद्धार्थ राजा थे । **(६)** भगवान का जन्म होने पर महोत्सव करने देव आये उन्होंने अमृत की, सुग धी द्रव्यों की, गुलाब आदि मा गलिक चूर्णों की, अचित्त फूलों की, स्वर्ण की(चा दी की), रत्नों की वृष्टि की ।

(७) श्रमण भगवान महावीर के तीन नाम– वर्धमान, श्रमण, महावीर ये नाम क्रमशः माता पिता के द्वारा, खुद के द्वारा और देवों के द्वारा दिये गये थे । **(८)** पिता के तीन नाम– सिद्धार्थ, श्रेया स, यशस्वी **(९)** माता के तीन नाम– त्रिशला, विदेहदिन्ना और प्रियकारिणी **(१०)** काका का नाम–सुपार्श्व **(११)** बडे भाई का नाम– न दीवर्धन **(१२)** बडी बहिन– सुदर्शना **(१३)** भार्या का नाम– यशोदा, कोडिन्य गौत्र । पुत्री के दो नाम– अनोजा और प्रियदर्शना । दुहित्री के दो नाम– शेषवती, यशवती । **(१४)** भगवान के माता-पिता त्रिशला और सिद्धार्थ श्रावक धर्म का आराधन कर स लेखना स थारा में काल करके १२ वें देवलोक में देव बने । वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में एक भव करके मोक्ष जायेंगे । देवान दा माता और ऋषभदत्त पिता दोनों भगवान के केवली होने के बाद दीक्षा लेकर उसी भव से मोक्ष में गये ।

प्रश्न–९ : इस अध्ययन में भगवान की दीक्षा स ब धी क्या विशेषताए है ?

उत्तर– (१) माता-पिता के दिव गत हो जाने पर अपनी गर्भ में की हुई

प्रतिज्ञा समाप्त हो जाने पर भगवान ने दीक्षा लेने का निर्णय किया । **(२)** एक वर्ष तक दान में प्रतिदिन एक करोड आठ लाख मुद्रा एव वर्ष में कुल ३८८ क्रोड ८० लाख मुद्रा का दान दिया **(३)** लोका तिक देव अपने जीताचार वश प्रत्येक तीर्थंकर को दीक्षा के लिये उत्साहित, प्रेरित करते हक्त, प्रतिबोधित करने के वचन कहते हक्त **(४)** वैश्रमण देव धन के भ डार भरते हक्त **(५)** चौसठ इन्द्र ऋद्धि सहित नगरी में आते हक्त । आकाश में भूमि से कुछ ऊँचे विमान को ठहराते हक्त **(६)** म डप रचना, स्नान, मालिस आदि अभिषेक क्रिया शक्रेन्द्र ने की **(७)** त्रिपट सि चित साधित शीतल गोशीर्ष रक्त च दन का भगवान के शरीर पर लेपन किया **(८)** एक लाख सोनैया मुद्रा के मूल्य वाले वस्त्र युगल को पहनाया । ***[यहाँ पर गद्य पाठ में एक लाख के मूल्य का पाठ भूल से च दन के साथ लग गया है वह अशुद्ध है, उसी के बाद गाथा में यह विशेषण वस्त्र के लगा है जो पूर्ण रूप से उपयुक्त है]*** विविध अल कारो से भगवान को विभूषित किया । वैक्रिय से इन्द्र ने शिविका(पालखी) विविध कलाकृति युक्त बनाई । जिसे उठाने के लिये एक हजार व्यक्ति खडे रह सकते थे, उठा सकते थे **(९)** छट्ठ भक्त(बेले)की तपस्या में भगवान विशुद्ध परिणामों से उस शिविका पर चढे, सि हासन पर बैठे । शक्रेन्द्र ईशानेन्द्र दोनों बाजू चामर झूला रहे थे । शिविका पहले मनुष्यों ने उठाई, फिर देवों ने शिविका का वहन किया । हजारों देव जुलूस में आकाश में चल रहे थे । विविध वाजि त्रो से आकाश गु जायमान हो रहा था । देवता भी विविध वाजि त्र वादन और सेकडों नाटक दिखाते जा रहे थे । **(१०)** नगर के बाहर उद्यान में दीक्षास्थल था । वहाँ पहुँचकर भगवान ने अल कार, वस्त्रों का त्याग किया, फिर केश लोच किया । आभूषण वैश्रमण देव ने स्वच्छ वस्त्र में लिये और केशों को शकेन्द्र ने वज्रमय थाल में ग्रहण कर क्षीरोद समुद्र में स हरित कर दिये, विसर्जित कर दिये **(११)** भगवान ने सिद्धों को नमस्कार करके स पूर्ण सावद्य योग त्याग एव स यम ग्रहण की प्रतिज्ञा का उच्चारण किया । उस समय सारा वातावरण और वाजि त्रों की आवाज को शक्रेंद्र की आज्ञा से परिपूर्ण शात कर दिया गया । सभी ने ध्यान पूर्वक प्रतिज्ञा पाठ के उच्चारण को शा ति के साथ सुना । **(१२)** प्रतिज्ञा उच्चारण के अन तर ही भगवान को

मन:पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ । जिससे वे सन्नी प चेन्द्रिय के स्पष्ट व्यक्त मन के भावों को जानने लगे **(१३)** सभी पारिवारिकजनों एव समस्त परिषद् को विसर्जित किया, आज की भाषा में मा गलिक पाठ सुनाया ।

प्रश्न–१० : हजार व्यक्ति उठावे ऐसी शिविका कहाँ कैसे चलेगी ?

उत्तर– बडे शहरों में विशाल और सीधे राजमार्ग होते हक्त । उन्हीं मार्गों से चलने का कार्यक्रम बनाया जाता है । उठाने की, चलने की व्यवस्था अच्छे ढ ग से होने पर दुविधा नहीं होती है । देवताओं, इन्द्रों और विशिष्ट व्यक्तियों की देखरेख में वहाँ कोई कमी नहीं रह सकती ।

प्रश्न–११ : भगवान को केवलज्ञान कब कहाँ किस तरह हुआ ?

उत्तर– बारह वर्ष साधिक स यम तप साधना में भगवान ने विचरण किया । शरीर का ममत्व छोडकर विविध अभिग्रह नियमों को पालन करते हुए अनेक प्रकार के कष्ट उपसर्ग परीषह समभावों से सहन किये । भगवान अधिक समय मौन ध्यान से बिताते थे । छद्मस्थ काल की समयावधि पूर्ण होने पर भगवान जृ भिकग्राम नामक नगर के बाहर, ऋजुवालुका नदी के उत्तरी किनारे पर, श्यामाक गाथापति के लकडी के कारखाने में, वेयावर्त यक्ष के म दिर के ईशान कोण में, शालवृक्ष के नीचे, गोदोहिक आसन से ध्यान में लीन थे । शुभ परिणामों की विशुद्धि बढते हुए, धर्म ध्यान से शुक्ल ध्यान में प्रवेश करते हुए, क्षपक श्रेणी में आगे बढते हुए, मोह कर्म का क्षय हुआ । फिर तीन घातीकर्म के क्षय होने से वहाँ पर उसी ध्यान मुद्रा में भगवान को केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । जिससे भगवान स पूर्ण लोक के समस्त जीवों और पुद्गलों के समस्त भावों, पर्यायों को प्रत्यक्ष जानने, देखने लगे ।

प्रश्न–१२ : केवल ज्ञान के बाद भगवान का उपदेश क्रम क्या रहा ?

उत्तर– प्राय: सभी तीर्थंकरों के केवल ज्ञान के बाद प्रथम परिषद से ही तीर्थ का प्रार भ, शासन का प्रार भ हो जाता है कि तु भगवान महावीर स्वामी की प्रथम देशना मात्र देव-देवी की परिषद में हुई । दूसरी देशना मनुष्यों से युक्त परिषद में हुई । प्रथम देशना में व्रत प्रत्याख्यान नहीं हो सकने से इसे लोक के दस आश्चर्यों में से एक आश्चर्य के रूप में ठाणा ग सूत्र में स्वीकारा है । दूसरी धर्म देशना में गौतमादिक

ग्यारह ही गणधर भगवान का उपदेश सुनकर एव उनके ज्ञान और व्यवहार से प्रभावित होकर अपने शिष्यम डल के साथ दीक्षित हुए ।

गौतम आदि अणगारों को सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान ने सर्वप्रथम ५ महाव्रत २५ भावना सहित एव छ: जीवनिकाय का स्वरूप समझाया, ऐसा इस अध्ययन के केवलज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न होने के वर्णन के बाद मूल पाठ में बताया गया है । ग्र थों में कहा गया है कि भगवान के द्वारा गणधरों को तीन पद के माध्यम से तत्त्वों को विस्तार से समझाया गया । इसे त्रिपदी कहा जाता है । वे तीन पद हक्त– **उप्पण्णेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा ।** कि तु आगमों में इसका निर्देश कहीं भी नहीं है ।

आगमानुसार तो भगवान की द्वितीय देशना से गौतमादि गणधर प्रबुद्ध होकर, दीक्षित हुए और उन गौतम आदि अणगारों को भगवान ने २५ भावनाओं सहित पाँच महाव्रतों का स्वरूप समझाया और साथ ही छ: काय के जीवों का विस्तार से ज्ञान दिया । त्रिपदी आदि की कल्पना दिगम्बर ग्र थो की रचना के अन तर श्वेता बर ग्र थों में प्रविष्ट की गई हो, ऐसी अधिक स भावना है अर्थात् आगम रचना काल के बाद जब ग्र थकाल का समय आता है, उसके आसपास से इस धारणा का उद्भव होना समझा या माना जा सकता है । व्याख्या ग्र थों में इन्हें मातृका पद से स ब धित करके आगम से स ब ध जोडा जाता है कि तु समवाया ग सूत्र में मातृका पदों की स ख्या ४६ कही है, तीन नहीं कही है । ये ४६ मातृका पद समस्त श्रुतज्ञान के मूलाक्षर 'अ' से लेकर 'ह' तक बताये गये हक्त । यहाँ समवाया ग सूत्र में भी उप्पन्ने, विगमे, धुवे ये तीन पद नहीं कहे हक्त कि तु यह कहा है कि ब्राह्मी लिपि के मूलाक्षर भी ४६ होते हक्त । *[देखो श्री समवाया ग सूत्र समवाय–४६]* अत: व्याख्या का वह विकल्प आगम से पुष्ट नहीं होता, अपितु बाधित होता है ।

सार यह है कि भगवान ने आचारा ग सूत्रानुसार गौतमादि अणगारों को सर्वप्रथम महाव्रत, छ कायरूप स यम का आवश्यक स्वरूप समझाया और प्रथम देशना में गौतम आदि के प्रश्नों का समाधान करके धर्म देशना द्वारा उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश दिया, धर्म में जागृत किया । भगवान की धर्म देशना का वर्णन विस्तार से उववाई सूत्र में उपलब्ध है । वहाँ पर भी **उप्पन्ने, विगमे, धुवे** इन शब्दों की कोई चर्चा या स केत भी नहीं है ।

प्रश्न–१३ : भावना और अतिचारों में क्या अ तर है ?

उत्तर– भावनाएँ गुण रूप है, महाव्रतों को पुष्ट करने वाली होती है, महाव्रतों को भावित करती है । कि तु अतिचार व्रतों में दोष रूप होतेह्क, व्रतो को क्षति पहुँचाते ह्क । भावनाएँ महाव्रतों में ही समाविष्ट है, उन्हीं के नियम उपनियम रूप है । महाव्रतों के साथ अतिचार नहीं कहे गये ह्क । गृहस्थ के व्रतों के साथ मुख्य अतिचारों का निर्देश शास्त्र में है । उनके व्रत मर्यादित ह्क अत: मुख्य अतिचार भी सीमित कहे जा सकते है कि तु महाव्रतों में स पूर्ण सावद्य का त्याग होने से सूक्ष्म या प्रधान, अप्रधान ऐसा अतिचारों का विकल्प नहीं किया जा सकता । अत: महाव्रतों के अतिचार मुख्य या सीमित स ख्या में स योजित नहीं किये जा सकते । इसी कारण यहाँ अतिचारों की स ख्या नहीं कही है । वास्तव में प्रधान अप्रधान का भेद नहीं हो सकने से महाव्रतों के अनेक सेकडों हजारों अतिचार हो सकते ह्क और भावनाएँ जो २५ कही गई है उसमें सभी गुणों का, गुणपोषक तत्त्वों का समावेश हो सकता है ।

प्रश्न–१४ : भावना और महाव्रतों का वर्णन अन्य किन-किन शास्त्रों में है ?

उत्तर– प्रस्तुत अध्ययन के अतिरिक्त महाव्रतों का वर्णन दशवैकालिक और प्रश्नव्याकरण सूत्र में पूर्ण रूपेण है । पाँच भावनाओं का वर्णन प्रस्तुत अध्ययन के अतिरिक्त समवाया ग सूत्र और प्रश्नव्याकरण सूत्र में पूर्ण रूप से है । उत्तराध्ययन सूत्र के १९ वें अध्ययन में पद्य रूप में ५ महाव्रतों का स क्षिप्त शिक्षा सार कहा गया है । इसके सिवाय स केत या निर्देश रूप में अनेक आगमों में महाव्रत और भावनाओं का कथन है । तीनों सूत्र के महाव्रत एव भावना कथन के तरीकों में अ तर है । एक-एक महाव्रत की पाँच भावना के वर्णन में अ तर के अतिरिक्त कुछ क्रम-भिन्नता भी है । भिन्नताओं का कारण लिपि दोष, अलग-अलग समय में अलग-अलग आचार्यों द्वारा स पादन और समय-समय में हुए शास्त्रों के वाचना, स पादनह्न ।

दशवैकालिक सूत्र का महाव्रत विषय स्वय भवाचार्य द्वारा रचित स पादित है । प्रश्नव्याकरण का महाव्रत विषय अज्ञात समय में अज्ञात आचार्य द्वारा रचित स पादित है । आचारा ग का यह अध्ययन ब धदशा सूत्र से अज्ञात समय में स कलित किया गया है और ब धदशा सूत्र की

रचना स पादन कब किसने किया यह अज्ञात है, इत्यादि कारण भिन्नताओं के समझने चाहिये । फिर भी महाव्रत और भावनाओं के आगम आशय का सभी में पोषण ही है, कहीं किसी भावना में आगम आशय को चोट नहीं पहुँचती है । अत: सभी उपलब्ध महाव्रत और भावना स्वरूप पूर्ण श्रद्धेय है ।

प्रश्न–१५ : शब्द, रूप, ग ध, रस, स्पर्श को अपरिग्रह महाव्रत की भावना में लेने का क्या आशय है ?

उत्तर– पाँचवें महाव्रत के स्वरूप में द्रव्य या व्यवहार परिग्रह का स पूर्ण त्याग कह दिया गया है । भावनाएँ महाव्रतों को पुष्ट करने वाली होने से अपरिग्रह महाव्रत को पुष्ट करने में भावपरिग्रह अर्थात् आसक्ति का त्याग बताना आवश्यक हो जाता है । आसक्ति ही स सार का मूल कारण है और स सार के मूल स्थान शब्दादि इन्द्रिय विषय ह्क । आचारा ग प्रथम श्रुतस्क ध में इन्द्रिय विषयों को 'गुण' शब्द से कहकर मूलस्थान बताया है यथा– **जे गुणे से मूल ठाणे, जे मूल ठाणे से गुणे ।**

अत: शब्द, रूप आदि की आसक्ति का त्याग और उनके निमित्त से होने वाले रागद्वेष का त्याग, भाव अपरिग्रहता की अपेक्षा प्रास गिक है और उपयोगी भी । इस अध्ययन के पाँचवें महाव्रत की ५ भावनाओं की शाब्दिक रचना भी बडी रोचक, सु दर और भावभरी है । उनका आशय स्पष्ट है कि साधु शब्दादि सुनने देखने तो कहीं जावे नहीं कि तु जीवन में स्वाभाविक ही **रूप** सामने आते रहते ह्क, **शब्द** श्रवण में आते रहते ह्क, ग ध स्पर्श का स योग भी होता ही रहता है । जीवन है तब तक ये इन्द्रियों के द्वार प्राय: खुले ही रहते ह्क । अत: स्वाभाविक होने वाले शब्दादि के स योगों का त्याग करना अशक्य है । यह बताकर कहा गया है कि उनके प्रति राग और द्वेष के परिणाम करने का साधु त्याग करे । शब्द आदि पाँच विषय के मनोज्ञ स योग हो या अमनोज्ञ स योग हो, इन अच्छे खराब शब्द आदि के स योगों में वैराग्य भाव सहित, उपेक्षाभाव सहित, समत्व परिणामों से भिक्षु को रहना चाहिये । उनके स योग से भिक्षु किसी भी प्रकार का रागद्वेष, अतिशय निंदा, प्रश सा अथवा ग्लानि भाव, आन द

भावन करे, इन पुद्गल स योगों से आत्म परिणामों को चल विचल न करे, तीव्र वैराग्य, सावधानी, जागरूकता से समत्व परिणामों में स्थिर रहे । यही भाव इस पाँचवें महाव्रत की भावना के गद्य पद्य पाठ में भरा हुआ है ।

सोलहवाँ अध्ययन : विमुक्ति

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में किस विषय का निरूपण है ?

उत्तर– विमुक्ति नामक इस अध्ययन में मोक्ष प्राप्ति के उपाय बताये हक्त । गुणों के स कलन स वर्धन की प्रेरणा करते हुए मुक्ति की प्रबल प्रेरणा दी गई है । तदनुसार अध्ययन का नाम 'विमुक्ति' भी पूर्ण सार्थक है । १२ गाथाओं का उपदेश भरा यह छोटा सा अध्ययन सदा स्वाध्याय, चि तन, मनन करने योग्य है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन का स क्षिप्त सारा श क्या है ?

उत्तर– (१) छ:काय रक्षक मुनि अनित्य भावना से भावित होकर आर भ परिग्रह का त्याग करे, उससे दूर रहे **(२)** हीलना वचन आदि परुष(कटु) शब्दों रूपी तीरों को स ग्राम शीर्ष हस्ती के समान सहन करे । **(३)** तृष्णा रहित बनकर शुभ ध्यान में रमण करे; जिससे तप, प्रज्ञा एव यश की वृद्धि होती है । **(४)** क्षेमकारी, कल्याणकारी महाव्रतों का यथार्थ पालन करना । **(५)** कहीं पर भी स्नेह, ममत्व भाव नहीं करना । स्त्रियों में आसक्ति नहीं करना, पूजा प्रतिष्ठा की चाहना का त्याग करना **(६)** इस प्रकार के साधक की आत्मा से कर्म रूपी मैल, अग्नि द्वारा चा दी के मैल के समान साफ हो जाता है । **(७)** आशाओं का त्याग करना । सर्प की जीर्ण त्वचा त्याग के समान, ममत्व भाव आदि का त्याग करने वाला साधक दु:खशय्या से मुक्त हो जाता है । **(८)** दुस्तर समुद्र के समान स सार सागर को मुनि तर जाते हक्त । **(९)** इस प्रकार स यम के साथ ब ध विमोक्ष के स्वरूप को जानकर मुनि मुक्त होते हक्त । **(१०)** जिनका इसलोक परलोक में रागभाव का ब धन कि चित् भी नहीं है वे स सार प्रप च से मुक्त हो जाते हक्त ।

प्रश्न–३ : इस अध्ययन में कठिन शब्द और उनके अर्थ क्या है ?

उत्तर– तहागय =उस प्रकार के । **भिक्खु** =मुनि को । **अण तस जय** = अन त जीवों के प्रति स यत । **विण्णु**=विद्वान मुनि को । **चर तमेसण** =शुद्ध गवेषणा करने वाले को । **अभिद्दव णरा**=उपद्रवकारी अनार्य लोग । **उईरिया**=कहे जाने पर, कष्ट दिये जाने पर । **उवेहमाणो**= कष्टों की उपेक्षा करता हुआ । **कुसलेहिं स वसे**=गीतार्थ कुशल मुनियों के साथ रहे । **अक तदुक्खी**=दु:खाक्रा त ऐसे त्रस स्थावर दु:खी प्राणियों को । **अलूसए**=अपने सुख के लिये किसी प्रकार का कष्ट न दे । **सव्व सहे महामुणी**=कि तु महामुनि अपने सभी कष्टों को सहन करे । **तहाहि से**=ऐसा करने से ही वह । **विऊ**=विद्वान मुनि । **णए**=पालन करे । **दिसोदिसि** =समस्त जीवों की अपेक्षा । **खेमपया** =क्षेमकारी स्थान ऐसे महाव्रत । **महागुरु**=वे महाव्रत महान है , महान शक्तिशाली । **णिस्सयरा** =कर्मों को दूर करने वाले हक्त । **तिदिसि पगासगा**=तीन दिशा, तीनों लोक को प्रकाशित करने वाले । **सिएहिं**=स्नेह करने वालों के साथ । **असिए**=लगाव न करे, ब धे नहीं । **ण मिज्जइ**=स्वीकार नहीं करे । **परिण्णचारिणो**=ज्ञान और विवेक के साथ आचरण करने वाले । **से हु**= उपरोक्त गुण धारण करने वाला । **परिण्णा समयम्मि**=ज्ञान और आचार में अथवा प्रज्ञा स पन्न इस जिन शासन में । **णिराससे**=इस लोक परलोक की आशा से रहित । **जमाहु**=जो यह तीर्थंकरों ने फरमाया है । **अहे य ण** =तो फिर । **प डिए**=प डित पुरुष । **परिजाणाहि**=स सार को समझकर(उसका त्याग कर दे) **से हु मुणी अ तकडे त्ति**=वह मुनि कर्म का अ त करने वाला कहा जाता है । **जहाहि बद्ध इह**= जिस प्रकार यहाँ कर्म बांधे जाते हक्त । **माणवेहिं**=मनुष्यों द्वारा । **कल कली-भाव**=जन्म मरण रूप स सार पर्यटन से । **विमुच्चइ**=छूट जाता है ।

॥द्वितीय श्रुतस्क धस पूर्ण॥

॥ आचारा गसूत्रस पूर्ण ॥

सूयगडा ग सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : सूयगडा ग सूत्र का परिचय क्या है ?

उत्तर– उपलब्ध ग्यारह अ गशास्त्रो में यह सूत्र दूसरा अ ग सूत्र है । इसका प्राकृत नाम सूयगडा ग सूत्र है । प्रचलित भाषा में इसे सूत्रकृता ग सूत्र कहा जाता है ।

प्रश्न–२ : इस सूत्र में कितने विभाग, प्रतिविभाग है ?

उत्तर– इस सूत्र के मुख्य दो विभाग हक्त, जिन्हें दो श्रुतस्क ध कहा हक्त । फिर उनमें अध्ययन, उद्देशक रूप विभाग, प्रतिविभाग हक्त । प्रथम श्रुतस्क ध में सोलह अध्ययन हक्त । जिसमें प्रथम के पाँच अध्ययन तक उद्देशक रूप प्रतिविभाग है । आगे के सभी अध्ययनों में प्रतिविभाग नहीं हक्त । दूसरे श्रुतस्क ध में सात अध्ययन हक्त उनमें भी कोई प्रतिविभाग नहीं है ।

प्रश्न–३ : सूयगडा ग सूत्र के रचनाकार कौन है ?

उत्तर– उपलब्ध ग्यारह अ गसूत्रों की रचना गणधर करते हक्त । जैसे लोकसभा विधानसभा ट्रस्ट आदि के स विधान सभी म त्रीगण प्रमुखलोग या ट्रस्टी गण मिलकर करते हक्त कभी एक प्रमुख के निर्णय में सभी सहमत हो जाते हक्त । उसी तरह तीर्थंकर की प्रथम देशना में प्रतिबुद्ध आत्माओं में से कुछ गणधर लब्धि स पन्न शिष्य होते हक्त । उन सभी गणधरो को द्वादशा गी का श्रुत स्मृति में आ जाता है उसी के आधार से वे अपने शासन योग्य द्वादशा गी का स पादन, गु थन प्रभु आज्ञा से करके शिष्यों को सिखाना प्रार भ कर देते हक्त । इस प्रकार १२ अ ग गणधर रचित कहे जाते हक्त । वे गणधर अपना नाम शास्त्रों में नहीं डालते और गौतम की द्वादशा गी या सुधर्मा की द्वादशा गी ऐसा भेद भी वे नहीं पटकते हक्त । क्यों कि एक साथ रहना और अपनी अपनी द्वादशा गी अलग करना फिर १०–२० वर्ष में वे अनेक गणधर मोक्ष चले जाय तो उनकी द्वादशा गी नष्ट हो जाना और भगवान महावीर के शासन में ३० वर्ष बाद आठ द्वादशा गी को समाप्त कर सुधर्मा की द्वादशा गी ही चलाने की कल्पना यह सब अस गत कल्पना मात्र है ।

आज जो भी सुधर्मा ज बू गौतम आदि के नाम आगम में मिलते हक्त

वे सब उस प्रार भ समय में नहीं थे और सुधर्मा स्वामी के समय भी नहीं थे क्यों कि सुधर्मा स्वामी शास्त्रों में अपना और अपने एक शिष्य का नाम क्यों डाले ? ये नामों की उपलब्धियाँ शास्त्रों में बाद की वाचनाओं, स कलन, लेखन, स पादन के समय की स भव है ।

एक बात और समझने की है कि सुधर्मा स्वामी के ५०० शिष्य उनकी द्वादशा गी सीखे शेष हजारों साधु अन्य द्वादशा गी(आठ प्रकार की) सीखे फिर ३० वर्ष बाद सब को सुधर्मा की द्वादशा गी में सामिल होना पडे। यह तो शिष्यों के ज्ञान का, मेहनत का और आगमों का एक प्रकार का खिलवाड ही कहा जायेगा । एक ही स्कूल के एक क्लाश के **अ ब स द** चार विभाग रूप महावीर शासन के विद्यार्थीयों के ये नौ श्रमणगण होते हक्त । महाविदेह क्षेत्र की अलग-अलग विजय में भिन्नता हो तो कोई बात नहीं पर तु एक ही तीर्थंकर प्रभु के निश्राय में एक मकान में बैठकर पढने और स्वाध्याय चर्चा करने वालों के मौलिक शास्त्र ही भिन्न भिन्न प्रकार के हों यह उचित्त नहीं है । ऐसी धारणा पर परा कभी भी चली हो कि तु वह बहुत गलत कल्पना हुई है ।

सार यह है कि एक तीर्थंकर के जितने भी १०-२०-१०० गणधर हों वे सभी मिलकर एक द्वादशा गी का अपने उपस्थित श्रुतज्ञान के आधार से भगवदाज्ञा से स पादन गु थन अपने शासन योग्य कर लेते हक्त फिर अलग-अलग टुकडी में शिष्यों को एक ही प्रकारकी द्वादशा गी सिखाई जाती है ताकि वे सभी मिलकर परस्पर में क ठस्थ स्वाध्याय को कभी भी सुन समझ सकते हक्त । १०–२० या ३०–४० वर्ष बाद उन्हें दूसरी द्वादशा गी वालों से उलझने की जरूरत नहीं पडती है । आचारा ग सूत्र क ठस्थ है तो किसी भी गणधर का विद्यार्थी, अन्य दूसरे गणधर के विद्यार्थी के साथ स्वाध्याय करने सुनने या प्रमाण देने बैठ जाय तो कोई उलझन पैदा नहीं होगी । अन्यथा एक कहेगा भगवती सूत्र उस शतक, उस उद्देशक में यह बात कही है, दूसरा कहेगा यह गलत है वह बात तो दूसरी जगह आई है इत्यादि ।

प्रश्न–४ : सूयगडा ग सूत्र पर व्याख्या किसने बनाई है?

उत्तर– इस सूत्र पर उपलब्ध प्राचीन व्याख्या शीला काचार्य ने बनाई है । उसके पूर्व इस सूत्र पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि रूप व्याख्याएँ बनाई गई थी । उसी का आधार लेकर आचार्य शीला क ने स स्कृत टीका बनाई ।

अन्य भी व्याख्या अपूर्ण, पूर्ण बनी होगी कि तु वे उपलब्ध नहीं हक्त । निर्युक्ति भाष्य भी आज स्वत त्र उपलब्ध नहीं है । जिनदास गणी की चूर्णि स्वत त्र उपलब्ध है । शीला काचार्य के बाद अनेक विद्वानों ने सूयगडा ग पर व्याख्याएँ की है जो हिंदी गुजराती स स्कृत आदि भाषाओं में उपलब्ध है ।

प्रश्न–५ : इस सूत्र का मुख्य विषय क्या है ?

उत्तर– इस सूत्र के दो विभाग हक्त । प्रथम विभाग रूप प्रथम श्रुतस्क ध के १–२ अध्ययन में मतमता तरो की चर्चा के साथ स्वमत और साधु के आचार का कथन है । चौथे अध्ययन में स्त्री परीषह स ब धी तथा पाँचवें अध्ययन में नरक दुःखों का वर्णन है और छट्ठे अध्ययन में भगवान महावीर स्वामी की स्तुति के साथ साध्वाचार का भी कुछ कथन है । अन्य सभी अध्ययन में प्रायः साध्वाचार और उपदेश है ।

दूसरे श्रुतस्क ध के सात अध्ययनों में स्वत त्र विषय है ।जिसमें तत्त्व, चर्चा, साध्वाचार, उपदेश एव मतमता तर के विषय हक्त ।

प्रश्न–६ : प्रथम श्रुतस्क ध के कितने अध्ययन है और उनके नाम क्या है ?

उत्तर– प्रथम श्रुतस्क ध के १६ अध्ययन है उनके नाम इस प्रकार है– (१) समय (२) वेतालीय (३) उपसर्ग (४) स्त्री परिज्ञा (५) नरक विभक्ति (६) वीरस्तुति (७) कुशील परिभाषित (८) वीर्य (९) धर्म (१०) समाधि (११) मार्ग (१२) समवसरण (१३) यथातथ्य (१४) ग्र थ (१५) यमतीत–आदानीय (१६) गाथा ।

प्रश्न– बत्तीस शास्त्रों के प्रश्नोत्तर की कितनी पुस्तकें छपेगी ?
उत्तर– हिंदी भाषा में १० और गुजराती भाषा में १० पुस्तकें छपेगी ।
प्रश्न– सभी शास्त्रों की पुस्तकें तैयार होने में कितने वर्ष लगेंगे ?
उत्तर–करीब ५ वर्ष लगने का अनुमान किया जाता है । २००७ से प्रार भ होकर २०१२ तक यह योजना चल सकती है ।
पश्न– पहले भी यह योजना चली थी और रुक गई थी ?
उत्तर– हाँ, १९९६ में प्रार भ हुई थी और ४ भाग छपे थे फिर विशिष्ट कारणवशात् रुक गई थी ।

प्रथम श्रुतस्क ध

प्रथम अध्ययन : समय

प्रश्न–१ : प्रथम अध्ययन में कितने उद्देशक है उनमें मुख्य क्या विषय है और इस अध्ययन के नाम की सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में चार उद्देशक हक्त । इस अध्ययन का नाम **समय** है । समय शब्द के अनेक अर्थ हक्त पर तु यहाँ भावात्मक अर्थ है– सिद्धा त । नाम के अनुसार ही इस अध्ययन में स्वसिद्धा त और अन्य मतमता तरों के सिद्धा तों का कथन किया गया है । इसलिये इसका **समय** सार्थक नाम है ।

प्रश्न–२ : धर्म का प्रतिबोध पाने में आत्मा को सर्व प्रथम क्या जानना आवश्यक है ?

उत्तर– मक्त कौन हूँ ? मनुष्य कैसे बना हूँ ? मक्त शुद्ध आत्मा हूँ, कर्म स ब ध से स सार में रूप परिवर्तित करते हुए मनुष्य बना हूँ । आत्मा कर्म ब धनों में क्यों पडता है, कर्मों का कर्ता कौन है, इन कर्मों का स्वरूप क्या है इन्हें कौन तोड सकता है ? स सार में कर्म ब ध के मुख्य कारण हिंसा और परिग्रह हक्त । साथ ही पारिवारिक मोह स ब ध भी स सार का मुख्य हेतु है । प्राणियों की हिंसा करने से या दुःख देने से आत्मा में वैर की वृद्धि होती है । ममत्वभाव युक्त पदार्थों का स ग्रह करना परिग्रह कहलाता है और पारिवारिक लोगो में अत्य त मोह-मूर्च्छा, आसक्ति दुःख हेतुक है । इस प्रकार आत्मस्वरूप, कर्मस्वरूप तथा ब ध और मुक्त होने का स्वरूप एव कर्म ब ध के मुख्य एव अन्य सभी हेतुओं को जानना चाहिये और इन ब ध के हेतुओं का सर्वथा या आ शिक त्याग करना ही मुक्ति की साधना है । यही स्वसिद्धा त है । इसे समझे बिना अन्य भिन्न भिन्न सिद्धा तों में फ स कर प्राणी आर भ परिग्रह में या काम भोगों में आसक्त रहतेक्त ।

मूल पाठ में मुख्यता और स क्षिप्तता से कहा गया है । विस्तार की अपेक्षा असत्य, चोरी, कुशील आदि सभी पापों एव आश्रवस्थानों को समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न–३ : अन्य भिन्न भिन्न सिद्धा त इस अध्ययन में कौन से कहे गयेक्त ?

उत्तर– सातवीं गाथा से अठारवीं गाथा तक इस अध्ययन के प्रथम

उद्देशक में ६ प्रकार के सिद्धा त–मतमता तर बताये हक्त, वे ये हक्त– (१) पाँच महाभूतवाद (२) एकात्मवाद (३) तज्जीव-तत्शरीरवाद (४) अकारक वाद (५) आत्मषष्टवाद (६) क्षणिकवाद– इसके दो रूप हक्त– १. प च स्क धवाद २. चार धातुवाद । इसके अतिरिक्त (७) नियति-वाद (८) अज्ञानवाद (९) कर्मोपचयनिषेधवाद (क्रियावादी) (१०) जगत्कर्तृत्ववाद (११) अवतारवाद (१२) लोकवाद । वगेरे स ब धी स केत भी है ।

प्रश्न–४ : पाँच महाभूतवाद सिद्धा त क्या है ?

उत्तर– पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत सर्वलोक व्यापी एव सर्व जन प्रत्यक्ष होने से महान है । इनके अतिरिक्त आत्मा आदि कोई पदार्थ नहीं है । इन पा च महाभूतों के मिलने से चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है पर तु वह पाँच तत्त्वों से भिन्न नहीं है क्यों कि वह पाँच भूतों का ही कार्य है । इस प्रकार इस मतवाले आत्मा, परलोक, पुनर्जन्म आदि तथा शुभ-अशुभ कर्म और उनके फल, कर्ता-भोक्ता आदि कुछ भी स्वीकार नहीं करते हक्त । ये प्रत्यक्ष को स्वीकार करते हक्त, अनुमान आदि को नहीं स्वीकारते ।

जो कि पुनर्जन्म और परभव आदि का होना अनेक प्रमाणों से सिद्ध है । उसे नहीं मानने से दान, धर्म, सेवा, परोपकार, मोक्षसाधना आदि सब निष्फल हो जायेंगे । हिंसा चोरी अराजकता अव्यवस्था का बोलबाला हो जायेगा । पाँच भूतों का गुण चैतन्य नहीं है अत: वह उनके स योग से उत्पन्न नहीं हो सकता । ऐसा हो तो मिट्टी आदि को मिला कर बनाए गये पूतले में भी चेतना गुण पैदा क्यों नहीं होता ? पाँच तत्त्व शरीर में रहते हुए भी प्राणी के मर जाने पर उस शरीर में चेतना तत्त्व क्यों नहीं रहता ? जब कि पाँचों तत्त्व तो रहते ही हक्त । पा च इन्द्रिया भी पाँच भूत से उत्पन्न है उनका गुण भी चैतन्य नहीं है । एक इन्द्रिय दूसरे इन्द्रिय विषय को जान नहीं सकती । पर तु पाँचों इन्द्रियों से होने वाले ज्ञान को उपस्थित रखने वाला चैतन्य तत्त्व अलग ही है ।

निष्कर्ष यह है कि पाँच भूतवाद का सिद्धा त मिथ्यात्वग्रस्त है, अज्ञानमूलक है । अत: कर्म ब ध और स सार वृद्धि का कारण है । यह चार्वाकों का मत है, उन्हें लोकायतिक भी कहते हक्त ।

प्रश्न–५ : एकात्मवाद सिद्धा त क्या है ?

उत्तर– समस्त लोकव्यापी एक ही आत्मा है, अलग-अलग दिखने वाले जीव भ्रम मात्र है । पृथ्वी एक है फिर भी उसके जगह जगह भिन्न-भिन्न रूप दिखते है पहाडादि । वैसे ही एक ही आत्मा अनेक रूपों में दिखती है । पृथ्वी से बनने वाले घडे आदि अनेक रूपों में भी पृथ्वी तो एक ही है । पानी से भरे अनेक घडों में अलग-अलग च द्र दिखते हक्त फिर भी च द्र एक ही है । वैसे ही उपाधि भेद से एक ही आत्मा अनेक रूपों में दिखती है ।

वास्तव में यह युक्ति विहीन सिद्धा त है । पूरे विश्व में एक ही आत्मा मानने पर निम्न आपत्तियाँ आती है– (१) एक व्यक्ति पाप चोरी आदि करेगा, उसका फल सभी को भुगतना पडेगा । (२) एक के कर्मब धन में पडने पर सभी को कर्मब धन में पडना पडेगा और एक के मुक्त हो जाने पर सभी की मुक्ति हो जायेगी । इस प्रकार ब ध और मोक्ष की व्यवस्था भी नहीं रहेगी (३) एक जन्म मरण या कार्य प्रवृत्त होने पर सभी का जन्मना मरना आदि होगा जो कदापि स भव नहीं है । (४) जड चेतन सभी में एक आत्मा लोकव्यापी मानने पर आत्मा का ज्ञानगुण जड में भी मानना पडेगा (५) एक का ज्ञान दूसरे में भी मानना पडेगा जो अस भव है । (६) उपदेष्टा और उपदेशक तथा श्रोता और परिषद तथा वक्ता सभी एक ही है तो उपदेश और शास्त्र रचना आदि की कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी । गुरु-शिष्य, अध्ययन-अध्यापन आदि भी व्यर्थ सिद्ध हो जायेंगे । शास्त्रकार कहते हक्त कि प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि जो पाप कर्म करता है वही उसका फल अकेले भोगता है, सभी को नहीं भोगना पडता है ।

इस प्रकार सारे विश्व के सजीव निर्जीव पदार्थों में एक आत्मा व्यापक मानना युक्तिस गत नहीं है । व्यवहार स गत और बुद्धि गम्य भी नहीं है । कि तु मिथ्यात्व के तीव्र उदय से कितने लोग ऐसा सिद्धा त स्वीकार करते हक्त । उत्तर मीमा सा(वेदा त) दर्शन का यह मत है ।

प्रश्न–६ : तज्जीव तत्शरीरवाद क्या है ?

उत्तर– शरीर है वही जीव है, जीव है वही शरीर है । शरीर उत्पन्न होने पर आत्मा की अभिव्यक्ति होती है । शरीर विनष्ट होने पर आत्मा कहीं जाती हुई दिखती नहीं है इसलिये वह शरीर से अभिन्न है ।

इस सिद्धा त में शरीर की बात करी है और पूर्व सिद्धा त में पाँच भूत से चेतनत्व की उत्पत्ति मानी है अर्थात् पाँच भूत मिलने पर वे ही चैतन्यशक्ति स पन्न होकर चलने, बोलने आदि की क्रिया करने लग जाते हक्त । इस सिद्धा त के अनुसार पुण्य-पाप कुछ नहीं होते । लोक-परलोक, शुभाशुभ कर्म फल नहीं होते, कि तु शरीर के विनाश के साथ आत्मा का विनाश हो जाता है । वह कहीं जाता नहीं और कोई फल भोगता नहीं है ।

राजप्रश्नीय सूत्र में इस सिद्धा त के पक्ष, विपक्ष की विस्तृत चर्चा है । इस मान्यता वालों का कहना है कि जगत में जो भी विचित्रता नजर आती है वह सब स्वभाव से होता है पूर्व कृत कर्म मानने की आवश्यकता नहीं है । यह एक प्रकार का नास्तिक दर्शन है । ऐसा मानने पर जगत में शुभ कर्म करने के प्रोत्साहन समाप्त हो जाते हक्त ।

वास्तव में विचित्रता को स्वभाव कहने पर भी उस स्वभाव के पीछे कारण ढू ढा जाय तो पूर्वकृत कर्म स्वीकारना जरूरी होगा, उसके बिना स सार व्यवस्था भी नहीं चल सकती । एक साथ जन्मे दो बालकों में से एक रोता है एक नहीं, एक बीमार है एक स्वस्थ और एक शीघ्र मर जाता है एक दीर्घायु होता है; इन एक सरीखे तत्त्वों की भिन्नता के पीछे पूर्वकृत कर्म तत्त्व अवश्य होता है । उसी के कारण यह सारी स सार व्यवस्था और विचित्रता चलती है ।

इस सिद्धा त को मानने वाले भी इहलौकिक सुखों में आसक्त होकर एव धर्म आराधन तथा शुभकार्यों से व चित होकर अपने जन्म मरण की वृद्धि करते हक्त ।

प्रश्न–७ : अकारकवाद सिद्धा त क्या है ?

उत्तर– इस सिद्धा त में आत्मा को अकर्ता अक्रिय माना गया है । काच के स्वभाव से जैसे स्वत: प्रतिबि ब पडता है वैसे ही प्रकृतिक विकार पुरुष में(आत्मा में) प्रतिबि बित होते हक्त । जैसे आकाश निष्क्रिय है फिर भी उसमें अनेक रूप प्रतिभाषित होते हक्त वैसे आत्मा में अनेक क्रियाएँ प्रतिभाषित होती है । आत्मा स्वय आकाशवत् निष्क्रिय है ।

वास्तव में आत्मा को अक्रिय मानने पर कोई अकृत कर्म का फल भोगेगा, कोई कृत कर्म से व चित हो जायेगा, एक के अशुभ कर्तव्य से सभी दु:खी होंगे । नरकादि चार गति और मोक्ष मानना भी

अर्थ शून्य होगा । इस सिद्धा त को मानने वाले सा ख्यमत वालों की अनेक प्रकार की साधनाएँ व्यर्थ होगी । इस मत में आत्मा और आत्मा की समस्त क्रियाएँ मानते हुए भी आत्मा को निर्लेप और अकर्ता माना गया है । जब कि सुखी दु:खी होते हुए जीव प्रत्यक्ष सिद्ध है और यह सब अनुभव जीव को ही हो सकता है । फिर भी मिथ्यात्व के उदय से ऐसा मानने वाले अनेक लोग होते हक्त । नरक स्वर्ग मोक्ष मानते हुए भी ये आत्मा को अकर्ता मानकर उसे नरक आदि में जाना भी स्वीकार करते हक्त । शास्त्रकार कहते हक्त कि ये अज्ञान अ धकार से स सार अ धकार में भ्रमण करने वाले होते हक्त– **तमाओ ते तम ज ति, म दा मोहेण पाउडा ।**

प्रश्न–८ : आत्म षष्टवाद क्या है ?

उत्तर– इस सिद्धा त वाले पाँच भूत और आत्मा इन छहों तत्त्वों का स्वत त्र अस्तित्व स्वीकारते हक्त कि तु एका त रूप से छहों को नित्य अविनाशी मानते है । कथ चित् नित्य, कथ चित् अनित्य; द्रव्य की अपेक्षा नित्य, पर्याय की अपेक्षा अनित्य; ऐसा नहीं मानते । एका त नित्य का मिथ्याग्रह पकडना ही उनका अयोग्य है ।

प्रश्न–९ : क्षणिकवाद का सिद्धा त क्या है ?

उत्तर– इस सिद्धा त वाले प्रत्येक तत्त्व की प्रतिक्षण उत्पत्ति और विनाश मानते हक्त । ये पदार्थ की परिवर्तित होने वाली पर्याय को द्रव्य का परिवर्तित होना मान लेते हक्त । द्रव्य और पर्याय का विभाग नहीं मान्ते हक्त ।

ये दो प्रकार के हक्त (१) पाँच स्क ध मानने वाले (२) चार धातु मानने वाले । पाँच स्क ध ये है– (१) रूपस्क ध (२) वेदनास्क ध (३) स ज्ञास्क ध (४) स स्कारस्क ध (५) विज्ञानस्क ध । शीत आदि विविध रूपों में विकार प्राप्त होने के स्वभाव वाला जो धर्म है वह सब एक होकर **रूपस्क ध** बन जाता है । सुख दु:ख वेदन करने के स्वभाव वाले धर्म का एकत्रित होना **वेदनास्क ध** है । विभिन्न स ज्ञाओ के कारण वस्तु विशेष को पहिचानने के लक्षण वाला स्क ध **स ज्ञास्क ध** है । पुण्य पाप अदि धर्म-राशि के लक्षण वाला स्क ध **स स्कारस्क ध** है । जो जानने के लक्षण वाला है उस रूपविज्ञान रसविज्ञान आदि विज्ञान समुदाय को **विज्ञानस्क ध** कहते हक्त । इन पा च स्क धो के अतिरिक्त

आत्मा नामका कोई पदार्थ नहीं है । इन्हीं **पा च स्क धो** से स सार चलता है । आत्मा को नहीं मानना स्वय का इन्कार करना है । जब स्वय कोई तत्त्व नहीं है तो कर्तापन भोक्तापन आदि कुछ नहीं रहता है । स्वर्ग नरक मानते हुए भी आत्मा बिना उनका कोई अर्थ नहीं रहता है । कौन स्वर्ग में जाता है, कौन नरक में जाता है ऐसा कोई निर्णय नहीं होता है ।

अत: यह क्षणिकवाद भी आत्मकल्याण साधना में अपूर्ण है, अयोग्य है **।१॥** पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन **चार धातुओं** को ही सर्व जगत मानते हक्त ये भी आत्मा को या चार के अतिरिक्त किसी तत्त्व को नहीं मानते । ये भी पदार्थ को क्षण विनाशी मानते हक्त **।२॥**

शास्त्रकार ने इन सभी को अफलवादी कहा है । इस प्रकार के एका त सिद्धा त से आत्मा और कर्म तथा उनके फल भोगने की व्यवस्था बराबर नहीं हो सकती है ।

फिर भी ये सभी मत वाले यह कथन करते हक्त कि हमारे मत को स्वीकार करलो इसी से तुम्हारी मुक्ति(सिद्धि) हो जायेगी, कल्याण हो जायेगा । पर तु वास्तव में आत्मा और कर्मब ध विमोक्ष का सही स्वरूप समझे बिना, माने बिना कोई साधना और उसका प्रतिफल हो नहीं सकता है । क्यों कि किसी के मत में आत्मा नहीं है, किसी में परभव पुनर्जन्म नहीं है, किसी में आत्मा अक्रिय है अकर्ता है तो फल भोक्ता भी नहीं है । तो फिर उनके लिये भी कोई साधना की आवश्यकता नहीं रहती ।

अत: आत्म द्रव्य का सही स्वरूप स्वीकार करना, धर्म साधनाओं के लिये प्रथम जरूरी है । अन्यथा मिथ्या समझ के कारण सही साधना और सही परिणाम प्राप्त होना स भव नहीं है ।

प्रश्न–१० : नियतिवाद का सिद्धा त क्या है ?

उत्तर– नियतिवादी एका त नियति से ही सारे स सार के कार्यों की निष्पत्ति मानता है । वह काल, स्वभाव, कर्म और पुरुषार्थ को कार्य के होने में आवश्यक नहीं मानता है । उनका कहना है कि एक सरीखे काल में काम करने वाले दो व्यक्ति में एक सफल होता है एक असफल । एक ही सरीखे स्वभाव वाले अनाज में कोई उगता है कोई नहीं । अत: कार्य के होने में एक मात्र नियति ही कारण है ।

जैन दर्शन में नियति सहित काल स्वभाव आदि पाँचों समवाय को स्वीकारा है । क्यों कि अनेक कार्यों की निष्पति में स्वभाव प्रमुख होता है । कई कार्यों के होने में काल प्रमुख होता है सर्वत्र एक सा नियम नहीं होता है । नीम का झाड लगने में नीम के बीज का स्वभाव, परिपक्व होने का काल, पुरुषार्थ एव आकर उगने वाले जीव का आयुष्य आदि कर्म भी कारण भूत होते हक्त । कभी स्वभाव के बिना कार्य नहीं होता, कभी नियति के बिना कार्य नहीं होता और अनेक कार्य पुरुषार्थ करने से होते हक्तकि तु पुरुषार्थ बिना नहीं होते । अत: ये पाँचों समवाय–स योग कार्य सिद्ध होने में सापेक्ष है । एका त नियतिवाद को स्वीकारने पर और अन्य की उपेक्षा या निषेध करने पर कई स सार व्यवहार भी नहीं चल सकते ।

एका त आग्रह के कारण नियतिवाद भी दूषित है । वह व्यक्ति के लिये पुरुषार्थ प्रेरक न होकर पुरुषार्थ हीन होने का प्रेरक बनता है । पुरुषार्थ में अनुत्साह पैदा करता है जब कि स सार व्यवहार में सर्वत्र पुरुषार्थ की अतीव आवश्यकता रहती है ।

प्रश्न–११ : अज्ञानवाद का सिद्धा त क्या है ?

उत्तर– अज्ञानवादी किसी के पास जाने का, स गति-सत्स ग करने का, ज्ञान हँासिल करने का ही निषेध करते हक्त । ज्ञान के अभाव में वे स्वय अज्ञानी होने से दूसरों को क्या मार्गदर्शन दे सकते ? अर्थात् स्वय अज्ञान में डूबे व्यक्ति दूसरों को ज्ञान नहीं दे सकता । अ धा व्यक्ति दूसरों को मार्ग कैसे बता सकता है ? अ धे व्यक्ति के पीछे चलने वाले उत्पथगामी होते हक्त । वैसे ही अज्ञानवादीओं की बात अनुसरण करने योग्य नहीं होती । शास्त्रकारने इन्हें मृग की उपमा दी है । जो त्राण स्थान में श कित होता है और जाल में फँस जाता है । वैसे ही अज्ञानवादी अज्ञान जाल में फँस जाते हक्त ।

अज्ञानवादी को किसी प्रकार के विमर्श की भी योग्यता नहीं हो सकती । क्यों कि विमर्श के लिये भी ज्ञान आवश्यक है । इस प्रकार वे अज्ञान के कारण स्वय के हित का विमर्श–विचार करने के भी अयोग्य होते है तो दूसरों को उपदेश देने या अनुशासित करने में कैसे योग्य हो सकते हक्त ? अज्ञान के कारण वे किसी को भी उपदेश निर्देश करने में सर्वथा अयोग्य और अ धे के समान होते हक्त ।

इस प्रकार अज्ञानवादी लोग स्वय अज्ञानी होते हुए भी अपने को प डित मानकर अन्य का सत्स ग भी नहीं करते एव तर्क-वितर्क मात्र से भोले लोगों को गुमराह करते हक्त । ये लोग कर्मों से एव दु:ख से नहीं छूट सकते । पींजरे के पक्षी के समान स सार में ही रहते हक्त, मुक्त नहीं हो सकते ।

प्रश्न–१२ : कर्मोपचय निषेधवाद-क्रियावादी दर्शन क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक की गाथा २४ से २९ में इस दर्शन का कथन किया गया है । व्याख्याकारों ने उसे बौद्ध मान्यता सूचित करी है । बौद्ध निम्न प्रकार की क्रिया को केवल क्रिया ही मानते हक्त उससे कर्मोपचय नहीं मानते, यथा– **(१)** कोई भी क्रिया चित्त शुद्धि पूर्वक की जाय उससे कर्मोपचय नहीं होता । पिता पुत्र को मारकर उसका मा स खावे । परिणाम और कारण शुद्ध है तो ब ध नहीं होता । **(२)** क्रोधावेश से मन में रौद्र विचार करे प्रवृत्ति नहीं करे तो कर्म ब ध नहीं होता **(३)** बिना स कल्प से अनजान असावधानी से जो क्रियाएँ होती है जिसमें मारने का परिणाम नहीं है तो हिंसा का कर्म ब ध नहीं होता अर्थात् भोजन व्यापार गमनागमन प्रवृत्ति में जहाँ हिंसा का स कल्प नहीं तो कर्मोपचय नहीं होता । **(४)** स्वप्न में होने वाले हिंसादि कार्य से भी कर्मोपचय नहीं होता । इन सर्व का आशय है कि मन और काया प्रवृत्ति साथ में हो तो कर्मोपचय होता है, अकेले मन या अकेली काया से नहीं ।

(१) उनके सिद्धा त अनुसार हनन किया जाने वाला प्राणी सामने हो **(२)** हनन कर्ता को यह भान हो कि यह जीव है **(३)** फिर हनन कर्ता को स कल्प हो कि मक्त इसे मारू , ऐसी स्थिति में उस प्राणी को कष्ट दिया जाय या मारा जाय, उसके प्राणों का वियोग हो जाय या उसे कष्ट पहुँचे तो कर्म ब ध होता है । वह जीव बच कर भाग जाय तो कर्म ब ध नहीं होता है ।

जैनदर्शन के अनुसार यह सारे विकल्प युक्त कर्म ब धन का कथन अज्ञानदशा के कारण है । स सार में एकेन्द्रिय से प चेन्द्रिय तक के प्राणी हैं । सभी को कर्म ब ध और स सार भ्रमण होता है । मन, वचन, काया तीनों के स योग से और स्वत त्र होने पर भी प्रत्येक योग और प्रत्येक कषाय से कर्म ब ध होता है । कोई भी क्रिया के फल स्वरूप

कर्मब ध नहीं हो, ऐसा नहीं होता है । तीव्र या म द कर्मब ध अवश्य होता है । अज्ञान दशा से या अपने स्वार्थ से कोई प चेन्द्रिय वध जानकर करे उसके परिणामों को विशुद्ध नहीं माना जा सकता । इसलिये पुत्र को मारकर खाने से भी कर्म ब ध नहीं होता ऐसा कथन तो अज्ञान भरा ही है । बिलकुल अस गत है ।

इस प्रकार की मान्यता के कारण ऐसी मान्यता वालों को कर्म चि ता से रहित कहा है । छिद्रों वाली नावा को चलाने वाला अ धा हो तो उसमें रहे यात्री सुरक्षित दशा में जल को पार नहीं कर सकते । वैसे ही इन एका तवादियों और अज्ञानियों की शरण में जाने वाले स सार पार नहीं कर सकते कि तु स सार में ही भ्रमण करते हैं ।

प्रश्न–१३ : जगत कर्तृत्ववाद सिद्धा त क्या है ?

उत्तर– चराचर पदार्थमय यह लोक किसने बनाया, कैसे बना आदि लोक की उत्पत्ति और उसका कर्ता किसी को मानना यह जगत कर्तृत्व वाद सिद्धा त है । इस विषय में शास्त्रकार ने अनेक मत बताये हक्त । वे इस प्रकार हक्त– (१) यह लोक देव द्वारा बना है (२) ब्रह्मा ने बनाया है (३) ईश्वर ने बनाया है (४) प्रधान(प्रकृति आदि के) द्वारा कृत है । (५) स्वय भू(विष्णु)ने बनाया (६) यमराज ने यह माया रची है । (७) अ डे से पृथ्वी उत्पन्न हुई है । उसमें तत्त्वों को ब्रह्मा ने बनाया है । अपने अपने आशय से विभिन्न प्रकार से ये अज्ञानीजन लोक की उत्पत्ति मानते हक्त कि तु वे यह नहीं समझते कि लोक शास्वत है । उसे किसी को बनाने की जरूरत ही नहीं है ।

वास्तव में लोकोत्पत्ति जानने की जरूरत नहीं है कि तु दु:खोत्पत्ति कैसे होती है यह जानना जरूरी है । अशुभ आचरणों से दु:ख उत्पन्न होता है । दु:ख की उत्पत्ति का कारण जाने बिना दु:ख को रोकने के उपाय रूप स वर को कैसे जान सकते हक्त ? पापाचरण ही दु:खोत्पत्ति का हेतु है और उसका त्याग ही दु:ख रोकने का उपाय है । लोक तो अनादि से है वह कभी नहीं था, ऐसा नहीं है ।

प्रश्न–१४ : अवतारवाद क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन के तीसरे उद्देशक की ११वीं १२ वीं गाथा में इस अवतारवाद का दिग्दर्शन है । इसे त्रैराशिक वाद भी कहा जा सकता है । इसमें जीव की तीन अवस्थाएँ मान्य है– (१) स सार अवस्था

(२) सिद्धअवस्था (३) अवतारअवस्था । इस मतवालों की यह मान्यता है कि क्रीडा हेतु या अधर्म विनाश और धर्मोत्थान के लिये महान आत्माएँ पुनः इस लोक में अवतार(स सारी रूप) स्वीकार करते हक्त । यह मान्यता वैदिक पर परा में प्रसिद्ध है । गीता आदि ग्र थों में भी स्पष्ट वर्णन है ।

जैन दर्शन की यह मान्यता है कि सिद्धात्मा कर्म रहित हो जाने से उनके स सार में पुनः आने का कोई कारण नहीं रह जाता । उनमें क्रीडा, राग या द्वेष कुछ नहीं है । जगत के उद्धार के लिये या धर्म के उद्धार के लिये एक से एक महान आत्माएँ स्वाभाविक ही मानव रूप में जन्म धारण करती रहती हक्त ऐसे ही यह स सार चक्र चलता रहता है ।

तीसरे उद्देशक की अ तिम गाथाओं में कहा गया है कि ये सभी मत–सिद्धा त वाले अपने अपने मत की प्रश सा और पुष्टि करते हक्त । अपने मत से सिद्धि होने का दावा करते हैं । वे स्वय सिद्धि को प्राप्त करने का लक्ष्य रखते हुए भी अपने अयोग्य आशय में अवबद्ध रहते हैं उसे सही स्वरूप में समझने या छोडने को तत्पर नहीं हो सकते । इस कारण मिथ्यात्व अज्ञान में रह कर वे सही साधना के अभाव में स सार में ही भ्रमण करते रहते हक्त ।

प्रश्न–१५ : लोकवाद क्या है ?

उत्तर– लोक में प्रचलित धारणाओं को आधारभूत–अनाधारभूत कथन पर पराओं को यहाँ चौथे उद्देशक में लोकवाद से सूचित किया गया है । बहुचर्चित विषय भी लोकवाद कहे जा सकते हक्त । यथा– **(१)** अनेक प्रकार के अवतार स ब धी कथन **(२)** यह लोक सात द्वीप मय है **(३)** लोक अन त है इसका पार नहीं है **(४)** जो पदार्थ अभीष्ट और मोक्षोपयोगी है उन्हें देखने वाले सर्वज्ञ होते हक्त किंतु स सार के समस्त कीडों को देखने की आवश्यकता सर्वज्ञ को नहीं होती । **(५)** पुत्र के बिना गति नहीं सुधरती, स्वर्ग नहीं मिलता **(६)** वह पुरुष अवश्य ही श्रृगाल बनता है जो विष्टा सहित जलाया जाता है । **(७)** कुत्ते यक्ष है, ब्राह्मण देव हक्त । **(८)** जो ब्राह्मणों को वाद में हराता है वह स्मशान में वृक्ष होता है । **(९)** ब्रह्मा सोते हक्त तब जगत का प्रलय हो जाता है । **(१०)** मृतक की इच्छा पूर्ति नहीं होती तब तक वह प्रेतात्मा रूप में यहीं भटकता है । **(११)** जो जैसा है वैसा ही बनता है । त्रस जीव,

त्रस ही रहता है, स्थावर जीव स्थावर ही रहता है । वैसे ही स्त्री, पुरुष, मनुष्य, गाय, पक्षी आदि जो जैसा है मर कर वैसा ही बनता है । दूसरे रूप को धारण नहीं करता । स्त्री मरकर स्त्री ही बनती । गाय मर कर गाय ही बनती । इत्यादि अनेक तरह की कि वद तियाँ चल जाती है, चला दी जाती है ।

बिना प्रमाण की या विस गत-अस गत मान्यताएँ उपादेय नहीं हो सकती है । लोकवाद में सेकडों बातों का समावेश हो सकता है । उनमें सत्य या ग्राह्य भी कोई हो सकती है । पर तु बहुलता भ्रामक तत्त्वों की ही होती है । अतः आत्मकल्याण के साधक को आगम प्रमाण से प्रमाणित और कल्याणकारी तत्त्वों की ही शोध करनी चाहिये । लोकवाद में नहीं बह जाना चाहिये ।

प्रश्न–१६ : इस अध्ययन में मत मता तर के सिवाय कोई विषय है ?

उत्तर– इस अध्ययन के तीसरे उद्देशक में आधाकर्म दोष के आ शिक मिश्रण से दूषित पूतिकर्म आहार सेवन से स यम के दूषित होने का कथन किया गया है और चतुर्थ उद्देशक के अ त में अहिंसा धर्म और चारित्र शुद्धि, आहार आदि की विशुद्धि तथा कषाय त्याग प्रेरणात्मक मोक्षमार्ग का कथन किया गया हक्त ।

दूसरा अध्ययन : वैतालीय

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में उद्देशक कितने हक्त, उनमें मुख्य क्या विषय है और इस अध्ययन के नाम की सार्थकता कैसे है ?

उत्तर– इस अध्ययन के तीन उद्देशक हक्त उनमें मुख्य विषय कर्म क्षय करने का अर्थात् कर्म विदारण का है । इसके स दर्भ में वैराग्यप्रद उपदेश, स यम आराधना हेतु हितशिक्षाएँ, कषाय विजय, परीषह जय कष्टसहिष्णुता आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है । अ त में अज्ञानी जीवों की दशा और मुक्ति साधना की प्रेरणा दी गई है । इस प्रकार कर्म विदारण का उपदेश होने से इस अध्ययन का वैतालीय नाम सार्थक है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन के प्रार भ में भगवान ऋषभदेव के द्वारा अपने ९८ पुत्रों को दिया गया उपदेश है ?

उत्तर– इस अध्ययन के प्रार भ की ५–६ गाथा में जीवन की क्षणभ गुरता बताते हुए स बोधि प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है । वहाँ अन्य कुछ भी स केत नहीं है जिससे इन गाथाओं का स ब ध ऋषभदेव भगवान से जोडा जाय । पर तु टीकाकार श्री शीला काचार्य ने भगवान ऋषभदेव और ९८ पुत्रों से इस उपदेशी गाथाओं का स ब ध जोडा है । उसके आधार से अर्थ पर परा में यह कथन विवेचन किया जाता है कि भगवान ने ९८ पुत्रों को जो कि राज्य के विषय में सलाह लेने आये थे, उन्हें जो उपदेश दिया वह इन गाथाओं में स कलित है ।

प्रश्न–३ : क्या माता-पिता पूर्व दीक्षित पुत्र को घर में लाने का प्रयत्न करते हक्त ? ऐसा स भव है ?

उत्तर– इस अध्ययन के प्रथम उद्देशक की गाथा १६ से २० में इस प्रकार का वर्णन है वहाँ की शब्द रचना के सीधे अर्थ अनुसार तो यही फलित होता है कि पूर्व दीक्षित साधु के लिये माता-पिता आदि पारिवारिकजनों द्वारा उपसर्ग आवे उसमें वह कि चित् भी चलित नहीं होवे ।

वास्तव में चि तन या अनुभव करने से इस प्रकार होना कम स भव लगता है क्यों कि वर्षों की दीक्षा के बाद तो परिवार के लोग प्राय: धर्म से भावित हो जाते हक्त उनमें ऐसे उपसर्ग करने की स्थिति या मानस नहीं रहता है । सूत्र में वर्णित विषय भाव दीक्षित, दीक्षार्थी के लिये ज्यादा स गत होता है और सूत्रोक्त सारे प्रस ग कोई दीक्षार्थी के जीवन में आज भी घटित होते हक्त पर तु पूर्व दीक्षित साधु के साथ ऐसा घटित होने का कोई दृष्टा त आगम में या प्रत्यक्ष अनुभव में नहीं आता है ।

उत्तराध्ययन के १४ वें अध्ययन में भृगु पुरोहित और पुत्रों के स वाद के प्रस ग में वहाँ भी 'अह तायगो तत्थ मुणीण तेसि ' ऐसा पाठ है यहाँ भी अदीक्षित पुत्रों को मुनि शब्द से सीधा कहा गया है । आचारा ग सूत्र में भी पुत्र के लिये माता पिता का विलाप आदि बताया गया है वहाँ के शब्दों से भी साधु बन गये पुत्र की अपेक्षा का अर्थ निकलता है फिर भी वहाँ– **मा णे चयाहि** शब्द होने से स्पष्ट हो जाता है कि अभी तक पुत्र ने मातापिता का त्याग किया नहीं है पर तु करना चाहता है, जिसे पिता कह रहे हक्त कि तुम हमें अभी मत छोडो । क्यों कि इस

प्रकार माता-पिता को उनकी इच्छा बिना छोडने वालों का कल्याण नहीं हो सकता । इसी प्रकार आचारा ग सूत्र में भी मुनि शब्द से दीक्षार्थी होने का और माता पिता द्वारा चलित करने का प्रस ग वर्णित है ।

टीकाकार ने आचारा ग सूयगडा ग दोनों सूत्रों में पूर्व दीक्षित साधु की अपेक्षा ही अर्थ घटित किया है और इसे उपसर्ग रूप माना है । साधु इस उपसर्ग के समय स यम में अटल रहे और मोह में न फँसे ऐसा उपदेश का स ब ध कहा है । पर तु गहन दृष्टि से विचारणा करने पर ये सारे प्रस ग दीक्षा पूर्व भाव मुनि–वैरागी–दीक्षार्थी की अपेक्षा है ऐसा स्पष्ट फलित होता है । अत: परिवारिक लोगो के द्वारा प्राप्त उपसर्ग स ब धी सभी आगम वर्णन भावदीक्षित की अपेक्षा समझ लेने पर अस गति स ब धी मानसिकता का सही समाधान हो जाता है और ऐसा स्वीकारना आगमकारों के आशय से अनुकूल भी है ।

प्रश्न–४ : इस अध्ययन में वैराग्यमय उपदेश किस-किस प्रकार है ?

उत्तर– **(१)** बीती हुई रात्रियाँ वापिस नहीं आती । **(२)** मनुष्य जीवन पुन: मिलना मुश्किल है । **(३)** प्राणी स्वय कर्म बा धता है फिर उसका फल उसे ही भुगतना पडता है । **(४)** गर्भ से लेकर वृद्धता तक की सभी अवस्थाओं में आयुष्य समाप्त होने पर जीव मर जाते हक्त अर्थात् मृत्यु का कोई समय नहीं **(५)** परिवार में मोह रखने से सद्गति मिलने वाली नहीं है । **(६)** देव, दानव, राजा, सेठ, पशु, कीडे सभी आयु समाप्त होने पर दु:खी होकर भी अपने स्थान को छोडते ही हक्त । **(७)** विपुल भोग सामग्री और परिवार है तो भी जीव को अकेले ही अकेले कर्मों के साथ जाना पडता है । **(८)** मनुष्य जीवन नाशवान है यह जानकर, हे पुरुष ! पाप कार्यों का त्याग कर । **(९)** यह जीवन बढाया नहीं जा सकता फिर भी अज्ञानी प्राणी वर्तमान को ही देखते हैं और कहते हक्त कि परभव किसने देखा है ? **(१०)** गृहस्थ जीवन में भी प्राणियों का स यम करे, समता भाव में रहते हुए व्रतों का आराधन करे तो वह व्यक्ति भी देवगति में जाता है । **(११)** धन परिवार को बाल-अज्ञानी जीव शरणभूत मानते है कि तु दु:ख या मौत आने पर अकेले ही भुगतना पडता है । **(१२)** स सार में प्राणी अपने-अपने किये कर्मों के फल से व्यक्त या अव्यक्त दु:खों से दु:खी होकर भटकते रहते हक्त । **(१३)** इस मनुष्य भव के अवसर को समझो ! अन्यत्र ऐसी बोधि और आराधना

दु:शक्य है । **(१४)** गृहस्थ जीवन इस लोक में भी दुष्कर है और परभव में भी दु:खकर है यह समझ कर कौन घर में रहेगा ?

प्रश्न–५ : इस अध्ययन में स यम स ब धी शिक्षाएँ प्रेरणाएँ क्या है ?

उत्तर– **(१)** साधु यदि बहुश्रुत है या तपस्वी–महातपस्वी भी है कि तु क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि किसी में भी मूर्च्छित होता है; डूब जाता है; उसमें तल्लीन रहता है तो वह जन्म मरण से मुक्त नहीं हो सकता । **(२)** इस पृथ्वी पर अनेक सूक्ष्म और कठिनता से दिखने वाले प्राणी बहुत होते हक्त अत: प्रत्येक प्रवृत्ति यतना और विवेक से करनी चाहिये । **(३)** स सार में मक्त ही एक दु:खी नहीं हूँ मेरे से बढकर भी कितने प्राणी दु:खी है; ऐसा सोचकर मुनि कष्टों को सहन करे, अनशन आदि से देह को कृश करे **(४)** पक्षी पा खो को फडफडाकर रज आदि को दूर कर देते हक्त उसी तरह मुनि कर्मों को तप द्वारा क्षय कर डाले । **(५)** परिवार वालों के मोह में पुन: न फँसे **(६)** वैतालिक मार्ग(कर्म विदारण के मार्ग रूप) जिनमार्ग को पाकर मन वचन काया से स वृत बने । आर भ समार भ, ज्ञातिजन एव धन आदि का त्याग कर स यम में विचरे । **(७)** मुनि अपने कुल आदि का या गुणो का गर्व न करे, दूसरों के अवगुण आदि की हीलना, गर्हा, निंदा न करे । पर निंदा पापकारी है । **(८)** किसी का तिरस्कार न करे । पर निंदा या तिरस्कार महान स सार भ्रमण कराने वाले हक्त । **(९)** मुनि समता में रहे । चाहे कोई मारे पीटे तो भी स यम में रहे, स यम को दूषित न करे, क्रोध-मान भी न करे । बहुत श्रमण समुदाय शिष्य समुदाय में रहे तो भी निर्लेप रहे । कर्मब ध नहीं करे । **(१०)** मुनि जीवन में मिलने वाली जितनी भी पूजा, प्रतिष्ठा, प्रश सा, व दनादि है ये सब सूक्ष्म का टों के समान है । मुनि उन्हें कीचड समझकर सावधानी से चले । इनमें फँस नहीं जाय । **(११)** विशेष कर्म निर्जरार्थ मुनि योग्यता प्राप्त कर एकाकी भाव में विचरे । एकाकी स्थान, शय्या आदि में विचरण करे । निर्भय होकर कष्टों को सहन कर शरीर का मोह न रखे । दूसरे उद्देशक की गाथा १२ से १७ तक विशिष्ट तप हेतुक एकलविहार साधना का कथन है । प्रकृति या परिस्थिति से अकेले विचरण करने वाले साधुओं का यहाँ प्रस ग नहीं है । **(१२)** झगडे करना योग्यायोग्य बोलना इससे बहुत स यम खराब होता है मुनि ऐसा कभी न करे । **(१३)** जो गृहस्थ के बर्तनों में नहीं खाता है उसी के

सामायिक–स यम कहा जाता है । **(१४)** विकथा प्रश सा में न पडे । गृहस्थों के प्रप च में न पडे, कहीं भी ममत्व न जमावे । **(१५)** क्रोधादि चारों कषायों का विवेक के साथ त्याग करे । यहाँ दूसरे उद्देशक की २६ वीं गाथा में इन शब्दों का प्रयोग है– **छण्ण** =माया, **पस स**=लोभ, **उक्कोस**= मान, **पगास**=क्रोध । **(१६)** गुरु के छ द में रहकर अनेक प्राणी तिर गये हक्त। **(१७)** कामभोगों को रोगवत् देखकर दूर रहने वाला ऊपर उठ जाता है । **(१८)** शाता प्रिय साधक कभी समाधि को प्राप्त नहीं कर सकते । **(१९)** अपने को इस तरह अनुशासित करते रहो कि कभी स यम से न घबराओ । **(२०)** आर भ समार भ में पडने वाले आसुरीगति में जाते हक्त । **(२१)** स यम को अच्छी तरह समझ कर ही धारण करें फिर तप में पराक्रम करें । सदा आत्मपरायण और मोक्षलक्षी रहो । **(२२)** कषायों को दूर करे, शुद्ध आहार ग्रहण करे **(२३)** आत्महित चाहने वाला मुनि तीन करण, तीन योग से किसी भी प्राणी की हिंसा न करे ।

तीसरा अध्ययन : उपसर्ग परिज्ञा

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में उद्देशक कितने हक्त, उनमें मुख्य क्या विषय है तथा इसके नाम की सार्थकता कैसे है ?

उत्तर– इस अध्ययन में चार उद्देशक हक्त । उनमें विविध प्रकार के उपसर्गों में सुरक्षित रहने का उपदेश है । उपसर्ग प्रतिकूल-कष्टदायक भी वर्णित है, स यम स ब धी परीषह रूप भी है, मोहजनित भी कहे गये हक्त और अन्यतीर्थिकों द्वारा आने वाले आचारविचार स ब धी भी हक्त । उपसर्गों का ज्ञान और उनसे सावधानी का वर्णन होने से इस अध्ययन का "उपसर्ग परिज्ञा" नाम भी सार्थक है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में परीषह रूप उपसर्ग किस प्रकार कहे हक्त ?

उत्तर– इस अध्ययन के प्रथम उद्देशक में परीषह रूप उपसर्ग दृष्टा तों से अल कृत भाषा में कहे गये हक्त । वे इस प्रकार हक्त– (१) शीत-उष्ण का (२) याचना– हीन तिरस्कृत शब्दों का (३) वध परीषह– कुत्ते काटने का (४) आक्रोश– कटु वचन का (५) डा स-मच्छर का (६) केश लोच का (७) ब्रह्मचर्य स ब धी (८) वध ब धन का (९)समस्त स यमचर्या का ।

(१) शीत परीषह के वर्णन में कहा है कि राज्य से हीन बने क्षत्रिय के समान शीत लहर की ठ डी में कई साधु विषाद का अनुभव करते हक्त । गर्मी में ताप और प्यास से कई साधु अल्प पानी में तडफने वाली मछली के समान दु:खानुभव करते हक्त **(२)** गोचरी में कई बाल-अज्ञानी लोग कहे कि देखो ये बिचारे कर्म फल भोग रहे हक्त, अभागे हक्त, इत्यादि वचन सुनकर कई म द साधु स ग्राम में गये डरपोक व्यक्ति के समान मन में दु:खी होते हक्त **(३)** कुत्तों के काटने पर कई म दबुद्धि साधक, अग्नि में जलने पर दु:खी होते हुए प्राणियों के समान दु:खी होतेहक्त **(४)** मार्ग में सामने आते हुए लोग कहे– देखो ये म गते(मा ग कर जीने वाले) हक्त । ये कर्मों का फल भोग रहे हक्त, न गे पैर गमी-ठ डी में चल रहे हक्त, ये तो नागे बाबा हक्त, ये पेट्टू=पेट भरने वाले हक्त, ये मु डे= केश रहित हक्त, ये अधम–निम्न लोग हक्त, इसके शरीर को देखो ! मैल से भरा है, आलसी है, स्नान भी नहीं करते, कैसे बेडोल खराब दिख रहे हक्त! अरे, दुर्गंध आ रही है, ग दे हक्त; इत्यादि वचन साधु समभाव से सहन करे । उनके बोलने से साधु का कुछ भी बिगाड नहीं होता, वे स्वय कर्मब ध करतेहक्त । **(५)** कोई साधु डा स मच्छर काटने पर हैरान हो जाते हक्त**(६)** कोई लोच से दु:खी होते हक्त । **(७)** कोई ब्रह्मचर्य पालने में कायर हो जाते हक्त, वे जाल में फँसी मछली के समान क्लेश पाते हक्त **(८)** कई अनार्य मजाक या द्वेष वश साधु को पीडा देते, कोई चोर व्यभिचारी कहकर बा धते, कषाय युक्त वचन कहते, गालियाँ देते । ड डे मुट्ठी भाले आदि से भी कोई प्रहार करते । ऐसे समय में कोई साधक अपने ब धुओं को इसी प्रकार याद करता है जिस प्रकार क्रोधित होकर घर से भाग जाने वाली स्त्री, पीछे से दु:खी होने पर घरवालों को याद करती है । **(९)** कई साधक स यम ग्रहण के समय अपने आपको शिशुपाल के समान शूरवीर समझते हक्त पर तु जैसे सामने आकर कृष्ण को युद्ध करते देखकर शिशुपाल के छक्के छूट जाते हक्त वैसे ही कई कच्चे साधक स यम के परीषह उपसर्ग आने पर हैरान हो जाते हक्त ।

शास्त्रकार कहते हक्त कि ऐसे अनेक कष्ट परीषह स यम में आते हक्त । इसके लिये योग्य धैर्य स जोकर ही दीक्षा लेना चाहिये अन्यथा जो कायर साधक होते हक्त, वे ऐसे स यम के कष्टों में घबराकर पुन: घर चले जाते हक्त । जैसे कि बाँणों से आहत घबराया हुआ हाथी रण मैदान छोडकर

भाग जाता है । पर तु परिपक्व और वीर साधक स यम में डटे रहते हक्त ।

प्रश्न–३ : इस अध्ययन में मोह जनित उपसर्ग कौन से कहे हक्त?

उत्तर– इस अध्ययन में मोह जनित उपसर्ग तीन प्रकार से वर्णित है– (१) माता-पिता परिवार से (२) राजादि से (३) आत्म स वेदन से ।

(१) इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक में परिवार वालों के द्वारा भिक्षु को घर में ले जाने का निम त्रण, प्रयत्न विविध पहलुओं से बताया गया है । टीकाकार श्री शीला काचार्य ने यहाँ पर दोनों विकल्प के साथ अर्थ किया है कि साधु धर्म में दीक्षित हो रहे साधक को या दीक्षित साधु को देखकर स्वजन वर्ग रुदन आदि करके घर ले जाने का प्रयत्न करते हक्त । प्रयत्न के तरीके इस प्रकार हक्त– रुदन मचाते हुए भरण पोषण करने का कहते हक्त, बुढे माता पिता सहोदर भाई, छोटी बहिन को नहीं छोडने का कहते हक्त, माता पिता की सेवा से लोक सुधरता है, ऐसा कहते हक्त । दूधमुहे बच्चे और पत्नि को स भालने का अनुरोध करते हक्त । तुम्हारा कार्य हम कर लेंगे, वापिस जा सकने की, दीक्षा लेने की छूट देते हक्त, ऋण–कर्जा चुकाने की और नया धन व्यापार हेतु देने का आश्वासन देते हक्त । इस प्रकार यह परिवार वालों का स ग मोह समुद्र के समान अपार है, महाश्रवदायक है । अणुत्तर धर्म पाकर भिक्षु कभी पुन: आका क्षा न करे । यह सूक्ष्म स ग है । कोई एक विवेक मूढ इसमें फँस कर दु:ख पाता है।

(२) कभी कोई राजा, म त्री, पुरोहित, ब्राह्मण, विशिष्ट राजपुरुष भी साधु को भोगों के लिये निम त्रण करे, सर्व सुविधा उपस्थित करे तो बुद्धिमान साधक उपसर्ग जानकर सावधान रहे । कई दिखने में महान और आत्मशक्ति में म द साधक भोगों के जाल में फँसकर घर चले जाते हक्त । अत: आत्मसाधक को शास्त्रकार द्वारा पहले से ही सावधान कर दिया गया है । **(३)** युद्ध भूमि में जाने वाले कई कायर पुरुष पहले से भागने के मार्ग और स्थान देख लेते हक्त कि कौन जाने क्या होगा ? इसी प्रकार कई कमजोर साधक पीछे के लिये विद्याएँ आदि सीख लेते हक्त कि कभी क्या हो जाय ? ऐसे साधुओं को स्त्री स ब धी और पानी न मिलने स ब धी उपसर्ग कष्ट से विचलित होने का भय रहता है । यह आत्मसमुत्थ मोह के प्रभाव का कथन है कि साधक का मन स्वत: कच्चा हो जाता है । शूरवीर साधक मृत्यु पर्यंत स यम को निभाते हक्त ।

प्रश्न–४ : अन्यतीर्थिकों से आने वाले आचार-विचार स ब धी उपसर्ग किस प्रकार कहे ह क्त ?

उत्तर– अन्यतीर्थिक लोग विविध प्रकार के आक्षेप, प्ररूपणा आदि से फँसा सकते हक्त, यथा– **(१)** तुम साधु लोग बिमार साधु की सेवा करते हो, वह तुम्हारा आपसी मोह भाव है । इस प्रकार तुम एक दूसरे के रागी होकर सत्पथ से दूर होकर स सार पार नहीं कर सकते । शास्त्रकार ने कहा है कि भिक्षु ऐसे कुतर्क में फँसे नहीं और कभी भी सेवाधर्म को छोडे नहीं । कि तु उनका योग्य उत्तर देवे कि आप लोग बिमार होने पर गृहस्थ से म गा कर निमित्त दोष युक्त आहार और सचित्त बीजादि खाते हक्त, गृहस्थ के बर्तन में भी खा लेते हक्त, तीव्र कषायों में लिप्त और सद्‌विवेक रहित हक्त । यह भी कोई अच्छा धर्म नहीं है कि साधु से नहीं म गाकर गृहस्थ से खाना म गवाया जाय ? इस प्रकार तर्क और विवेक के साथ जवाब देवे । **(२)** पूर्व में अनेक महापुरुष हो गये हक्त, जिन्होंने पानी के सेवन से सिद्धि बताई है । बाहुक और तारागण ऋषि, आसिल, देविल, द्वीपायन और पारासर महाऋषि हो गये हक्त जो जल सेवन से और साथ ही बीज, हरित के सेवन से मुक्त हुए हक्त । महापुरुषों की दुहाई देकर स यम भ्रष्ट करने का यह तरीका है । **(३)** कोई लोग कहते है कि सुख से ही सुख मिलता है इसलिये तप नियम आदि के कष्ट सहन नहीं करने चाहिये । शास्त्रकारने बताया है कि ऐसे लोग हिंसादि सभी आश्रवों का सेवन कर कर्मस ग्रह होने से दुःख ही बढाते हक्त । खोटी प्ररूपणा से भी पापकर्म का ब ध होता है। ऐसे सुख के चक्कर में आने वाला, लोह वणिक की तरह पश्चात्ताप करता है । **(४)** कोई लोग कामभोग और स्त्रीसेवन की प्ररूपणा करते हक्त और उसे भी कुतर्क से दोष रहित कह देते हक्त । शास्त्रकार कहते हक्त ऐसे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी कामभोगों की आसक्ति में स्वय डूबे हुए होते हक्त । मोहोदय के आधीन होकर कुशील सेवन करना पाप ही है, इस भव, पर भव दोनों में दुःख पर परा बढाने वाला है । नारी स योग को पार पाना वैतरणी नदी के समान दुस्तर है कि तु स यम समाधि में रहने वाले साधक इन उपसर्गों को पार कर जाते हक्त ।

जिस प्रकार व्यापारी समुद्र को पार कर जाता है उसी प्रकार भिक्षु इन सभी उपसर्गों को पार कर जावे, महाव्रतों में स्थिर रहे, किसी त्रस

स्थावर प्राणियों की विराधना न करे और ग्लान भिक्षु की सेवा को भी अपना धर्म समझे । इस प्रकार इस उपसर्ग परिज्ञा अध्ययन के चौथे उद्देशक में विषय का उपस हार किया गया है ।

चौथा अध्ययन : स्त्री परिज्ञा

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में कितने उद्देशक हक्तउनमें मुख्य विषय क्या है और इस अध्ययन का नाम किस प्रकार सार्थक है ?

उत्तर– इस अध्ययन में दो उद्देशक हक्त दोनों में स्त्री स ब धी वर्णन है । जिसमें स्त्रियाँ किन आचरणों से साधु को फुसला सकती है? स्त्री के फ दे में पड जाने वाले की क्या-क्या दशा होती है ? यह बताने के साथ साधु को सावधान रहने का उपदेश है । अ त में स्त्री स ग से भ्रष्ट स यम छोडने वाले की स्त्री द्वारा होने वाली विड बनाओं का चित्रण कर पुनः सावधान रहने का उपदेश दिया गया है । इस प्रकार स पूर्ण वर्णन स्त्री स ब धी होने से अध्ययन का 'स्त्री परिज्ञा' नाम सार्थक है ।

प्रश्न–२ : क्या इस अध्ययन में स्त्री के प्रति हीन भावना बताई है ?

उत्तर– इस अध्ययन में स्त्रियों को अविश्वसनीय, चलचित्त आदि अनेक दुर्गुणों से युक्त बताकर मात्र पुरुष को जागृत और काम विरक्त करने की दृष्टि रखी गई है पर तु स्त्रियों की निंदा करने का उद्देश्य कतई नहीं है । श्रमण को विशेष सावधान करने के लिये स्त्री स ब धी व्यवहारों को, उनके स भवित स्वभावों को स्पष्ट करते हुए समस्त वर्णन किया गया है । वास्तव में पुरुष के भ्रष्ट होने का मुख्य कारण तो उसकी स्वय की कामवासना है । उस कामवासना के उत्तेजित होने में अनेक कारणों में स्त्री स सर्ग भी एक निमित्त कारण है । दशवैकालिक सूत्र में प्रणीत रस भोजन और विभूषा को भी निमित्त कारण स्त्री स सर्ग के साथ में बताया है ।

स्त्रीस सर्ग से जितने दोष पुरुष में उत्पन्न हो सकते हक्त प्रायः उतने ही दोष पुरुषस सर्ग से स्त्री में उत्पन्न हो सकते हक्त, ऐसा व्याख्याकारों ने स्वीकार किया है । अतः वैराग्य मार्ग में स्थित श्रमणों को स्त्रीस सर्ग

से सावधान रहने की तरह साध्वी को पुरुष स सर्ग से सावधान रहना चाहिये और अध्ययन गत अनेक विषय को उस रूप में घटित कर समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न–३ : साधु को फुसलाने में स्त्रियाँ क्या-क्या तरीके अपना सकती है ?

उत्तर– गूढार्थ वाले छ द, पहेली, काव्य के द्वारा आकर्षित करे, अधिक निकट आकर बैठे, बार बार कपडे ऊँचे नीचे करे, स वारे, ठीक करे, पाँव ऊँचे नीचे पलटा पलटी करे, अविवेक से बैठ कर जा घ आदि दिखावें, बात-बात में हाथ ऊँचे कर का ख दिखावें, अनेक पदार्थों का निम त्रण करे, करुणोत्पादक वाक्य बोले, अत्य त विनीत भाव दिखावे, मधुर-मधुर सु दर वचन बोले, अनेक प्रकार की बातें बनाकर एका त स्थान में आने का निम त्रण करे, वस्त्राल कार सज्जित होकर आवे । कहे मुझे धर्म सुनाओ मक्त दीक्षा लूँगी । कभी श्राविका भक्ता होने का स्वा ग धरे । कभी कहे मक्त तो साधुओं की साधर्मिक बहिन हूँ । सु दर रूप वाले साधु को देख निम त्रण देकर कहे कि मेरे घर पधारो; वस्त्र, पात्र आहारादि का लाभ दो । इत्यादि अन्य अनेक तरीके हो सकते हक्त। साधु यह सब जान कर सदा ऐसी वृत्तियों से सावधान रहे ।

प्रश्न–४ : स्त्री के फ दे में पड जाने वाले की या कि चित् भी फुसल जाने वाले की क्या दशा होती है ?

उत्तर– स्त्री के पारिवारिकजन देखे तो रुष्ट होवे, कहा सुना करे, छाने दोष लगावे, दुष्कर्म करे और प्रकट में उत्कृष्ट बातें करे । पकडा जाने पर कोई हाथ पाँव काट दे, चमडी मा स नीकाल दे, अग्नि से आतापित करे, जले पर नमक छिडके, कान नाक काट ले या कभी कोई गर्दन काट दे । किसी को स देह हो तो पूछने पर झूठ बोले– यह तो स्त्री मेरी गोद में खेली है, पुत्रीवत् है ।

प्रश्न–५ : साधु को सावधान रहने उपदेश किस प्रकार दिया है ?

उत्तर– मृग की तरह जाल में फँस जाने के बाद छूटना कठिन होता है । जैसे मा स के लिये सि ह पींजरे में पकडा जाता है वैसे साधु भी ब धन में जकडा जाता है । विष मिश्रित खीर खाने के बाद पश्चात्ताप करना पडता है । इसलिये विवेकी साधक विष लिप्त क टक के समान समझकर स्त्री स सर्ग से दूर रहे । अपनी पारिवारिक बेटी, पोती, दोहित्री,

पुत्र वधु आदि के अतिस पर्क से भी दूर रहे । दीर्घ तपस्वी भिक्षु भी स्त्री स सर्ग में सावधान रहे । जिस प्रकार लाख का घडा अग्नि से तप्त होने पर नष्ट हो जाता है इसी तरह स्त्री स सर्ग से अणगार के साधुत्व को खतरा रहता है । हे साधक ! सूअर को फँसाने के लिये चावल के दाने के समान इन स्त्री प्रलोभनों को समझ कर सावधान रहो । ये स्त्रियाँ ब्रह्मचारी पुरुष के लिये भय रूप है, खतरे पैदा करने वाली है । कल्याणकारी नहीं है । यह जानकर कभी भी स्त्री का स्पर्श नहीं करे । चाहे वह स्त्री पशु हो या मानव । स्त्री से सुरक्षित रहने में या शील को रखने में मन वचन काया का कोई भी कष्ट सहना पडे तो भी स्वीकार करे । इस प्रकार वीर प्रभू ने कहा है कि साधक अपने मोह कर्म को धुने, क्षय करे, अध्यवसायों को विशुद्ध रखे ।

प्रश्न–६ : स्त्री स ग की विड बनाएँ क्या बताई गई है ?

उत्तर– इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक की गाथा ९ से १८ तक में ऐसी विड बनाओं का चित्रण किया है । जिसका सार अ तिम अठारवीं गाथा में बताया गया है कि इस प्रकार जो साधु भोगों में पडता है, स्त्री के वश में चला जाता है, फिर उसे दास की तरह, भोले नौकर की तरह और पशु की तरह होकर स्त्री के और घर के कार्य करने पडते हक्त । स्त्री भी दास के साथ के समान व्यवहार करने लग जाती है । प्रार भिक गाथाओं में घर-गृहस्थी के कार्य, स्त्री के व्यक्तिगत कार्य या शरीर सेवा एव उत्पन्न पुत्रों की सार स भाल आदि विविध विड बनाएँ कही है, जिन्हें स सार के अनुभवी लोग अच्छी तरह जानते हक्त । इस प्रकार कामासक्त साधक दास से भी हीन दशा को प्राप्त करता है । उभय लोक बिगाड देता है। इसलिये मोक्षमार्ग को पाकर अणगार स्त्री परिचय, स पर्क वृद्धि में पहले से ही सावधान रहे । यही इस स्त्रीपरिज्ञा अध्ययन के विस्तृत वर्णन का उद्देश्य है ।

पाँचवाँ अध्ययन : नरक विभक्ति

प्रश्न–१ : इस अध्ययन में कितने उद्देशक हक्त, उनमें क्या विषय हक्त और इस अध्ययन का नाम सार्थक कैसे है ?

उत्तर– इस अध्ययन में दो उद्देशक हक्त । उनमें नरक स ब धी वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है । जिसमें नरक के विभिन्न दु:खों का वर्णन है, उसके साथ ही कुछ शिक्षा उपदेश वचन है । अनेक विभागों-प्रकारों से नरक का वर्णन होने से इस अध्ययन का **नरक विभक्ति** नाम सार्थक है ।

प्रश्न–२ : नरक के दु:ख किस प्रकार के बताये गये हक्त ?

उत्तर– दोनों उद्देशक की अधिकतम गाथाओं में नरक की यातनाओं–दु:खों का वर्णन है– (१) मारो, काटो, छेदन-भेदन करो ऐसी परमाधार्मिक देवों की आवाज सुनकर नारकी चि ता में पड जाते कि किधर भागें । (२) अग्नि के समान तप्त भूमि पर चलते वे करुण क्र दन करते हक्त । (३) उस्तरे जैसी तीक्ष्ण धार वाली वैतरणी नदी में भालों से प्रेरित करके चलाया जाता है । (४) नौका के पास आने पर कीलों से, शूलों-त्रिशूलों से बींधकर नीचे पटक दिये जाते हक्त । (५) गले में बडी शिलाएँ बाँध कर उन्हें अगाध जल में डुबा देते हक्त । (६) तपी हुई रेत में पकाते हक्त । (७) चारों तरफ आग लगाकर बीच में नारक जीवों को तपाते हक्त । वे अग्नि में पडी मछली की तरह तडफते हक्त । (८) हाथ पाँवों को बा ध कर लकडी की तरह छीलते हक्त । (९) पीडा से छटपटाते नारकी को लोहे की कडाई में डालकर पकाते हक्त । (१०) वे नारकी भस्म भी नहीं होते और मरते भी नहीं कि तु लम्बी उम्र तक ऐसी वेदना भोगते, दु:ख पाते रहतेहक्त। (११) अ गोपा ग काट-काट कर टुकडे-टुकडे कर देते हक्त । (१२) पूर्वकृत पापों का स्मरण कराते हक्त । (१३) विष्टा और मूत्र आदि अशुचि-युक्त नरक स्थल में गिराते हक्त, वहाँ उनका भक्षण करते चिरकाल रहते हक्त । कृमियों, कीडों के द्वारा वे काटे जाते हक्त । (१४) उनके शरीर को बेडी में डालकर तोड मरोड देते हक्त । मस्तक में छेद करके स ताप देते हक्त। (१५) नरकपाल परमाधार्मिक देव नारकियों के नाक, ओठ, कान आदि काट डालते हक्त, कभी जीभ खींचकर उसमें शूल भोंक देते हक्त। (१६) खून गिरते वे रात दिन रोते चिल्लाते रहते हक्त । (१७) आग में जलाकर फिर नमक छिडकते हक्त। (१८) रक्त और मवाद से भरी कुभियों में डालकर पकाते हक्त। (१९) प्यास से व्याकुल नारकियों को गर्मागर्म ता बा, शीशा पीलाये जाने पर वे आर्त स्वर से चिल्लाते हक्त ।

(२०) हाथ पैर बा ध कर तेज उस्तरे या तलवार से पेट फाड देते हक्त, पीठ की चमडी उधेड देते हक्त (२१) भुजाएँ काट देते हक्त ।

(२२) मुँह स डासी से फाडकर बडे-बडे तपे हुए गोले मु ह में डाल देते हक्त। (२३) पूर्वकृत कर्म याद कराकर चाबुक मारते हक्त । (२४) तप्त गाडी में जोत कर तप्त भूमि पर चलाते हक्त, लोहे के नोकदार आरा चुभाते हक्त। (२५) तप्त और कीचड वाली भूमि में चलाते हक्त, नहीं चलने पर बैल की तरह ड डो से मारते हक्त । (२६) ऊपर से गिरने वाली शिलाओं के नीचे दबकर दु:खी होते हक्त । (२७) स तापिनी नाम की कु भी में पडे निर तर स तप्त होते रहते हक्त । (२८) चने की तरह कु भियों में पकाते हक्त और उछलने पर ऊपर पक्षी उन्हें खा जाते हक्त । नीचे गिरने पर हिंसक पशु खा जाते हक्त । (२९) शिर को नीचा करके शरीर को शस्त्रों से काटकर टुकडे-टुकडे कर डालते हक्त । चमडी उधेड देतें हक्त फिर पक्षीगण खा जाते हक्त । (३०) तीखे शूलों से वींधकर मार गिराते हक्त। (३१) सदा अग्नि जलने वाले स्थान में जलते रहते हक्त। (३२) चिता बनाकर उसमें जला दिये जाते हक्त । (३३) पकडकर ड डो से पीटते हक्त, कमर तोड देते हक्त, मस्तक का चूरा कर देते हक्त, चीर कर पाटिये के समान पतले कर दिये जाते हक्त । (३४) भारवहन कराते हुए दो तीन नारकियों को पीठ पर चढाकर चलने का कहते हक्त, नहीं चलने पर नोकदार शस्त्र चुभाते हक्त । (३५) काटों से परिपूर्ण मार्ग में चलाते हक्त। (३६) काट काट कर फेंककर बलि कर देते हक्त। (३७) गले में फाँसी डाल कर मारे जाते हक्त । (३८) मुद्गर मूसल से अ गोपा ग तोड देते हक्त।तब रक्त वमन करते अधोमुख गिर पडते हक्त। (३९) सियालों से खाये जाते हक्त । (४०) क्षार जल, मवाद, रक्त आदि से युक्त तप्त दुर्गम नदी में अकेले असहाय तैरते रहते हक्त ।

प्रश्न–३ : नरक वर्णन के साथ शिक्षा वचन किस प्रकार है?

उत्तर– जो बाल अज्ञानी जीव इस जीवन के लिये घोर पापकर्म करते हक्त वे घोर नरक में जाते हक्त । अपने सुख के लिये तीव्र परिणामों से त्रस जीवों को मारते हक्त, चोरियाँ करते हक्त, सदाचरण कुछ भी नहीं करते हक्त, पाप करने की आदत वाले बन जाते हक्त । क्रोधादि कषायाग्नि जिनकी बुझती नहीं है ऐसे जीव नरक में अधोमुख होकर जन्म लेते हक्त ।

जो स्वय अपनी आत्म व चना करते हक्त, सैकडों अधम भवों से क्रूर कर्म करते हक्त वे नरक में जाते हक्त । जो जैसे कर्म करते हक्त वैसे ही कर्मों से भारी होकर नरक में जाते हक्त । अनार्य पुरुष पाप उपार्जन

करके कर्मों से पराधीन होकर नरक में जाते हक्त । दुष्कृत कर्म करने वाले बाल अज्ञानी जीव नरक में जाकर पूर्वकृत कर्मों को वेदतेक्त ।

धीर पुरुष नरक गमन के कारणों को जानकर उनसे बचने का उपाय सोचे; समग्र लोक में किसी भी जीव की हिंसा न करे; परिग्रह त्याग करे, समस्त पापों का त्याग करे । आत्म तत्त्व और जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा रखे । अशुभ कर्म करके अशुभ फल भोगने वाले जीव लोक के स्वरूप को जाने कि तु उस प्रवाह में न वहे । चारों गति के कृत-कर्म फल दु:ख को जाने । मोक्ष लक्ष्य रखकर स यम धर्म का आचरण करे । प डित मरण की आका क्षा रखे । इस प्रकार के सदगुणों को धारण करने वाला सदा के लिये नरक गति के दु:खों से छूट जाता है ।

प्रश्न–४ : नारकी को इतना दु:ख कौन देते हैं ?

उत्तर– नरक में तीन प्रकार के दु:ख हक्त– (१) क्षेत्र स्वभाव के दु:ख (२) देवकृत और (३) परस्पर एक दूसरे के द्वारा ।

देवकृत वेदना का इस अध्ययन में अधिकतम वर्णन है । क्षेत्र स ब धी कोई-कोई वेदना कही गई हक्त । नरक में विशेष कर परमाधामी देव–नरकपाल जाकर विविध वैक्रिय रूप कर-करके नारकियों को दु:ख देते हक्त । उन देवों की वह आदत, रुचि या नियुक्ति भी समझ सकते हक्त । इन परमाधामी देवों की १५ जाति है । ये असुरकुमारों के भवनों में जन्मते हक्त और वहीं रहतेक्त । एका त मिथ्यात्वी तथा तेजोलेश्या वाले होते हक्त । प्राय: ये पहली नरक में ही दु:ख देते हक्त । उसी में नैरयिक सब नरकों से ज्यादा अर्थात् अस ख्य गुणे हक्त । फिर भी आगे की नरकों में देव दु:ख देने जाते हक्त । परमाधामी देव अपनी उम्र के अनुसार प्रथम नरक तक ही जा सकते हक्त ।धारणा पर परा में व्याख्याओं में परमाधामी को तीन नरक तक जाने का कथन है । उसके आगे की नरक में क्षेत्र स ब धी और परस्पर की वेदना ही अधिक है । नरक में जानवर, पक्षी, खून, मा स, पानी, कीचड आदि कुछ भी नहीं होता है, जो भी वर्णन है वह देवकृत वैक्रिय का समझना चाहिये ।

प्रश्न–५ : नरक में क्षेत्र वेदना क्या होती है ?

उत्तर– देवता जाकर के नारकी जीवों को जो दु:ख देते हक्त वे तो बहुत ही थोडे सि धु में बि दु जितने नारकी को दु:ख दे सकते हक्त । कारण कि उन देवों की स ख्या नारकी की स ख्या की अपेक्षा सि धु में बि दु

जितनी भी नहीं है । सर्वत्र वे नहीं पहुँचते हक्त अत: ज्यादा नैरयिक तो क्षेत्र वेदना से स्वत: दु:खी रहते हक्त और वे परस्पर भी वैक्रिय कर-करके कुत्तों की तरह झगडते रहते हक्त । उनके पास थोडा अवधिज्ञान(या अज्ञान) होता है उससे अ धेरे में भी दूसरे नैरयिक को देख लेते हक्त । एक दूसरे आपस में घोर वेदना देते हक्त ।

क्षेत्र वेदना १० प्रकार की ठाणा ग सूत्र में कही है यथा– (१) गर्मी की वेदना (२) सर्दी की वेदना (३) भूख (४) प्यास (५) खुजली (६) परवशता कर्मों की (७) भय (८) शोक (९) रोग(सोलह महारोग युक्त शरीर) (१०) बुढापे का जैसा शरीर । ये सब वेदनाएँ मनुष्य लोक में जैसी दिखती है उससे अन तगुणी अधिक होती है ।

प्रश्न–६ : इतनी भय कर वेदना से नैरयिक मर क्यों नहीं जाते या आत्मघात क्यों नहीं कर लेते ?

उत्तर– नैरयिकों की जिसकी जितनी उम्र है, वह निश्चित होती है, निरुपक्रमी होती है, वे बीच में नहीं मरते । वैक्रिय शरीर होने से पारद के समान तत्काल चुम्बक जैसे खींच कर टुकडे-टुकडे जुड कर वापिस वैसा ही शरीर हो जाताक्त । वे आत्मघात भी नहीं कर सकते। १० हजार वर्ष से लेकर ३३ सागरोपम(अस ख्य वर्ष) तक की उनकी उम्र होती है । सात नरक है उनमें सभी में क्रमश: अधिक-अधिक उम्र हैं । आगे-आगे की नरक में उम्र ज्यादा ज्यादा होती है । कोई मित्र देव वहाँ जावे तो भी उनको वहाँ से निकाल कर ला नहीं सकता, बचा नहीं सकता कि तु क्षणिक शाता पहुँचा सकता है, स्थाई नहीं । क्षेत्र स्वभाव से थोडे समय बाद वह शाता पुन: अशाता में परिवर्तित हो जाती है । उनके शरीर की बनावट मनुष्य जैसी होती है कि तु कुरूप और काले कलूटे होते हक्त, बेडोल भयावना शरीर होता है ।

छट्ठा अध्ययन : वीर स्तुति

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का विषय क्या है और इसके नाम की सार्थकता कैसे है ?

उत्तर– इस अध्ययन में नाम के अनुसार ही समस्त वर्णन भगवान

महावीर स्वामी की स्तुति गुणानुवाद रूप है । अत: सार्थक नाम है– महावीर स्तुति । इसमें उद्देशक नहीं है । आगे भी उद्देशक नहीं है ।

प्रश्न–२ : क्या दीक्षा के प्रथम दिन गणधरों को द्वादशा गी का ज्ञान स्मृति में आता है, उसमें वीर स्तुति होती है ?

उत्तर– नहीं, स्मृति में आने वाली द्वादशा गी पूर्व भव की होने से उसमें व्यक्तिगत प्रकरण भिन्न होते हक्त । उसे ही गणधर अपने शासन के अनुरूप स पादन गु थन कर देते हक्त । लोगस्स के पाठ को भी पूर्ण करते हक्त, अपने तीर्थंकर का नाम उसमें रखते हक्त । अत: यह अध्ययन भी गणधर कृत समझना चाहिये । गणधर अपना नाम विवरण विशेषण प्राय: नहीं डालते हक्त । फिर भी जो गणधरों का वर्णन विवरण सूत्र में प्राप्त होता है वह वीर निर्वाण बाद के बीच के समय में हुई मौखिक लेखिक वाचनाओं के समय व्यवस्थित किया गया समझना चाहिये । पूर्वों के ज्ञानी, श्रमण अनेक आचार्यों की सम्मति से ऐसा सूत्र स पादन करते रहे हक्तवे ही आगम अपने पास पहुँचे हक्त ।

प्रश्न–३ : भगवान की स्तुति किस-किस प्रकार से की गई है ?

उत्तर– उनके गुणों का कथन करते हुए, उपमाओं से उपमित करते हुए एव स यम चर्या तथा उपलब्धि को बताते हुए स्तुति की गई है ।

प्रश्न–४ : भगवान की स्तुति में कौन-कौन से गुण बताये है ?

उत्तर– इस अध्ययन में भगवान महावीर के सर्वोत्तम विशिष्ट गुणों का प्रतिपादन किया गया है, वे इस प्रकार हक्त– (१) खेदज्ञ (२) कुशल (३) आशुप्रज्ञ (४) अन तज्ञानी (५) अन तदर्शी (६) उत्कृष्ट यशस्वी (७) विश्वनयन पथ में स्थित=लोगों की आँखों में बसे हुए (८) प्रश सनीय धर्म और धैर्यवान (९) द्वीप के समान त्राणभूत धर्मोपदेशक (१०) सर्वदर्शी (११) केवलज्ञान स पन्न (१२) निर्दोष चारित्र स पन्न (१३) स्थितात्मा (१४) जगत में सर्वोत्तम विद्वान (१५) बाह्य आभ्य तर ग्र थियों से अतीत (१६) निर्भय (१७) आयुब ध रहित (१८) भूतिप्रज्ञ (१९) अप्रतिबद्ध विचरण करने वाले (२०) स सार सागर पार गत (२१) अन त चक्षु (२२) सूर्य के समान तपने वाले अर्थात् प्रभावक (२३) प्रकाशक (२४) धर्म के नेता (२५) इन्द्र के समान विशिष्ट प्रभावशाली (२६) समुद्र के समान अक्षय प्रज्ञावान (२७) समुद्र के समान अपार–ग भीर ज्ञानी (२८) निर्मलज्ञान स पन्न (२९) अकषायी (३०) घातीकर्मों से मुक्त

(३१) द्युतिमान (३२) प्रतिपूर्ण वीर्य स पन्न–शक्तिस पन्न । (३२) अनेक प्रशस्त गुणों से युक्त ।

प्रश्न–५ : किन-किन उपमाओं से भगवान की स्तुति की गई है ?

उत्तर– (१) देवलोक के समान आन दकर ।(२) मेरु पर्वत के समान सर्व गुणों में सर्वोत्तम ।(३) लम्बाई में श्रेष्ठ निषध पर्वत के समान (४) गोल पर्वतों में विशाल रुचक पर्वत के समान । (५) श ख तथा च द्र के समान स्वच्छ निर्मल शुक्लध्यान । (६) वृक्षो में शाल्मली वृक्ष और वनों में न दनवन समान श्रेष्ठ । (७) मेघध्वनि, तारों में च द्र और सुग धी पदार्थों में चन्दनवत् श्रेष्ठ । (८) स्वय भूरमण समुद्र, धरणेंद्र, इक्षुरसोदक समुद्र के समान श्रेष्ठ । (९) हाथियों में ऐरावत, मृगों में अर्थात् पशुओं में सि ह, नदियों में ग गा, पक्षियों मे गरुड के समान श्रेष्ठ (१०) योद्धाओं में विश्वशेन, फूलों में अरवि द, क्षत्रियों में 'द त वाक्य' के समान श्रेष्ठ । (११) दानों में अभयदान, सत्यों में निर्वद्य सत्य, तपों में ब्रह्मचर्य के समान श्रेष्ठ, लोकोत्तम ।(१२) देवों की स्थिति में लवसत्तम देव, सभाओं में सुधर्मा सभा, धर्मों में निर्वाण श्रेष्ठ है; उसी तरह भगवान महावीर सभी प्रकार से श्रेष्ठ थे । (१३) पृथ्वी के समान सहनशील । इस प्रकार की विविध उपमाओं द्वारा भगवान की स्तुति की गई है ।

प्रश्न–६ : भगवान की स यमचर्या और उपलब्धि के स ब ध में क्या वर्णन है ?

उत्तर– परम महर्षि भगवान का ज्ञान, आचार और दर्शन अनुत्तर था । उसके द्वारा ही उन्होंने स पूर्ण कर्म क्षय कर सादि अन त सिद्ध गति को प्राप्त किया । तप-उपधान में भगवान सर्वोपरि थे । कहीं पर भी आसक्ति नहीं रखते थे, स ग्रह नहीं करते, चारों कषायों से पूर्णतया अलग रहते, कोई भी पाप का सेवन नहीं करते, नहीं कराते । क्रियावादी आदि एका त-वादी को जानकर अपने अनेका तिक स यम में स्थित रहते । प्रभु स्त्रियों का और रात्रिभोजन का पूर्ण वर्जन करते, कर्म क्षय के लिये तपस्या करते थे । वे उभयलोक को जानकर सर्व पापों का वर्जन करने में समर्थ थे । अर्हत् भाषित इस धर्म की श्रद्धा रखकर आराधना करने वाले साधक मुक्त हो जाते हक्त अथवा देवगति में जाते हक्त ।

सातवाँ अध्ययन : कुशील परिभाषा

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम 'कुशील परिभाषा' क्यों है ?

उत्तर– इस अध्ययन में आचार और विचार की अपेक्षा कुशील श्रमणों के विषय में प्रतिपादन किया गया है एव उनके दुर्गति गमन आदि परिणाम बताये गये हक्त । इसलिये 'कुशील परिभाषा' यह नाम सार्थक है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन का विषय वर्णन किस प्रकार किया है ?

उत्तर– स्वतीर्थिक और परतीर्थिक दोनों प्रकार की कुशीलता के वर्णन के साथ ही सुशीलता की प्रेरणा की गई है । प्रार भ में स सारी प्राणियों की कुशीलता और उसका परिणाम बताया है ।

प्रश्न–३ : स सारी जीवों की कुशीलता का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– स सार में पृथ्वीकाय आदि प चेन्द्रिय पर्यंत अनेक प्रकार के जीव हक्त । प्राणी उनकी हिंसा करते हक्त और अपनी आत्मा को द डित कर उन्हीं योनियों में द डित होते हक्त । वहाँ फिर पाप कर्म करके उनका फल भोगते रहते हक्त । हजारों लाखों बार वहीं जन्म मरण करते रहते हक्त । कर्म फल भोगते समय जीव आर्तध्यान कर फिर कर्म बा ध लेते हक्त और उनका भी फल भोगते हक्त । भवभ्रमण करते हुए वे कुशील प चेन्द्रिय में आते हक्त तो भी गर्भ से लेकर जवानी, बुढापा आदि किसी भी अवस्था में मर जाते हक्त । बाल जीव इस तरह अपने ही कर्मों से दु:खी होते हक्त । यह जान-समझकर मानव को बोध प्राप्त करना चाहिये, अज्ञानता और तत्जनित कुशीलता का त्याग करना चाहिये ।

प्रश्न–४ : परतीर्थिक कुशीलता क्या बताई गई है ?

उत्तर– कोई नमक के त्याग मात्र से मुक्ति बताते हक्त, कोई पानी के सेवन से और कोई अग्नि में हवन करने से मुक्ति बताते हक्त । यह उन लोगों का अपरिक्षित सिद्धा त है । दोनों समय जल स्पर्श और प्रात: स्नान से मुक्ति हो जाती हो तो जल में रहने वाले प्राणियों की और जलज तुओं की घात करने वाले मछुओं(मच्छीमार) आदि की भी सहज मुक्ति हो जायेगी । अग्नि के स्पर्श से मुक्ति होती हो तो लुहार, सुनार आदि की मुक्ति सहज हो जायेगी । नमक का त्याग करके जो मद्यमा स, ल्हसुन आदि खाते हक्त उनको तो स सार में ही जन्म मरण करना होता है ।

वस्तु तत्त्व के बोध बिना त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा से सुख नहीं मिल सकता । पापकर्म सेवन से वे प्राणी कर्मों से दु:खी होते हक्त, त्रास पाते हक्त । यह जानकर विद्वान साधक पाप से विरत बने, जीवों की रक्षा करे ।

प्रश्न–५ : स्वतीर्थिक कुशीलता किस प्रकार बताई गई है ?

उत्तर– स यम ग्रहण करने के बाद जो साधक आहारादि का रात्रि स चय (स ग्रह) करके खाता है, अचित्त जल से भी स्नान करता है, वस्त्रों को धोता, मठारता है अर्थात् विभूषावृति करता है, स्वादिष्ट भोजन मिलने वाले घरों में ही भिक्षार्थ जाता है, ऐसे घरों में दीनता करता है, अपनी प्रश सा करता है, उनकी भी मुखमा गलिकता करता है, आहारादि के लिये दाता से प्रिय मधुर बोलता है, इत्यादि कुशील आचार का निर्देश इस अध्ययन में किया गया है । ऐसे साधु को श्रमणत्व से दूर, आचार्य के गुणों से सता श, पार्श्वस्थ, कुशील एव नि:सार कहा गया है ।

प्रश्न–६ : सुशीलता की प्रेरणा किस प्रकार की गई है ?

उत्तर– सुशील साधक के लिये आचार-विचार स ब धी विवेक इस प्रकार बताये हक्त – (१) अज्ञात घरों की गोचरी से निर्वाह करे (२) तपस्या के द्वारा पूजा प्रतिष्ठा की चाहना नहीं करे (३) मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्द, रूप में रागद्वेष से स सक्त न हो (४) इच्छा-मदनरूप समस्त कामों के प्रति आसक्ति हटाकर रागद्वेष न करे । (५) सर्व स गों से दूर रहे (६) परीषह उपसर्ग जनित कष्टों को सहन करे (७) ज्ञान- दर्शन-चारित्र से परिपूर्ण हो (८) विषयभोगों में अनासक्त रहे (९) अप्रतिबद्ध विहारी हो (१०) **अभय कर**=कोई भी प्राणी को त्रास न दे (११) विषय-कषायों से अनाकुल रहे (१२) स यम यात्रा निराबाध चलाने हेतु आहार करे (१३) पूर्वग्रहित पाप कार्यों के त्यागने की इच्छा रखे (१४) कष्ट आपत्ति आने पर भी स यम में ध्यान रखे (१५) स ग्रामशीर्ष सुभट की तरह कर्म रिपु का क्षय करे (१६) फलक-पाटिया के समकक्ष धैर्य रखे (१७) समाधि मरण की आका क्षा करे (१८) स पूर्ण कर्म क्षय कर मुक्त हो जावे ।

अध्ययन की अ तिम चार गाथाओं में ये प्रेरणा सूत्र स केत रूप में योजित किये गये हक्त ।

आठवाँ अध्ययन : वीर्य

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का विषय क्या है और इसके नाम की सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में बाल और प डित जीवों के सकर्मवीर्य(बालवीर्य) और अकर्मवीर्य(प डित वीर्य) का वर्णन है । यहाँ वीर्य का अर्थ है– पराक्रम, पुरुषार्थ । दोनों प्रकार के वीर्यों का वर्णन होने से अध्ययन का सार्थक नाम 'वीर्य' है । प्रमाद है वह सकर्म है और अप्रमाद है वह अकर्म है ।

प्रश्न–२ : सकर्म वीर्य क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में प्रमादाचरणों को, पापकार्यों को, आत्मा में कर्मों को बढाने वाले पुरुषार्थ को सकर्म वीर्य कहा गया है । इस वीर्य के अस्तित्व को बालवीर्य कहा जाता है । बालजनों का सकर्म वीर्य इस प्रकार है– तलवार धनुषबाण आदि शस्त्र चलाना सीखते हक्त । प्राणियों के घातक म त्रों को पढते हक्त, माया करके कामभोगों में प्रवृत्त होते हक्त, अपने सुख के पीछे अ धी दौड लगाते हुए प्राणियों को मारते-काटते हक्त, इस लोक और परलोक दोनों के लिये मन वचन काया से हिंसा करते हक्त । वैर से वैर का अनुब ध होता है जिससे उनकी पाप पर परा बढती रहती है । वे पाप अ त तक उन्हें दुःख देते हक्त ।

प्रश्न–३ : अकर्म वीर्य क्या है ?

उत्तर– अप्रमाद और प डित वीर्य रूप पुरुषार्थ को अकर्म वीर्य कहा गया है । प डित वीर्य की साधना के लिये उपस्थित होने वाले साधक इस प्रकार के पुरुषार्थ करे– (१) मोक्षार्थी बने (२) रागद्वेष रूप ब धन से उन्मुक्त हो (३) स्नेहब धन को सर्वथा छोड दे (४) पापकर्मों को दूर करके शल्य रूप कर्मों को क्षय करे (५) सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप न्याय मार्ग स्वीकार करे (६) अनुप्रेक्षण करे— शुभ स योगों की अनित्यता का और दुःख देने वाले अशुभ कृत्यों का (७) चि तन पूर्वक आसक्ति–ममत्व हटावे (८) सर्वविरति रूप प्रशस्त आर्य धर्म स्वीकार करे । (९) स्वय जानकर या अन्य से बोध सुनकर पापों का त्याग करे (१०) आयुष्य में उपक्रम आया जाने तो स लेखना स थारा करे (११) कछुआ अ गो को स कोच लेता है वैसे ही पापों को स वृत कर ले (१२)

मन के परिणामों को वचन के दोषों को और हाथ पाँव आदि सभी अ गोपा गों को स कुचित करे–तीनो गुप्ति धारण करे (१३) लेश मात्र भी माया और अभिमान नहीं करे (१४) शाता सुख का भी गर्व न करे (१५) उपशा त और निःस्पृह होकर विचरे (१६) प्राणी हिंसा न करे (१७) अदत्त ग्रहण न करे (१८) माया सहित असत्य न बोले (१९) प्राणियों को पीडित करने का मन से भी नहीं चाहे, अनुमोदन भी नहीं करे (२०) सर्व प्रकार से स वृत रहे (२१) इन्द्रियों को वश में रखे (२२) स यम की सम्यक् आराधना करे (२३) आत्मगुप्त बने = पाप से आत्मा को बचावे, जितेन्द्रिय रहे (२४) भूत-भावि किसी भी पाप का अनुमोदन नहीं करे (२५) गुप्त तपस्या करे, किसी को कहे नहीं, अपनी प्रश सा करे नहीं (२६) समत्वदर्शी वीर साधकों का पराक्रम शुद्ध होता है वह अर्थ कर्म ब ध रूप फल से रहित होता है । (२७) अल्पाहारी बने (२८) अल्पभाषी सुव्रती, क्षमावान, शा त, दा त बने (२९) गृद्धिभावों का त्याग करके यत्ना से प्रवृत्ति करे (३०) काया को वोसिरा कर ध्यान करे (३१) जीवनपर्यंत या मोक्ष प्राप्ति तक स यम में पराक्रम करे । स यम साधक को गुणों की प्रेरणा रूप यह अकर्मवीर्य का वर्णन है ।

प्रश्न–४ : इस अध्ययन की चौबीसवीं गाथा में पहला चरण शुद्ध क्या है और उस गाथा का भाव क्या है ?

उत्तर– चौबीसवीं गाथा का प्रथम चरण है– 'तेसि पि तवो शुद्धो' ऐसा पाठ सही है । इसके पूर्व की तेवीसवीं गाथा में सम्यग्दृष्टि का पराक्रम शुद्ध कहा गया है । और इस गाथा के प्रथम चरण में 'पि' (अपि) शब्द का प्रयोग है जिससे पूर्व के शुद्ध पराक्रम के सदृश इसमें शुद्ध तप का कथन है । अर्थात् इस गाथा का भाव यह है कि तप भी शुद्ध उनका होता है जो महान ऋद्धि, महाकुल का त्याग करके भी गुप्त तप करते हक्त, तपस्या का प्रचार नहीं करते और उससे यश कीर्ति की चाहना नहीं करते । इस चौवीसवीं गाथा के बाद चूर्णि में एक गाथा अधिक मिलती है उससे भी उपरोक्त शुद्ध पाठ की पुष्टि होती है । यथा–

तेसि तु तवो शुद्धो, णिक्ख ता जे महाकुला ।
अवमाणिते परेण तु, ण सिलोग पवेज्जए ॥२५॥चूर्णि॥

तात्पर्य यह है कि तेवीसवीं गाथा में स यम पराक्रम शुद्ध किसका होता, यह बताया है और चौबीसवीं गाथामें तप किसका शुद्ध होता है,

यह बताया है । प्रतियों में चौबीसवीं गाथा के प्रथम चरण में **तेसि पि तेवोऽसुद्धो** ऐसा पाठ उपलब्ध है उसके कारण से पूर्व गाथा से स ब ध भी नहीं('अपि' का) जुडता है और इस गाथा का अर्थ करने में ऊपर से शब्द लेने पडते हक्त । गाथा के शब्दों से सरलता से अर्थ नहीं निकलता है । इसलिये इस प्रथम चरण में 'ऽ सुद्धो' का 'अ' या 'अवग्रह चिन्ह' यह अक्षर अधिक समझना चाहिये ।

नौवाँ अध्ययन : धर्म

प्रश्न–१ : इस अध्ययन के विषय और नाम की सार्थकता क्या है ?

उत्तर– जीवन में धर्म की आवश्यकता और उपयोगिता समझाकर स यम धर्म की प्रेरणा, स यम धर्म के मूल गुणों के पालन की प्रेरणा, उत्तरगुण स ब धी दोषों को जानकर उसके त्यागने का स देश, भाषा विवेक एव गुणवृद्धि हेतु हित शिक्षाएँ सूचित की गई है । इस प्रकार धर्म बोध एव स यम धर्म के वर्णन युक्त इस अध्ययन का 'धर्म' नाम सार्थक एव उपयुक्त है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में धर्म का बोध किस प्रकार दिया गया है ?

उत्तर– इस स सार में अर्थात् मानव स सार में जो भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चा डाल आदि लोग हक्त वे सभी वर्तमान जीवन के उद्देश्य से आर भ और परिग्रह में व्यस्त हक्त और साथ ही आर भ से उत्पन्न विषय सुखों में लीन रहते हक्त । जिससे वे स सार में कर्मों की और वैर की वृद्धि करके दुःख पर परा बढाते रहते हक्त कि तु वे दुःखों का अ त नहीं कर पाते । मनुष्य जीवन में मृत्यु आने पर पाप से स ग्रहित धन अन्य पारिवारिक लोगों के काम आता है । मृतक के दाह स स्कार आदि कृत्य करके वे लोग उस मृत व्यक्ति का धन ले लेते हक्त, बाँट लेते हक्त कि तु उस व्यक्ति के कर्म तो उसके साथ ही चले जाते हक्त । उन्हें कोई नहीं लेता है, नहीं बाँट सकता है । उन कर्मों से उस प्राणी को स्वय ही दुःखी होना पडता है, चाहे वे नरक योग्य कर्म है या अन्य गति के । असहाय होकर उसे अकेले ही भोगने पडते हक्त ।

उस दुःख के समय माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र आदि कोई

भी सहायता करने नहीं पहुँचते, ये स ब ध यहीं छूट जाते हक्त, स ब धी लोग उस व्यक्ति के पापकृत धन से मौज करते हक्त । इस परमार्थ का विचार करके भिक्षु ज्ञातिजनों का त्याग करके एव समस्त शोक स ताप को छोडकर इसलोक की प्रवृत्तियों से निरपेक्ष होकर स यम में विचरण करे ।

प्रश्न–३ : इस अध्ययन में उत्तर गुणों का स कलन किस प्रकार है ?

उत्तर– प्रार भ में दो गाथाओं में जीवों के भेद स कलन के साथ प्रथम महाव्रत के पालन का स देश देकर तीसरी गाथा में चारों महाव्रतों के पालन की एक साथ सूचना की गई है फिर अनेक गाथाओं में साधक को विद्वान शब्द से उत्साहित करके स यम के उत्तरगुण स ब धी दोषों से दूर रहने का एव उनका त्याग करने का स देश दिया गया है, वे विषय ये हक्त– सर्व प्रथम कर्माश्रव करने वाले चार कषायों को जानकर उनका त्याग करने का विद्वान साधक को सूचन किया गया है । इन चारों ही कषायों के चार नये पर्याय नाम से उन्हें कहा गया है, यथा– पलिउ चण = माया, भयण =लोभ, थ डिल =गुस्सा, उश्रयण=मान । साध्वाचार स ब धी अनाचरणीय विषयों का स केत इस प्रकार है– (१) वस्त्र धोना-र गना (नील लगाना) (२) एनिमा लेना (३) विरेचन–जुलाब (४) वमन (५) अ जन (६) इत्र–तेल (७) माला (८) स्नान (९) द तप्रक्षालन ।(परिग्रह और कुशील त्याग भी यहाँ गाथा क्रम में मूलगुण कहे हक्त ।) (१०) आहार के गवैषणा दोष, अनेषणीय आहार (११) रसायन सेवन (१२) चक्षुविभूषा (१३) रसों में आसक्ति (१४) उपघात–पर पीडाकारी प्रवृत्ति (१५) अ गोपा ग धोना (१६) उबटन–लेप (१७) गृहस्थों से अरस-परस(अतिव्यवहार) (१८) ज्योतिष प्रश्न (१९) शय्यातर पिंड (२०) धूत क्रीडा–जुआ, सट्टे आदि के अ क बताना (२१) हस्तकर्म (२२) कलह–विवाद (२३) जूता (२४) छत्र (२५) नालिका खेल (२६) प खा (२७) परस्पर परिकर्म (२८) हरी वनस्पति(हरियाली) पर मल-मूत्र विसर्जन (२९) गृहस्थ के पात्र (३०) गृहस्थ के वस्त्र (३१) गृहस्थ के आसन, शय्या, खाट (३२) घरों में बैठना (३३) गृहस्थ को कुशल क्षेम पूछना या सावद्य पूछना (३४) पूर्वजीवन स्मरण(सुख-भोग) (३५) यश-कीर्ति-श्लाघा-कामनाएँ (३६) गृहस्थ को आहारादि प्रदान। इन सब दोष स्थानों का भिक्षु त्याग करे, शुद्ध स यम नियम में रहे । यहाँ उत्तर गुण के साथ कोई मूलगुण स ब धी कथन भी क्वचित् है ।

भाषा विवेक– (१) किसी के बीच में न बोले (२) मर्मकारी वचन नहीं बोले (३) माया का त्याग कर विचार कर बोले (४) मिश्र भाषा न बोले (५) बोलने के बाद पश्चात्ताप करना पडे ऐसा न बोले (६) गोपनीय बात प्रकट न करे ।(७) होलगोल, तँू तँू ऐसे तुच्छ अमनोज्ञ शब्द न बोले ।

प्रश्न– ४ : स यमगुण वृद्धि स ब धी हितशिक्षाएँ क्या कही गई है ?

उत्तर– गाथा २७ तक अनाचरणों का आचरण नहीं करने की, विद्वान मुनि रूप स बोधन के साथ सूचना दी गई है । आगे की गाथाओं में हित शिक्षाओं के रूप में सूचनाएँ दी गई है, यथा– (१) मुनि जिनाज्ञा विपरीत कुशीलाचरणों का सेवन नहीं करे (२) कुशील आचरणों वाले मुनियों से विशेष स पर्क न रखे, क्यों कि उससे सुखकारी स स्कारों के अनायास प्रविष्ट होने का खतरा अन्यान्य मुनियों के लिये बना रहता है । तथापि योग्यता स पन्न विद्वान मुनि सावधानी के साथ उन्हें प्रतिबोध कर सकता है (३) बिना कारण गृहस्थ के घर में बैठना नहीं (४) ह सी ठट्ठा मजाक अथवा अतिहास्य विनोद करना नहीं (५) विशिष्ट पदार्थो को देखने आदि में उत्सुक होना नहीं, ऐसे शब्दादि विषयों के स योग में तटस्थ रहकर यतना और अप्रमाद भाव से स यम में सावधान रहना (६) किसी के कष्ट देने पर क्रोध नहीं करना, असभ्य वचन व्यवहार करने पर पुनः आक्रोश वचन प्रयोग नहीं करना, मन को पवित्र रखते हुए सहन करना एव हल्ला कोलाहल नहीं करना (७) इन्द्रिय सुख मिलने पर भी चाहना नहीं करना पर तु सदा ज्ञानियों के पास विवेक पूर्वक स यम आचरण का ही अभ्यास रखना (८) योग्य, धैर्यवान, गुणवान, प्रज्ञावान, तपस्वी, जितेन्द्रिय, आत्मार्थी गुरुओं की उपासना सेवा भक्ति करना (९) आदर्श श्रेष्ठ पुरुष स सार में या घर में रहने में प्रकाश या त्राण नहीं देखते । वे वीर स सार के ब धनों का त्याग कर पुनः अस यम जीवन की तरफ कभी नहीं देखते (१०) शब्दादि विषयो में भिक्षु आसक्त न बने (११) आर भ-समार भ का आल बन न लेवे (१२) अति मान, माया आदि से दूर रहते हुए सर्व गर्वों से अलग हटकर, नम्रता-सरलता के साथ मुनि मोक्ष प्राप्ति की साधना करे । इस प्रकार अ तिम ९ गाथाओं में मधुर शब्दों में हितकारक शिक्षाएँ देते हुए इस 'धर्म' अध्ययन को शास्त्रकार ने पूर्ण किया है ।

दसवाँ अध्ययन : समाधि

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम और उसकी सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में मुख्यतया मुनि द्वारा ग्रहण किये हुए चारित्र की समाधि सफलता किस प्रकार हो सकती है? वह चारित्र सुरक्षित, निराबाध किस प्रकार जीवनपर्यंत रह सकता है? आत्मसमाधि, आत्म-प्रसन्नता, आत्म स तुष्ठी किस तरह बनी रहे इस प्रकार की शिक्षाओं, सूचनाओं से युक्त इस अध्ययन का 'समाधि' यह नाम सार्थक है ।

प्रश्न–२ : समाधि शब्द का प्रयोग किस-किस अर्थ में होता है ?

उत्तर– दशवैकालिक सूत्र में विनय समाधि के साथ श्रुत चारित्र और तप के साथ भी समाधि शब्द का प्रयोग है जिसका तात्पर्य है विनय श्रुत तप आदि की पूर्णता या पूर्ण सफलता, सार्थकता होना; उसे विनय, तप आदि की समाधि कहा गया है । वहाँ चारों समाधि के पुनः चार-चार प्रकार बताये हक्ते भी उस-उस समाधि को पुष्ट करते हक्त

प्रस्तुत अध्ययन में मुख्यतया चारित्र समाधि और आत्म समाधि के प्रस ग से समाधि शब्द का प्रयोग है । दशाश्रुतस्क ध सूत्र में स यम के कुछ दोषों को असमाधि स्थान कहा गया है अर्थात् उन दोषों का सेवन चारित्र को देश ख डित करता है, चारित्र की सफल साधना में क्षति करता है ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से स ब धित करके भी समाधि के विकल्प किये जा सकते हक्त । भाव की अपेक्षा समाधि शब्द से– चित्त की स्वस्थता, सात्विक सुखशा ति, स तुष्टि, मनोदुःख का अभाव, आन द, प्रमोद, शुभ ध्यान, चित्त की एकाग्रता, समता, रागादि की निवृत्ति, आत्मप्रसन्नता, उद्देश्य-लक्ष्य की सफलता आदि भावार्थ ग्रहण किये जा सकते हक्त । प्रास गिक अपेक्षा में, मोक्ष लक्षित ज्ञान दर्शन चारित्र तप की सुरक्षा और सफलता तथा आत्म साधना में प्रसन्नता के साथ रुकावट बिना प्रगति होना, इस 'समाधि' का कथन है ।

प्रश्न–३ : इस अध्ययन का विषय वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– इस अध्ययन में समाधि पाने का विधेयात्मक वर्णन और समाधि नहीं पाने का निषेधात्मक वर्णन मुख्य है । साथ ही समाधि नहीं पाने वाले साधक एव अन्य लोगों का निर्देश भी है । अध्ययन

के अ त में समाधि पाने हेतु कुछ शिक्षा रूप वचन है, जो विधि और निषेध उभयमय है ।

प्रश्न–४ : स यम साधकों के समाधि नहीं पाने स ब धी वर्णन क्या है ?

उत्तर– समाधि पाने के विधेयात्मक विषयों के बीच-बीच में समाधि नहीं पाने स ब धी वर्णन है वह इस प्रकार है– **(१)** दीन वृत्ति से आजीविका करने वाला साधक अर्थात् भिक्षाचरी आदि में दीनता–दीनवृत्ति करने वाला पाप का स ग्रह करता है । **(२)** स यम ग्रहण करके फिर जो दीन वृत्ति करता है वह विषाद–दु:ख पाता है अथवा विषयों के अधीन हो जाता है । वह दीन वृत्ति में पूजा प्रश सा का कामी बन कर अति दीन और स यम समाधि से दूर हो जाता है । **(३)** आधाकर्मी आहार आदि का अत्य त इच्छुक और उसके लिये अत्य त भ्रमण करने वाला, निम त्रण देने वालों के घर इधर से उधर फिरने वाला असमाधि पाता है । **(४)** स्त्रियों में आसक्ति रखने वाले और तद् हेतु परिग्रह वृत्ति करने वाले, विविध पापों मे गृद्ध होकर कर्म स ग्रह करके दुर्गति में दु:ख पाते हक्त।

प्रश्न–५ : स यम साधकों के अतिरिक्त लोगों की असमाधि का क्या वर्णन है ?

उत्तर– **(१)** स सार में विविध प्राणी अपने ही कर्मोदय से पीडित होकर अज्ञान के कारण स तप्त हो रहे हक्त । उन प्राणियों की हिंसा करके प्राणी उन्हीं योनियों में भवभ्रमण करते दु:ख भोगते हक्त। **(२)** स सार में प्राणी स्वय हिंसा करके भी पाप कर्म ब ाधते हक्त और दूसरों से हिं सा करवा करके भी पाप कर्म ब ध करते हक्त । जिससे आत्मसमाधि से दूर होते रहते हक्त। **(३)** कोई भिन्न रुचि वाले मानव आत्मा को एका त अक्रिय मानते हक्त और इच्छित आर भ समार भ करते हक्त, इच्छित विषय सुखों में गृद्ध रहते हक्त । वे ऐसा बोलते हक्त कि– पुद्गल पुद्गल का कार्य करते हक्त, इससे अक्रिय आत्मा पर कोई असर नहीं होता है, पर तु वास्तव में वे मिथ्यामति मोक्ष-प्रदायक धर्म को नहीं समझते और सच्ची सफल आत्मसमाधि को भी प्राप्त नहीं कर सकते । **(४)** कोई भिन्न रुचि वाले क्रिया से ही समाधि की प्राप्ति मानते हक्त । वे भोगोपभोग की सामग्री के उपभोग से समाधि मानते हक्त । जो भी स योग मिला है, जो भी चाहना इच्छा है और वह सहज होती है तो उसे पूरी कर लो, ऐसा करने से समाधि हो जाती है । वास्तव में ऐसा करने से पौद्गलिक सुख समाधि

मिलने का प्रलोभन मात्र है कि तु अव्रती और अस यती होने से वे मिथ्यामति कर्मों की वृद्धि करते हक्त। **(५)** कुछ लोग नवजात शिशु को मार कर भी अपनी ऐच्छिक शा ति सुख समाधि मानते हक्त, वे भी इच्छित क्रिया के घोर पाप से भारीकर्मा बनते हक्त । **(६)** कई लोग आयुक्षय–मृत्यु के स ब ध में कुछ समझते विचारते ही नहीं है । अपने को अमर मानते हुए स सार परिवार की ममता में रचे पचे रहते हक्त और जो मन भाया वही करते रहते हक्त, भविष्य का कुछ भी विचार नहीं करते । अकृत्य दुष्कृत्य करने में भी विचार नहीं करते । ऐसे लोग भी भाव समाधि को प्राप्त नहीं करते ।**(७)** जो परिवार वालों के लिये शोकाकुल रहता है, रात दिन धन वृद्धि में और घर ध धों में व्यस्त रहता है एव अधिकतम मोह भावों की वृद्धि करता है तथापि मरने पर उसके धन को अन्य लोग हरण कर लेते हक्त । उसके साथ धन नहीं जाता कि तु पापकर्म साथ में जाकर दु:ख देते हक्त।

प्रश्न–६ : स यम साधकों, आराधकों को समाधि प्राप्त करने के विधेयात्मक एव निषेधात्मक स देश इस अध्ययन में किस प्रकार हक्त?

उत्तर– स यम समाधि एव आत्म समाधि–शा ति के इच्छुक साधक को इस अध्ययन में कुछ स देश आदेश हक्त वे इस प्रकार हक्त–

(१) मुनि इहलोक परलोक स ब धी फलाका क्षा से रहित होकर स यम में पराक्रम करे । **(२)** त्रस-स्थावर प्राणियों के प्रति स यम रखे, उन्हें पीडा न पहुँचावे । **(३)** अदत्त ग्रहण से दूर रहे **(४)** वीतराग प्ररूपित श्रुत चारित्र धर्म में स शय रहित रहे । **(५)** प्रासुक आहार-पानी एव एषणीय उपकरणादि से निर्वाह करे । **(६)** समस्त प्राणियों के प्रति आत्मवत् व्यवहार करे। **(७)** स पत्ति की आय और स चय न करे। **(८)** स्त्रियों एव विषयों से इन्द्रियों को रोके, जितेन्द्रिय बने तथा उदासीन एव प्रतिब ध रहित होकर स यम में रहे । **(९)** स्थिर बुद्धिपूर्वक तत्त्वज्ञ विवेकशील एव हिंसादि से विरत रहे । **(१०)** समभाव में रहे । रागद्वेष प्रेरित किसी की भलाई, किसी की बुराई रूप प्रप चों में नहीं पडे **(११)** जो कुछ बोले बातचीत करे तो सोच विचार कर करे । **(१२)** हिंसात्मक उपदेश न करे । **(१३)** आधाकर्म दोष युक्त आहार आदि की आका क्षा न करे, ऐसी आका क्षा वालों का स पर्क-परिचय न बढावे कि तु सम्यक् चि तन पूर्वक कर्म क्षय करने में लगे

एव कष्ट आने पर सुख की लालसा से किसी प्रकार का शोक न करे, कर्म क्षय करने में शरीर के प्रति निरपेक्ष रहे ।

(१४) आधाकर्म आहार त्याग या उससे स पर्क त्याग हेतु कदाचित् परिस्थिति वश अकेले रहना पडे तो उसे भी स्वीकार करे । ऐसा करने से भी मोक्ष साधना हो सकती है, इसमें स देह न करे, असत्य न माने । स यम की शुद्ध साधना आराधना हेतु किये गये एकल-विहार से मुक्ति होना कहना मृषावाद नहीं है । तथा इस प्रकार का विवेक युक्त निर्णय प्रशस्त है, श्रेष्ठ है । एकलविहार की उस साधना आराधना काल में जो कषायों से रहित बनता है तथा सत्यनिष्ठ रहता है अर्थात् स्व निर्भर एव इमानदारी पूर्वक भगवदाज्ञाओं का आराधन करता है तो उसका एकलविहार सफल है । ऐसा नहीं करके इच्छानुसार जिनाज्ञाओं की विराधना करे या किसी भी कषाय के आधीन बने तो उसका एकलविहार सफल नहीं है । उसे समाधि की प्राप्ति नहीं हो सकती अपितु असमाधि भावों की प्राप्ति होती है ।

(१५) भिक्षु रति या अरति भावों से ऊपर उठकर शीत-उष्ण डा स, मच्छर, तृण स्पर्श अथवा अच्छे खराब स योग आदि सभी स्थितियों को समभाव से पार करे, सहन करे । **(१६)** वचन की गुप्ति रखकर समाधि प्राप्त करे । **(१७)** लेश्या में-परिणामों में सावधानी पूर्वक वर्तता हुआ शुभ लेश्या में रहे । **(१८)** मकान के परिकर्म कार्य करे या करावे नहीं । पचन-पाचन आदि क्रियाओं को लेकर स्त्रियों से अति स पर्क न करे ।

प्रश्न-७ : इस अध्ययन में समाधि पाने के लिये शिक्षा रूप वचन किस प्रकार है ?

उत्तर- अध्ययन की तेरहवीं एव अ तिम गाथाओं में उपस हार के रूप में शिक्षा वचन इस प्रकार है- **(१)** स्त्री एव मैथुन से विरत रहने वाला, परिग्रह से परे रहने वाला एव विविध इन्द्रिय विषयों से आत्मा को पूर्ण सुरक्षित रखने वाला अथवा छकाय रक्षक भिक्षु अर्थात् प्रथम, चतुर्थ और पाँचवें महाव्रत को सुरक्षित रख सकने वाला; निःस देह समस्त महाव्रतों और स यम नियमों को सुरक्षित रखकर स यम समाधि एव आत्म समाधि को प्राप्त होता है । **(२)** जिस तरह वन्य प्राणी ज गल में सि ह आदि हिंसक पशुओं से सदा सावधान और बचकर रहते हक्तऊी

प्रकार स यम साधक सदा पाप से बचता रहे, सावधान रहे, दूर रहे । **(३)** धर्म बोध को प्राप्त करके बुद्धिमान पापों से निवृत्त होवे । क्यों कि हिंसा आदि पाप ही महान दुःख और अधर्म के जनक हक्त । **(४)** आत्मार्थी मुनि असत्य न बोले एव अन्य पाप भी न करे, न करावे तथा अनुमोदन भी न करे । **(५)** शुद्ध आहार मिल जाय तो भी उसे परिभोगेषणा दोषों से दूषित न करे, आसक्ति का त्याग करे । निर्दोष आहार से निर्वाह करके भी यश-कीर्ति-पूजा-प्रतिष्ठा के लिये स यम खराब न करे । इनसे मुक्त रहकर स यम में विचरण करे ।**(६)** घर छोडने के बाद मुनि अन्य कोई आका क्षा न रखे, काया का ममत्व छोडकर कर्म काटे तथा जीवन मरण की आशा या भय से मुक्त होकर साधना करता हुआ स सार चक्र से विमुक्त हो जावे ।

इस प्रकार इस अध्ययन में स यम समाधि एव आत्म समाधि के माध्यम से ज्ञान दर्शन चारित्र तप की विशुद्धि के साथ मोक्ष की उत्तम आराधना दर्शाई गई है ।

ग्यारहवाँ अध्ययन : मार्ग

प्रश्न-१ : इस अध्ययन का नाम और उसकी सार्थकता कैसे है ?

उत्तर- इस अध्ययन का नाम 'मार्ग' है । जो मोक्षमार्ग-निर्वाणमार्ग की मुख्यता से है । अध्ययन में मार्ग जानने की जिज्ञासा के साथ स क्षिप्त में २-४ मुद्दे निर्वाण मार्ग के, एक मुद्दा मिश्र मार्ग-पुण्य मार्ग का, कुछ मुद्दे अनिर्वाण मार्ग के, छिद्रोवाली नावा के दृष्टा त के साथ कहे गये हक्त । अ त में स यम मार्ग की आराधना का उद्‌बोधन किया गया है । इसलिये इस अध्ययन का छोटा सा नाम 'मार्ग' यह पूर्ण रूप से सार्थक है ।

प्रश्न-२ : इस अध्ययन के प्रार भ की छ गाथाओं में ज बू स्वामी की जिज्ञासा और सुधर्मा स्वामी द्वारा किए गये समाधानों का स कलन है तो यह रचना किसकी है ?

उत्तर- गाथाओं में सुधर्मा या ज बू किसी का नाम नहीं है । सूत्रकार ने ही यह प्रश्न और समाधान की शैली अपनाई है । विषय प्रार भ करने का यह भी एक तरीका है । अर्थ और विवेचन करने वालों के द्वारा प्रश्न

और उत्तर को सुधर्मा-ज बू से जोडकर घटित किये जाने की पर परा है ।

शासन प्रार भ के समय जो द्वादशा गी की रचना की जाती है, उसमें स वाद की भाषा हो सकती है, कि तु किसी व्यक्ति या गणधर के नाम से वह स वाद नहीं होता है । गणधरों के नाम से आज जो भी उत्थानिकाएँ या स वाद गद्य पाठ में मिलती है, वह शास्त्रलेखन के समय देवर्द्धिगणि आदि आचार्यों द्वारा या उनसे पूर्व वीर निर्वाण के बाद किसी भी समय की स पादित हो सकती है ।

प्रस्तुत आगम के इस अध्ययन की प्रार भ की गाथाओं में किसी का नाम नहीं होने से ये गाथाएँ शासन प्रार भ के समय की, गणधर रचित स वाद की भाषा में है, ऐसा समझना चाहिये तथा अर्थ करने में सुधर्मा एव ज बू स्वामी का अध्याहार किया जाता है, ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न–३ : निर्वाण मार्ग के कौन से मुद्दे इस अध्ययन में चर्चित है ?

उत्तर– (१) सर्व प्रथम अहिंसा सिद्धा त का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए त्रस स्थावर जीवों का अस्तित्व तथा उनकी दु:खमय अवस्था की तरफ स केत करके उनकी हिंसा न करने का स देश दिया गया है और कहा गया है कि ज्ञान का सार ही अहिंसा–जीवदया है । अत: जीवनपर्यंत मन वचन काया से किसी भी प्राणी के साथ वैर विरोध नहीं करना चाहिये । यही शा तिमय निर्वाणमार्ग कहा गया है (२) अहिंसा धर्म पालन के लिये मुनि एषणीय और प्रदत्त पदार्थ ग्रहण करे, अनेषणीय पदार्थों का त्याग करे, साधु के लिये बने पदार्थों का त्याग करे तथा अ श मात्र भी दोष की आश का हो या दोष मिश्रित पूतिकर्म आहार आदि हो, उनका भी सेवन नहीं करे । (३) पाप कार्यों के अनुमोदन की या प्रेरणा की भाषा नहीं बोले ।

इस प्रकार जीवों का अस्तित्व, अहिंसा, एषणा समिति, भाषा समिति के सूचन से मोक्षमार्ग का कथन किया गया है ।

प्रश्न–४ : दानशाला, प्याऊ या पशु-पक्षी का दानापीठ आदि स्थानों स ब धी धर्म या पुण्य की एका तिक चर्चा मुनि कर सकते ह्क्त ?

उत्तर– इन कार्यों की प्रेरणा श्रावक समाज में मानवता एव जीवों को सुख सुविधा देने की दृष्टि से होती रहती है । जैन मुनि की अपनी विशेष मर्यादा होती है, भाषा विवेक भी उसका विशिष्ट होता है । अत: वह प्रश्नगत विषयों की एका तिक चर्चा में नहीं उलझे । मुनि श्रोताओं को

जीवों का स्वरुप और उनके दु:ख का स्वरुप बताकर अनुक पा रस का सिंचन कर सकता है तथा पुण्य-पाप तत्त्व का समुच्चय स्वरुप समझा सकता है । पर तु प्रश्नगत स्थानों कार्यों की स्पष्ट अनुमोदना प्रेरणा नहीं कर सकता । साथ ही इनका निषेध भी नहीं कर सकता है । गृहस्थ अनुक पा रस से और अपने कर्तव्य से स्वय ये कार्य करते ह्क्त । शास्त्रकार इस अध्ययन में स्पष्टीकरण करते ह्क्त कि मुनि इन स्थानों, कार्यों को धर्म या पुण्य कहकर स्पष्ट प्रेरणा करे तो वहाँ होने वाले आर भ समार भ की अनुमोदना-प्रेरणा होने से साधु का प्रथम महाव्रत दूषित होता है । यदि प्रतिपक्ष में होकर साधु गृहस्थों द्वारा किये जाने वाले अनुक पा के इन कार्यों का निषेध करे अथवा इन्हें पाप या अधर्म बतावे तो भी उसका प्रथम महाव्रत दूषित होता है । क्यों कि ऐसा करने में प्राणियों की जीवनवृत्ति का छेद–अ तराय दोष लगता है; जो कि हिंसा रूप है । अत: जैन मुनि प्रश्नगत विषयों में अर्थात् दान-पुण्य के स्थलों अथवा कार्यों स ब धी पक्ष-प्रतिपक्ष रूप किसी भी आग्रह में न पडे, दोनों पक्ष की भाषा न बोले और विवेक के साथ कर्म ब ध से बचे, तो वह निर्वाण मार्ग की सही आराधना कर सकता है । सार यह है कि– मुनि उपस्थित परिषद के योग्य जीव तत्त्व, पुण्य-पाप तत्त्व का स्वरूप, अनुक पा धर्म का समुच्चय स्वरूप, यथावसर समझावे, प्रश्न निर्दिष्ट स्थलों या कार्यों की स्पष्ट चर्चा में न जावे ।

राजप्रश्नीय सूत्र में केशीस्वामी द्वारा प्रदेशी राजा को दिया गया बोध एव चर्चा का प्रकरण है । उसमें प्रतिबुद्ध होने के बाद राजा ने स्वत: स्पष्ट किया कि म्क्त राज्य की आय का एक हिस्सा दानशाला में लगाउँगा । वहाँ मुनि के द्वारा दानशाला की प्रेरणा का भी उल्लेख नहीं है और प्रदेशी राजा के स्वत: दानशाला की भावना प्रगट करने पर केशी श्रमण द्वारा निषेध किया गया हो ऐसा भी उल्लेख नहीं है । गृहस्थ धर्म और गृहस्थ भावों के हर प्रवर्तन में जैन मुनि को दखल करना जरूरी नहीं होता है, कितने ही कार्यों में उन्हें तटस्थ और मौन भाव से रहना होता है । तदनुसार केशी श्रमण ने प्रदेशी राजा के उस कथन को मौन पूर्वक ही सुना । उसके पक्ष-प्रतिपक्ष में कुछ नहीं कहा अर्थात् उसके दानशाला खोलने की बात पर धन्यवाद भी नहीं कहा और ऐसा करने से रोका भी नहीं । इस आगम दृष्टा त से भी प्रस्तुत

अध्ययनगत भावों की पुष्टी होती है कि मुनि दोनों प्रकार की भाषा नहीं बोले । इस प्रकार गृहस्थ के मिश्र मार्ग से स ब धित विचारणा, मुनि की भाषा को लक्ष्य करके इस अध्ययन की गाथा १६ से २१ तक की गई है ।

आगे गाथा २२-२३-२४ में मुनि को निर्वाण मार्ग का उपदेश देने का सूचन किया गया हे । वह उपदेश स सार समुद्र में डूबते प्राणियों के लिये द्वीप के समान रक्षक हो । स्वय मुनि आश्रवों को रोके और आश्रव रहित बनकर शुद्ध अनाश्रव धर्म, स यम-स वर धर्म का कथन करे । क्यों कि वही अनुपम और परिपूर्ण मोक्ष मार्ग है । मुनि स्वय भी यतना पूर्वक निर्वाण मार्ग की साधना करे ।

प्रश्न–५ : अनिर्वाण मार्ग का कथन इस अध्ययन में क्यों है ?

उत्तर– निर्वाण मार्ग का साधक निर्वाण मार्ग से विपरीत या अशुद्ध मार्ग से सावधान रहे, इस हेतु से तथा अन्य मार्ग भी साधक के लिये ज्ञेय तो है ही, अत: जानकारी के लिये मार्ग अध्ययन में उन्मार्ग का वर्णन भी हो सकता है । वह वर्णन इस प्रकार है– (१) कई अन्यतीर्थिक बोधि प्राप्त न होने पर भी स्वय को बुद्ध मान कर मनमाने धर्म चलाते हक्त कि तु वे लोग धर्मसमाधि से दूर ही रहते हक्त । वे सचित्त बीज आदि तथा आधाकर्मी आहार खाकर फिर ध्यान करते हक्त । उनका वह ध्यान भी विषयेषणा के लक्ष्यवाला होने से हिंसक पक्षियों के मत्स्येषणा के ध्यान की उपमावाला कहा गया है । अध्यात्म ध्यान तो **तप-स यम-स वर** पूर्वक होता है । सुखशीलता के लोभी कई साधक शुद्ध मार्ग की विराधना करके उसे छोडकर उन्मार्ग में चले जाते हक्त वे दु:ख और मृत्यु को बार बार प्राप्त करते हक्त ।

जिस प्रकार कोई छिद्रों वाली नौका है और अ धा पुरुष उस नौका को चला रहा है; तो वह कैसे पार हो सकता है ? वह नौका सहित बीच में ही डूबने वाला है । उसी प्रकार कई अन्य मतावल बी मिथ्यादृष्टि श्रमण विविध आश्रवों से युक्त होने के कारण स सार में ही डूब जाते हक्त । दु:ख और भय को प्राप्त करते हक्त ।

प्रश्न–६ : स यम मार्ग की आराधना का उद्‌बोधन इस अध्ययन में किस प्रकार है ?

उत्तर– (१) मुनि स यम धर्म को स्वीकार कर महाघोर स सार सागर

को पार करे । (२) आत्म रक्षा करने के लिये स यम में पराक्रम करे । (३) स यम धर्म की दृढता के लिये इन्द्रिय विषयों से विरत रहे । (४) कषायों का निवारण करे, क्यों कि वे चारित्र के विनाशक हक्त । (५) एक मात्र निर्वाण मार्ग में ही स्वय को जोडे, इसके लिये स यम धर्म को ही केन्द्र में रखकर प्रवृत्ति करे । (६) तपश्चर्या में शक्ति लगावे (७) क्रोध मान को सफल न होने दे, निष्फल कर दे । (८) मोक्षमार्ग का मूलाधार शा ति है, अत: कषाय क्षय कर शा त बने । (९) व्रतों में बाधा आने पर या कष्ट-उपसर्ग के समय मेरु पर्वत के समान अडोल, अक प रहकर परीषह-उपसर्ग सहन करे । (१०) प्रदत्त और एषणीय आहार ग्रहण करे । (११) शा त रहकर अ तिम समय में समाधि मरण की प्रतीक्षा करे । इस प्रकार स यम मार्ग–निर्वाण मार्ग का आराधक स सार प्रप च से, दु:खों से सदा के लिये मुक्त हो जाता है ।

बारहवाँ अध्ययन : समवसरण

प्रश्न–१ : इस अध्ययन के नाम की सार्थकता किस प्रकार है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम 'समवसरण' है । इसमें विविध प्रकार के मत-प्रवर्तकों का समूह-स ग्रह समवसरण शब्द में विवक्षित किया गया है । तीर्थंकर के आगमन को तथा उनके व्याख्यान की परिषद को भी 'समवसरण' शब्द से पहिचाना जाता है कि तु यहाँ ऐसा अर्थ अपेक्षित नहीं है । धर्म सिद्धा त की अपेक्षा मुख्य चार प्रकार के मता तरों में छोटे-बडे विभिन्न मतों का समावेश हो जाता है । इस अध्ययन में उन चारों मता तरो की एका तिक मान्यता और उसका समाधान दिया गया है । इस प्रकार चारों मता तररूप समवसरणों का वर्णन होने से इस अध्ययन का 'समवसरण' यह सार्थक नाम है ।

प्रश्न–२ : समवसरण चार कौन से है और उनके भेद प्रभेद क्या है ?

उत्तर– क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी और अज्ञानवादी ये चार समवसरण हक्त । इनके विस्तृत भेद की अपेक्षा ३६३ मतमता तर कहे गयेहक्त । **(१) क्रियावादी के** १८० भेद होते हक्त । मुख्य रूप से नौ तत्त्व हक्त उनके स्वत: परत: एव नित्य अनित्य ऐसे दो दो भेद होते हक्त

फिर काल, स्वभाव, नियति, ईश्वर और आत्मा ये पाँच भेद होने से ९×२×२× ५=१८० कुल भेद होते हक्त । **(२) अक्रियावादी के** ८४ भेद होते हक्त । मुख्य रूप से सात तत्त्व हक्त उन्हें स्वत: परत: दो भेद से गुणा करें, फिर काल, स्वभाव, नियति ईश्वर, यद्दच्छा और आत्मा ये ६ भेद से गुणा करें, यथा– ७×२×६=८४ कुल भेद हुए । **(३) विनयवादी के** ३२ भेद होते हक्त ।(१) देवता (२) राजा (३) यति (४) ज्ञाति (५) वृद्ध (६) अधम (७) माता (८) पिता, इन आठ का मन वचन काया और दान से विनय करना चाहिये । इस प्रकार ८×४=३२ कुल भेद होते हक्त ।

(४) अज्ञानवादी के ६७ भेद होते हक्त । जीवादि ९ तत्त्वों के सात-सात भ ग है (१) अस्ति (२) नास्ति (३) अस्तिनास्ति (४) अवक्तव्य (५) अस्ति अवक्तव्य (६) नास्ति अवक्तव्य (७) अस्ति नास्ति अवक्तव्य यों ९×७=६३ । पहले के चार भ गों में– सत् पदार्थ की उत्पत्ति होती है, यह कौन जानता है और जानने से लाभ भी क्या है ? उसी प्रकार असत्, सदसत् और अवक्तव्य के लिये उक्त प्रश्न उपस्थित करना ये कुल चार भ ग जोडने से ६३+४=६७ भेद होते हक्त ।

प्रश्न–३ : क्रियावादी आदि चारों मता तरों का क्या सिद्धा त है ?

उत्तर– ये चारों एका तवादी है । यों तो क्रियावाद, विनयवाद कुछ दरज्जे ठीक भी है कि तु एका त आग्रह होने से अशुद्ध है ।

(१) क्रियावाद– इस सिद्धा त वाले क्रिया से मुक्ति मानते हक्त । ज्ञान की उपादेयता नहीं स्वीकारते हक्त । जब कि ज्ञान के बिना क्रिया अ धी होती है, पूर्ण रूप से फलदायी नहीं हो सकती । इसलिये क्रियावाद के वर्णन की गाथा ११ में कहा गया है कि– तीर्थंकर विद्या और चरण अथवा ज्ञान और क्रिया दोनों से मुक्ति का कथन करते हक्त । दूसरी बात यह है कि ये क्रियावादी सभी पदार्थों में अस्तित्व धर्म स्वीकार करते हक्त, नास्तित्व धर्म नहीं स्वीकारते । वास्तव में एका त अस्तित्व मानने पर जगत के व्यवहारों का भी उच्छेद हो जायेगा । अत: प्रत्येक वस्तु अपने अपने स्वरूप से है और पर स्वरूप से नहीं है, ऐसा मानना चाहिये ।

(२) अक्रियावाद– ये अक्रियावादी तीन प्रकार के हक्त– (१) आत्मा को ही नहीं स्वीकारते (२) आत्मा आदि सभी पदार्थ क्षण विनाशी–अनित्य है (३) आत्मा सर्वलोकव्यापी है । इन तीनों के मत में क्रिया का कोई महत्त्व नहीं है । क्यों कि मूल आत्मा स ब धी मान्यता ही अशुद्ध है । इस तरह

ये एक प्रकार से नास्तिक मत बनते हक्त । आत्मा के जन्म-मरण भव भ्रमण की सिद्धि इन तीनों में नहीं हो सकती । क्यों कि (१) आत्मा नहीं तो भव भ्रमण किसका ? (२) आत्मा क्षण विनाशी है तो परभव किसका ? (३) सर्वलोकव्यापी है तो मरकर जायेगा कहाँ ? ये एका त-वादी सही मोक्षमार्ग को समझ ही नहीं सकते, कारण यह है कि मूल मान्यता ही अशुद्ध है । वास्तव में आत्मा है वह द्रव्य से नित्य और पर्याय से अनित्य है और शरीर व्यापी है । एक शरीर का त्याग कर नया शरीर धारण कर जन्म मरण करती है ।

(३) विनयवाद– एका त विनयवाद भी दूषित है । क्यों कि यह ज्ञान तथा क्रिया का निषेध करके गुणी अवगुणी पापी धर्मी सभी को एक सरीखा करता है । यह वास्तव में विनय धर्म नहीं, अविवेक धर्म है कि किसी प्रकार का विवेक ज्ञान नहीं करना । इस मत वाले वास्तव में अज्ञानी हक्त, अविवेकी हक्त । इस कारण धर्म के मूल विनय जैसे गुण के आल बन से भी मोक्ष मार्ग से और मुक्ति से दूर जाते हक्त । जिसका कारण यह है कि ज्ञान दर्शन चारित्र तप यह मोक्ष मार्ग है, इसकी उपेक्षा करना ही उनका मूल म त्र है । इस मान्यता वाले यह मानते हक्त कि सभी का विनय करने मात्र से मुक्ति हो जायेगी अर्थात् अहम् भाव का नाश हो जाने से और आत्मा में पूर्ण नम्रता हो जाने से उस आत्मा की शीघ्र मुक्ति हो जाती है । पर तु यह उनका एका तवाद है । नम्रता अच्छी चीज है कि तु अकेले कोई गुण से मुक्ति कहना उपयुक्त नहीं है । अकेले घी से सीरा नहीं बन सकता । जब कि घी सभी पदार्थों में श्रेष्ठ एव कीमती है, फिर भी आटा, शक्कर और पानी के बिना अकेले घी से सीरा कदापि नहीं बन सकता । उसी प्रकार अकेले विनय से ही मुक्ति मानना भ्रम है, गलत है । उसके साथ ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप भी चाहिये । तभी मोक्ष की विवेकपूर्ण साधना हो सकती है । इस मत वाले गधे, कुत्ते, पशु, पक्षी, अधम, उत्तम सभी सामने मिलने वालों को नमस्कार करना ही अपना सिद्धा त मानते हक्त और उसी से मोक्ष प्राप्त करने का स तोष करते हक्त ।

(४) अज्ञान वाद– इस मतवालों की ऐसी समझ होती है कि ज्ञान से अनेक विवाद खडे होते हक्त, विभिन्नताएँ भी ज्ञान वालों में देखी जाती है, आत्मा और लोक के स ब ध में भिन्न-भिन्न मान्यताएँ ज्ञान के

कारण ही है; अतः शा ति का स्थान अज्ञान है और शा ति ही मुक्ति की निशानी है ।

वास्तव में अज्ञानवादियों का कोई सिद्धा त नहीं हो सकता । क्यों कि सिद्धा त तो स्वय ज्ञान स्वरूप होता है । उपदेश देना, किसी को समझाना, चर्चा करना भी ज्ञान के माध्यम से होता है । अज्ञानवादी से वास्तव में पढना, लिखना, बोलना, समझना समझाना, उपदेश देना, चर्चा करना, अपने मत का स्थापन करना और अन्य मत का उत्थापन करना आदि कुछ भी करना नहीं हो सकता । जब कि ये अज्ञानवादी उक्त सभी प्रवृत्तियाँ करते हक्त । इस प्रकार स्पष्ट ही उनके मत में वचन विरोध होता है । ज्ञान का उपयोग हर कदम-कदम पर करना ही पडता है फिर भी ज्ञान की उपेक्षा दिखाना और अज्ञान का दावा करना योग्य नहीं है । सच्चे अर्थ में अज्ञानवादी वे हक्त जो आ ख, मुँह आदि सभी ब द करके काली अ धेरी कोटडी में अकेले बैठकर स लेखना-स थारा की साधना करे । किसी से कुछ भी कहना, समझाना, चर्चा करना उनके अज्ञानवाद का अपमान है और ज्ञान का उपयोग करना होता है । इस प्रकार अज्ञानवादियों की कथनी और करणी में ही विरोध आता है। ऐसे सिद्धा त से कल्याण की जगह कर्म ब ध और स सार वृद्धि होने की अधिक स भावना है । कहा है– **अण्णाणी कि काही, कि वा णाहिइ सेय पावग ॥दशवै.४**। किसी भी क्षेत्र में अज्ञानी प्राणी अपने हिताहित का विवेक नहीं कर सकता । अतः ज्ञानपूर्वक सच्चारित्र द्वारा मुक्ति की आराधना करना ही निराबाध मार्ग है । जो सर्वज्ञ सर्वदर्शी महापुरुषों द्वारा प्रकाशित किया गया है ।

प्रश्न–४ : सर्वज्ञ सर्वदर्शी का कौन सा वाद है ? क्या वह चार समवसरण में नहीं है ?

उत्तर– उक्त चारों समवसरण और चारों वाद एका तवाद की अपेक्षा कहे गये हक्त । सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर प्रभु का मोक्षमार्ग ज्ञान और क्रिया के सुमेल वाला सिद्धा त है । एका त के आग्रह में प्रभु का सिद्धा त नहीं है । जिस प्रकार आटा, पानी, शक्कर एव घी के सुमेल से हलवा–सीरा बनता है, उसी प्रकार प्रभु द्वारा निर्दिष्ट मोक्षमार्ग में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप चारों का समादर है, सुमेल युक्त साधना है । यों अपेक्षा से प्रभु का अनेका गी सिद्धा त क्रियावादी के रूप में परिचय पाता है कि तु

वह एका गी क्रियावादी रूप नहीं है । भगवती सूत्र में चार समवसरण के भेद से तत्त्व विस्तार है, वहाँ सर्वज्ञ प्रभु के सिद्धा त को क्रियावादी के नाम से सूचित किया गया है और एका तवादियों को वहाँ तीन भेदों में ही समाविष्ट किये हक्त । अतः अपेक्षा से तीर्थंकर प्रभु का मार्ग क्रिया-वादी समवसरण में गिनाया जाता है । वह अपेक्षा अनेका त दर्शन रूप और एका त आग्रह के अभाव रूप में है ।

प्रश्न–५ : मतमता तर कितने होते हक्त ? क्या ३६३ ही होते हक्त ?

उत्तर– अलग-अलग समय में इसकी स ख्या घटती बढती रहती है । उसे किसी एक स ख्या में बा धना सत्य से परे हो जाता है । अपेक्षा मात्र से और विवक्षा से ही उस स ख्या का सुमेल करना पडता है । वास्तव में मतमता तर होना समय-समय के मानवों के स्वत त्र चि तन पर निर्भर करता है । एक-एक मुख्य मत भी दुनिया में बहुत है और उसमें भी अनेक बुद्धिवादी चि तको के नये-नये मतमता तर होते रहते हक्त ।

इस अध्ययन में क्रियावादी आदि ४ मुख्य भेद का वर्णन है और व्याख्याकारों ने इन चार के ३६३ कुल भेद किये हक्त । चि तन करते हुए इन भेदों को समझने पर दुनिया के सभी मतमता तरों का इनमें समावेश नहीं हो सकता । फिर भी एक सीमा में ब ध कर किसी भी तरह ३६३ भेद में सभी मतों का समावेश हो जाता है, ऐसा मान लिया जाता है । ऐसी कथन पर परा भी बहु प्रचारित है । उसी कारण से लोक में ३६३ पाख ड मत कहे जाते हक्त । पर तु ऊपर बताये गये चार समवसरण के भेद-प्रभेदरूप ३६३ प्रकार जो हक्त उन्हें ३६३ पाख ड की स ज्ञा में बैठाना पुनः विचारणा करने योग्य है । क्यों कि ईश्वर कर्तृत्ववादी, नियतिवादी अनेक वाद दुनिया में है जिनका ऊपर बताये गये ३६३ भेदों में समावेश नहीं हो सकता । वर्तमान में होने वाले दादा भगवान का मत, सोनगढी, श्रीमद् आदि के प थों को इन भेदों में समझाना कठिन है । अतः चार समवसरण के व्याख्याकारों ने जो ३६३ भेद किये हक्त उन्हें उस रूप में समझा जा सकता है, इसके साथ अन्य भी अनेक मतमता तरों के रूप हो सकते हक्त, यह भी स्वीकारना चाहिये ।

प्रश्न–६ : अध्ययन के अ त में उपस हार के रूप में क्या कहा गया है ?

उत्तर– अ तिम गाथाओं में स सार से मुक्त होने की सूचना दी गई है । (१) मोक्षार्थी साधक छोटे-बडे प्राणियों का ज्ञान करके उन्हें अपनी

आत्मा के समान समझकर बोध प्राप्त करे और अप्रमत्त गुरु के पास दीक्षा ग्रहण करे **(२)** जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ सच्चे ज्ञानी हक्त, जो विचार पूर्वक सत्य धर्म प्रकट करते हक्त, उनके पास अपना जीवन समर्पित करना और रहना चाहिये **(३)** जिसने आत्मा, लोक, आगति-गति, शाश्वत-अशाश्वत, जन्म-मरण, उपपात च्यवन उद्वर्तन आश्रव स वर निर्जरा और दु:ख आदि तत्त्वों को भलीभाँति जाना है, समझा है; वही वास्तव में मोक्षमार्ग के स्वरूप का कथन कर सकता है **(४)** तात्पर्य यह है कि उपदेष्टा और गुरु का विवेक पूर्वक परिक्षण करके ही उन्हें समर्पित होना चाहिये, बिना विवेक किसी का भी उपदेश स्वीकारना या उसके चक्कर में आना अथवा गुरु रूप में स्वीकार कर लेना, अपने जीवन की सफलता के लिये उचित नहीं है । अत: यहाँ मतमता तरों, वादियों का प्रस ग होने से मोक्षार्थी व्यक्ति कहीं गलत जगह न फँस जाय, इसलिये सच्चा उपदेष्टा और सच्चे गुरु का मार्गदर्शन इन गाथाओं में स केत रूप में किया गया है । अ त में साधक को कहा गया है कि (५) सत्य उपदेश और सच्चे गुरु को स्वीकारने के बाद भी शब्दादि विषयों के प्रति आसक्ति या रागद्वेष वृत्ति का त्याग करे, जीवन-मरण की आका क्षा से मुक्त बने, स यम को पुष्ट करे, अस यम से दूर रहे, इन्द्रियों का गोपन करके स सारचक्र से मुक्त बने । इन्द्रिय विषय ही स सार-आवर्त कहे गये हक्त, यथा– **जे गुणे से आवट्टे जे आवट्टे से गुणे ।** आचा.। यहाँ शब्दादि इन्द्रिय विषयों को गुण शब्द से कहा गया है और उन्हें स सार आवर्त कहा है । अत: मोक्षार्थी स यम साधक को इन इन्द्रिय विषयों से विरक्त और सावधान होना जरूरी है । यही सूचना शास्त्रकारने इस अध्ययन की अ तिम गाथा में की है ।

तेरहवाँ अध्ययन : यथातथ्य

प्रश्न–१ : इस अध्ययन के नाम की सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम 'यथातथ्य' है । इस अध्ययन में सुसाधु और कुसाधु का अथवा कुशील और सुशील साधु का यथार्थ- यथातथ्य- सहीसचोट वर्णन किया गया है । इस कारण से इसका **'यथातथ्य'** नाम

सार्थक है । इस अध्ययन के प्रार भ में **'आहत्तहीय '** पद है जिसका स स्कृत शब्द यथातथ्य बनता है । अत: आदि पद के अनुसार भी इस अध्ययन का नाम 'यथातथ्य' उपयुक्त है ।

इस अध्ययन के प्रार भ में साधुओं की कुशीलता और सुशीलता का वर्णन है । तदन तर सुशील के उन्नत गुणों का कथन करते हुए उन गुणों का महत्त्व नष्ट कर देने वाले अवगुणों का कथन किया गया है । साथ ही उन्नत गुणों से सुसाधु का विकास बताया गया है । अ त में साधु को यथातथ्य उपदेश देने का विवेक बताकर यथातथ्य आचरण से स सार मुक्त होने का स देश दिया गया है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में सुसाधु के यथातथ्य गुण क्या कहे हक्त?

उत्तर– इस अध्ययन में सुसाधु का यथातथ्य वर्णन इस प्रकार है– **(१)** सुसाधु गुरु सा निध्य में रहकर उनके आदेश अनुसार एव शास्त्राज्ञानुसार प्रवृत्ति करता है । **(२)** लज्जाशील होता है अर्थात् सुसाधु अनाचार सेवन करने में गुरु आदि से लज्जित होता है । **(३)** श्रद्धाशील– एक मात्र मोक्ष मार्ग में दृष्टि रखने वाला होता है । **(४)** माया रहित व्यवहार वाला । **(५)** आचार्य आदि से अनुशासित होने पर चित्तवृत्ति शुद्ध रखने वाला । **(६)** मृदुभाषी एव विनयादि गुण स पन्न । **(७)** सूक्ष्मार्थदर्शी तथा तप स यम में पुरुषार्थी होता है । (८) साध्वाचार में सहज भाव से प्रवृत्ति करने वाला होता है । **(९)** निंदा प्रश सा में सम मनस्क रहता है । **(१०)** अकषायी एव वीतराग के समान अझ झा प्राप्त–सहज शा त रहता है । **(११)** अपनी पूर्व जाति गोत्र का मद नहीं करता है ।

प्रश्न–३ : इस अध्ययन में कुशील साधु के अवगुणों का यथार्थ निरूपण किस प्रकार किया है ?

उत्तर– इस अध्ययन मे गाथा न २ से ११ तक में साधु की कुशील प्रवृत्तियों का वर्णन है । वे प्रवृत्तियाँ इस प्रकार है–
(१) स यम स्वीकार करके तीर्थंकर कथित समाधि प्राप्त नहीं करते हक्त। **(२)** उपकारी या अनुशास्ता की निंदा करते हक्त । **(३)** आगम सम्मत व्याख्या और पर परा के विपरीत स्वमति से प्ररूपणा करते हक्त । **(४)** वीतराग प्रभु के ज्ञान में कुश का करते हक्त । **(५)** किसी के पूछने पर भी अपने कुशील आचार को छिपाते हक्त जिससे मोक्षफल से अपने को व चित करतेहक्त । **(६)** वास्तव में असाधु होते हुए भी अपने को साधु मानते हक्त । **(७)** मायापूर्वक

मिथ्या भाषण करते हक्त ।(८) प्रकृति के क्रोधी होते हक्त । (९) बिना सोचे विचारे बोलते हक्त, परदोष भाषी होते हक्त ।(१०) उपशा त हुए क्लेश को उभारते हक्त ।(११) जो सदा अशा त और कलह ग्रस्त होते हक्त । (१२) लोगों में भेद पैदा करते हक्त । (१३) अन्यायकारी भाषा बोलते हक्त अथवा जिस विषय में नहीं जानते हक्त तो भी अस गत कथन करते हक्त । (१४) समभाव और शा ति से दूर रहते हक्त ।(१५) अपने आप को महाज्ञानी, सुस यमी, महातपस्वी मानते हक्त ।(१६) अपनी शक्ति का विचार किये बिना किसी के साथ वाद-विवाद करते हक्त ।(१७) अपने गुणों के घम ड में अन्य साधकों को कुछ नहीं समझते, तुच्छ समझते हक्त । (१८) जो मान सन्मान पाकर अपना उत्कर्ष करते है या अपने ज्ञान दर्शन चारित्र आदि गुणों की सेखी वघारते हक्त, डींग हाँकते हक्त ।(१९) दीक्षा लेकर भिक्षाजीवी, परदत्तभोजी होते हुए भी मान में फूल कर अपने गुणों के नाम से अक्कड बनते हक्त ।(२०) साधु होते हुए भी गृहस्थाचार–सावद्य अनुष्ठान का सेवन करते हक्त ।

इन दूषित आचरणों वाले साधु पगद डी को पकडने वाले अ धे व्यक्ति के समान दुःखी हैरान होते हक्त । अन त जन्म-मरण बढाते हक्त, मोह मूढ होकर कोई नरक में जाते हक्त । वे स यम में, साधुता में नहीं रहते हक्त । ये साधक अपना कितना भी अभिमान प्रश सा करे, उनके जाति, गोत्र या माने हुए गुण उन्हें तारने वाले नहीं होते हक्त । उन्हें यह समझना चाहिये कि सम्यग् शास्त्रज्ञान एव सम्यग् स यमाचार के सिवाय कोई तारने वाला नहीं है । उक्त गाथाओं में कुशील के दोष निरूपण के साथ उनका यह परिणाम भी बताया है कि वे मोक्ष प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकते ।

प्रश्न–४ : इस अध्ययन में उच्चकोटि के साधक किसे कहा है ?

उत्तर– जो साधु (१) प्रज्ञामद (२) तपोमद (३) गोत्रमद (४) लाभमद को मन से निकाल देते हक्त वे उच्च कोटि के महात्मा हक्त, प डित हक्त । जो स सार का कारण समझ कर इन मदों से आत्मा को पृथक् कर देते हक्त, जरा भी मद का सेवन नहीं करते, वे उच्च कोटि के महर्षि हक्त और गोत्र कर्म रहित मोक्ष गति को प्राप्त करते हक्त । जो सदा प्रसन्नचित्त रहते है, धर्म एव स यम धर्म के स्वरूप को भलीभाँति समझे हक्त, ग्राम-नगरों में विचरते हुए एषणीय अनेषणीय पदार्थों का विवेक रखते हक्त,

आहार पानी आदि पदार्थों में आसक्ति भाव नहीं रखते हक्त, वे धर्मविज्ञ तथा प्रशस्त लेश्या स पन्न साधु हक्त ।

सामान्य श्रमण भी इन गुणों को धारण करने से उच्च कोटि के महात्मा बन जातेक्त । ऐसा शीला काचार्यने टीका में स्पष्ट किया है । इस प्रकार गाथा १५-१६-१७ में ये भाव कहे गये हक्त ।

प्रश्न–५ : उच्च गुणों पर पानी फेर देने वाले अवगुण इस अध्ययन में किस प्रकार कहे हक्त ?

उत्तर– एक श्रमण सर्वथा अकि चन है । भिक्षा द्वारा निर्वाह करता है । उसमें भी रूखा सूखा आहार प्राप्त करके प्राण धारण करता है । इतना उच्चाचारी होकर भी यदि वह अपनी ऋद्धि-लब्धि एव भक्तों की जमघट या ठाठ बाठ का, अपने शरीर का गर्व करता है, अपनी प्रश सा और प्रसिद्धि की आका क्षा करता है, वह जन्म-मरण की वृद्धि करता है ।

एक श्रमण भाषाविज्ञ है, हितमित प्रिय भाषण करता है, प्रतिभा स पन्न है, शास्त्रज्ञान में निपुण-विशारद है, प्रज्ञावान बुद्धिशाली है एव धर्म भावना से उसका हृदय अच्छी तरह से भावित है परन्तु इतने गुणों के होते हुए भी कभी अह भाव में आकर दूसरों का तिरस्कार करता रहता है, दूसरो की निंदा करता है, उन्हें झिडक देता है, अपने लाभ के मद में अन्य की हीलना करता है । वह साधक समाधि भ्रष्ट हो जाता है । वह गुणवान होते हुए भी मूर्ख की कोटि में हो जाता है ।

ऐसे तुच्छ प्रकृति के साधक अपनी प्रज्ञा के मद में सारे गुणों पर पानी फेर देते हक्त । उनका यह लोक परलोक दोनों ही बिगडता है अर्थात् यहाँ भी निंदा पाते हक्त और विराधक बनते हक्त ।

प्रश्न–६ : मुनि को उपदेश के विषय में इस अध्ययन में क्या निर्देश किया गया है ?

उत्तर– सुसाधु द्वारा मुनिधर्म की मर्यादा में अबाधक यथातथ्य धर्मोपदेश देने या धर्म युक्त मार्गदर्शन देने का इस अध्ययन में स केत किया गया है, वह इस प्रकार है– (१) मुनि स्वय सदा धर्म में रति भाव एव स सार के प्रति अरति भाव में सफल होवे । फिर वह अकेला हो या समूह के साथ हो; प्ररूपणा तो वही करे जो मुनिधर्म के और आगम के अविरुद्ध हो, सुस गत हो ।(२) सुसाधु धर्म का महत्त्व बताते हुए यह प्रेरणा करे कि जीव अकेला ही कर्म करता है, अकेला ही फल भोगता है, जन्मता भी

अकेला है और मरकर परभव में भी अकेला ही जाता है, धर्म के सिवाय उसका कोई मित्र सहायक नहीं है । (३) कर्मब ध के कारण मिथ्यात्व, अव्रत आदि; कर्म ब ध से मुक्ति रूप, मोक्ष और उसके उपाय रूप, सम्यग्दर्शन, स यम आदि का यथार्थ स्वरूप गुरु-आचार्यादि से जानकर जनहितकारक धर्मोपदेश देवें।(४) निंदित-गर्हित कार्य– सप्तव्यसन आदि अथवा अन्याय, अनीति, शास्त्र विपरीत प्ररूपण आदि अकृत्य नहीं करके जीवन में सदाचरण अपनाने का उपदेश करे । सदाचरण-धर्माचरण से परभव स ब धी फल की इच्छा-स कल्प-निदान कदापि नहीं करना ऐसा समझाना चाहिये । पर तु केवल मुक्ति के लक्ष्य से ही धर्माचरण करने कराने का उपदेश देना चाहिये । सार यह है कि अकरणीय कार्यों को नहीं करने का और करणीय कार्यों में शुद्ध लक्ष्य रखने का उपदेश द्वारा समझाना चाहिये । (५) श्रोता के अभिप्राय, प्रकृति, पद, सत्ता का एव उसके श्रद्धेय देव-गुरु का एव अपनी क्षमता-शक्ति आदि का विचार करके, विवेक के साथ, ग भीरतायुक्त भाषा की शालीनता से उपदेश देवें । भाषा या भाव के अविवेक से अथवा श्रोता के मानहानि आदि के कारण कई प्रकार की आपत्ति, विवाद, वैमनस्य पैदा हो सकते हक्त । साधु को आक्रोश, वध परीषह आने की स्थिति भी पैदा हो सकती है, उपदेष्टा का तिरस्कार या बहिस्कार भी किया जा सकता है । अत: परिषद का पूर्ण अनुभव रखते हुए विवेक और भाव शुद्धि के साथ मुनि उपदेश देवे एव किसी का अहित न हो वैसा उपदेश देवे । (६) चतुराई के साथ श्रोता–परिषद के मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय आदि दूर होवे; उनकी आत्मा धर्म में अभिवृद्धि करे, इस प्रकार उपदेश देवे । स्त्रीयों से अथवा शब्द रूप आदि सभी इन्द्रिय विषयों से विरक्ति पैदा हो, इस प्रकार उपदेश देवे । सु दर दिखने वाले स्त्री के रूप आदि और मधुर मनोज्ञ लगने वाले विषय-भोग एव ऐसो-आराम आदि किंपाक फल के समान मधुर है पर तु परिणाम इनका दुर्गति दायक है । यह ज्ञान युक्ति पूर्वक उनकी आत्मा में जमे ऐसा योग्य उपदेश देवे । जिससे वे स सार से विरक्त होकर मुनि धर्म स्वीकार करे या गृहस्थ जीवन में भी आसक्ति घटाकर व्रत प्रत्याख्यानमय जीवन जीवे । (७)साधु अपनी पूजा, प्रतिष्ठा, सम्मान, यश, कीर्ति आदि प्राप्त करने के उद्देश्य से उपदेश न दे कि तु गुरुआज्ञा से, स्वाध्याय हेतु एव धर्मप्रेमी जनता के

हितार्थ धर्मोपदेश देवे तथा जिनशासन की प्रभावना के लिये, धर्मप्रचार के लिये उपदेश देवे । अपनी स यम मर्यादा में रहकर छकाय जीवों की रक्षा-दया युक्त उपदेश करे, किसी भी जीव के अहितकारी उपदेश नहीं करे ।(८) उपदेश कोई सुने या न सुने, आचरण करे या न करे तो भी किसी पर राजी-नाराजी, अव्यवहार, अस तोष भाव न रखे और अस तोष प्रकट न करे, कि तु अपने सामर्थ्य–प्रभाव अनुसार धर्मोपदेश के माध्यम से प्रयत्न करता रहे कि जीव धर्म समझे, व्रती-महाव्रती बने । कि तु इस लक्ष्य से भी किसी को अप्रिय-अमनोज्ञ-अपमान योग्य कुछ न कहे । (९) किसी का अनिष्ट भी न करे । निंदा-विकथा न करे और विकथाओं की चर्चा, उपदेश के माध्यम से न करे । सावद्य–हिंसाकारी आर भजनक प्रवृतियों की प्रेरणा या उपदेश भी न करे । परिषद के देव, गुरु या रुचि आदि की कटु शब्दों में आलोचना, निंदा या मिथ्या आक्षेप आदि युक्त धर्म कथा न करे । (१०) उपरोक्त सभी अनर्थकारी असद् उपदेशों का त्याग कर, विवेक ज्ञान को धारण कर, मुनि शा त, अनुकूल और कषाय रहित होकर उपदेश करे ।

चौदहवाँ अध्ययन : ग्र थ

प्रश्न–१ : इस अध्ययन के नाम की सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन की प्रथम गाथा में आदि पद 'ग थ ' है। इस आदि-पद से अध्ययन का नाम 'ग्र थ'रखा गया है । इस अध्ययन का स पूर्ण विषय भी निर्ग्रंथ के लिये है कि नवदीक्षित निर्ग्रंथ गुरु सानिध्य में रहकर अपना सर्वांगीण विकास करे । श्रुत अध्ययन में, श्रद्धा में, आचार में, एव तपस्या ध्यान आदि में अभ्यास पूर्वक प्रगति करे । अस यम, कर्मब ध, मिथ्यात्व आदि ग्र थियों से दूर रहे । स यम और मुक्ति की पूर्ण पात्रता हाँसिल करे । गुरु शिक्षा या अन्य हितैषियों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा को स्वीकार करने की नम्रता, विनयशीलता, निरभिमानता रखे । वचन योग एव प्रवचनकुशलता स ब धी सद्प्रेरणा शिक्षा वचन भी इस अध्ययन में है । इस प्रकार स सार और परिग्रह रूप ग्र थी का त्याग कर निर्ग्रंथ बनने वाले नवदीक्षित को सच्चा निर्ग्रंथ एव मोक्ष

आराधक बनने का मार्गदर्शन है और साथ ही स्वय तिरने का तथा अन्य को भी तिरने योग्य बनाने का मार्गदर्शन है और वही इस अध्ययन का हेतु है । इस प्रकार इस अध्ययन का नाम सार्थक भी है और आदिपद की प्रमुखता वाला भी है ।

प्रश्न–२ : यहाँ गुरुकुलवास की महत्ता किस प्रकार बताई है ?

उत्तर– (१) नवदीक्षित श्रमण गुरु सा निध्य में रहने से विनय की शिक्षा में एव विनयशील आचरणों में अभ्यस्त होता है । गुरु की विनय भक्ति करने का उसे अपूर्व अवसर प्राप्त होता है । (२) ज्ञान और चारित्र दोनों प्रकार की शिक्षाओं को प्राप्त करता है (३) प्रत्येक प्रवृत्ति में गुरु आज्ञा को प्रमुख रखने का अभ्यास होता है ।(४) समिति, गुप्ति, आसन, सयन आदि में योग्य स स्कार प्राप्त होते हक्त एव सदा अप्रमत्त रहने की प्रेरणा मिलती है ।(५) पक्षी का बच्चा परिपक्व होने के पूर्व अर्थात् प ख आने के पूर्व अपने स्थान को नहीं छोडता है । उडकर इधर-उधर जाना उसके लिये हितावह नहीं होता है । अन्य पशु-पक्षी उसका जीवन विनाश कर देते हक्त । उसी प्रकार नवदीक्षित शिष्य अपने मोक्षसाधक ज्ञान में, श्रद्धान में तथा स यम-आचार में परिपक्व तथा अभ्यस्त न हो जाय तब तक उसे गुरु सा निध्य में रहकर सुरक्षित रहना चाहिये । स्वत त्र विचरण या स्वच्छ द विचरण उसके स यम के लिये हितावह नहीं होता है । वह अपने शुद्ध श्रद्धा, स यम के विचारों को सुरक्षित नहीं रख पाता है अथवा अन्य विचारकों की विचारणा में खींचाया जा सकता है । अन्यतीर्थिक उसे मार्ग भ्रष्ट कर सकते हक्त । अत: गुरु सा निध्य ही शिष्य के लिये सुरक्षा एव विकास का माध्यम है । (६) गुरुकुलवास करने वाले साधक के तप, जप, स यम, नियम, आहार, विहार, भाषा, चि तन, वक्तव्य आदि सुसाधु के योग्य बन जाते हक्त । (७) गुरुकुलवास न करने वाला सही ज्ञान और विवेक के अभाव में स्वच्छ दाचारी बनकर आत्मकल्याण से व चित रह जाता है तथा गुरुकुलवास करने वाला साधक अनेक प्रकार के अभ्यास एव अनुभव से दीर्घदर्शी, अनुभवी और यथार्थ उपदेष्टा बन जाता है । (८) गुरुकुलवास करने वाला शास्त्र-ज्ञान एव श्रुतरहस्यों को प्राप्त कर बहुश्रुत गीतार्थ बन जाता है । गुरु-कुलवास नहीं करने वाला इन उपलब्धियों से व चित रह जाता है । (९) अत: साधक अनेक गुणवर्धक गुरुकुलवास में रहकर आत्मसमाधि प्राप्त

करे । इस प्रकार गुरुकुलवास की महत्ता इस अध्ययन के प्रार भ में दर्शाई गई है ।

प्रश्न–३ : क्या गुरुकुलवास की महत्ता का यह मतलब है कि जीवनभर गुरु के साथ ही रहे ?

उत्तर– इस अध्ययन में पक्षी के बच्चे का दृष्टा त देकर नवदीक्षित, अपरिपक्व साधु को गुरुकुलवास से परिपक्व एव योग्य बनने की प्रेरणा की गई है । ग्रहण-आसेवन सभी प्रकार की शिक्षाओं एव अभ्यास के बाद विद्वान मुनि गुरुआज्ञा से स्वत त्र विचरण करते हुए आत्म-कल्याण एव जिनशासन की प्रभावना कर सकता है । इस अध्ययन के प्रार भ की गाथाओं में गुरुकुलवास की प्रेरणा का आशय यह है कि नवदीक्षित श्रमण को परिपक्व होने तक गुरु सा निध्य में रहना चाहिये एव बहुमुखी आत्मस यम गुणों का विकास करना चाहिये ।

गुरुकुलवास से गुरु या रत्नाधिक का भी ग्रहण हो सकता है । फिर भी गुरु-आचार्य या उपाध्याय आदि का सा निध्य अधिक हितावह है ।

प्रश्न–४ : क्या परिपक्वता प्राप्त करके फिर साधु अकेला विचरण कर सकता है ?

उत्तर– सामान्य रूप से साधकों की स यम साधना स घ-समुदाय एव सहचारी के साथ में रहते हुए ही सुखावह और सुरक्षायुक्त होती है । जिनशासन का यही सामान्य मार्ग, ध्रुवमार्ग और राजमार्ग है । अकेले रहना या विचरण करना सामान्य मार्ग या राजमार्ग नहीं है, यह एक विशिष्ट मार्ग या अपवाद मार्ग है ।

विशिष्ट मार्ग उन साधकों का होता है जो अभ्यास करके गुरु आज्ञा से विशिष्ट तप निर्जरार्थ एकलविहार करते हक्त । वे सचेल, अचेल, जिनकल्पी, पडिमाधारी आदि विविध प्रकार के साधक होते हक्त । वे ससम्मान गच्छ से आज्ञा लेकर एकलविहार करते हक्त और कभी वापिस भी ससम्मान गच्छ में आ जाते हक्त ।

अपवाद मार्ग से एकलविहार करने वाले साधकों के लिये भी आगम में वर्णन मिलता है कि तु ऐसे साधक अपनी **किसी न किसी कमी या अल्प पुण्या शो के कारण या कर्मोदय की विचित्रता के कारण** गुरुकुलवास का सदा के लिये त्याग कर देते हक्त । इन साधकों के सामने विविध प्रकार की परिस्थितियाँ हो सकती है, जिनका कि

शास्त्रों में स केत–उल्लेख भी किया गया है । फिर भी प्रकृति दोष और स्वच्छ दता तथा विचित्र कर्मोदय की प्रधानता होती है । ऐसे साधकों का स यम-जीवन एव जीवन-समाधि सदा खतरे में रहती है ।

यद्यपि इस प्रकार के अपवाद मार्ग का एकलविहार अनेक शास्त्रों में वर्णित है एव इसे एका त आगम विरूद्ध कहना शुद्ध प्ररूपणा नहीं है । फिर भी यह अपवाद मार्ग शारीरिक या मानसिक क्षमता के अभाव में या क्षमता के परिवर्तन हो जाने पर अनेक खतरों से परिपूर्ण होता है । आगम में जो भी इस एकलविहार वालों का प्ररूपण है, वह भी अपने कर्म स योगों से परिस्थितियों के पराधीन आत्माओं की अपेक्षा है । राजमार्ग तो गुरु सा निध्य और गुरु आज्ञा में ही जीवनभर रहने का है एव वही हितावह है । अत: यहाँ वर्णित गुरुकुलवास का तात्पर्य– नवदीक्षित का गुरु सा निध्य में योग्यता हाँसिल करना है; फिर भी सामान्य साधकों को जीवनभर गुरु आज्ञा एव साधु समूह में रहकर स यम आराधन करना ही राजमार्ग है । सुरक्षा का मार्ग है ।

प्रश्न–५ : अन्य द्वारा दी जाने वाली हितावह शिक्षा को स्वीकार करने के स ब ध में इस अध्ययन में किस प्रकार का वर्णन है ?

उत्तर– स यम में किसी प्रकार की स्खलना हो जाने पर छोटा, बडा, समवयस्क या रत्नाधिक कोई भी सावधान करे, शिक्षा दे, उपाल भ दे, मृदु शब्दों में कहे या कठोर शब्दों में कहे; साधु अपने समभावों की स्थिरता के साथ उस शिक्षा को ग्रहण कर अपनी गलती का स शोधन करे । भूल का निर्देश करने वाला गृहस्थ हो या अन्यतीर्थी, बालक हो या वृद्ध अथवा दास-दासी कोई भी क्यों न हो; व्यक्ति और व्यक्ति की वचनपद्धति को नहीं देखकर साधु को अपनी त्रुटि को ही देखना, विचारना एव सुधार कर लेना चाहिये । ऐसे समय में किसी पर क्रोध भी नहीं करना चाहिये या किसी का तिरस्कार भी नहीं करना चाहिये तथा किसी को कटु शब्दों से प्रताडित भी नहीं करना चाहिये । कि तु शिक्षा देने वालों के स केत स देश को स्वीकार कर उन्हें स तुष्ट करना चाहिये।उनके निर्देश को अपने लिये हितकर समझना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त सही मार्गदर्शन या निर्देश करने वालों का उपकार मानना चाहिये । जिस प्रकार ज गल में मार्ग भूला हुआ व्यक्ति सही मार्ग बताने वाले का हार्दिक उपकार मानकर उसके प्रति हृदय में सम्मान

एव आदरभाव रखता है; वैसे ही स यम मार्ग में सावधान करने वाले के प्रति साधु को विशेष आदरभाव रखना चाहिये ।

जो साधक शिक्षादाता पर समभाव नहीं रखकर विषमभाव करता है, सही शिक्षा को स्वीकार नहीं कर सकता है, वह अपने कर्मों का अ त नहीं कर सकता, स सार सागर से पार नहीं हो सकता ।

अत्य त सरलता और नम्रता गुण धारण करने से ही इस सूत्रोक्त आज्ञा का पालन स भव है । अह और अक्कडता से विषमभाव उत्पन्न होते हक्त । गुरु सा निध्य में रहने से ये सुस स्कार प्राप्त होते हक्त ।

प्रश्न–६ : साधु को अन्य भी किन-किन गुणों को धारण करने और विकास करने की प्रेरणा इस अध्ययन में की गई है ?

उत्तर– स यम साधना में हितकारी एव गुण विकास के लिये अनेक प्रेरणा वचन इस अध्ययन में है, यथा–

(१) कैसे भी शब्दों को सुने कि तु मुनि उनसे आश्रव एव कर्मब ध न करे । (२) कैसी भी परिस्थिति आवे, उसे स यभ भाव से पार करना सीखें । (३) रात्रि के अ धकार में जिस प्रकार मार्ग नहीं दिखता है और सूर्योदय होने पर दिखने लगता है, उसी प्रकार जिन वचनों के ज्ञान विकास से साधक ज्ञानी, कोविद, प्रका ड विद्वान बन सकता है । (४) मुनि आगमज्ञान के उपदेष्टा आचार्य आदि की सेवाभक्ति करे, उनके उपदेशों को हृदय गम करे । (५) गुरु से जो कुछ भी सुना-सीखा है, हृदय गम किया है, उसके अनुसार स यम में स्थिर होकर छकाय का रक्षक बने, कर्मक्षय करने में प्रयत्नशील बने, प्रमाद नहीं करे । (६) परिषद, व्यक्ति एव स्वशक्ति देखकर उपदेश देवे । ऐसा उपदेश देवे कि स्व-पर के कर्म की निर्जरा हो । (७) किसी के प्रश्न का उत्तर देने में पूर्वापर अविरुद्ध और स गत उत्तर दे, सिद्धा त विपरीत व्याख्या न करे, किसी का परिहास न करे और खुद की शास्त्रज्ञता का गर्व भी न करे । (८) धर्म कथा करके किसी से मान- सम्मान, प्रश सा अथवा अन्य कुछ भी आका क्षा न करे । (९) क्लिष्ट या गूढ विषयों की व्याख्या करते समय अनेका तवाद का आश्रय रखे अथवा ऐसे विषयों को नय-निक्षेप आदि से विभाजन करके समझावे ।(१०) अल्प शब्दों में कही जाने वाली बात को शब्दाड बर द्वारा विस्तृत न करे, कि तु स क्षेप में कहने से जो बात समझ में न आ सके, उसे विस्तार करके समझावे ।

(११) आशीर्वचन या सावद्य प्रेरक वचन न बोले । (१२) हिंसाजनक म त्र प्रयोग करके वचन समिति या स यम को दूषित न करे कि तु पाप का विवेक रखकर निर्दोष भाषा बोले । (१३) धर्मोपदेश में किसी की श्रद्धा-समकित को विचलित न करे । आगम अर्थ को दूषित न करे, सूत्रार्थ न छिपावे। (१४) शास्त्र विहित तपश्चर्या की प्रेरणा करे। (१५) उत्सर्ग-अपवाद स ब धी शास्त्र विधानों को यथायोग्य विधि से स्थापित एव प्रतिपादित करे ।

ऐसे बहुमुखी गुणों को धारण करने वाला निर्ग्रंथ वास्तव में कर्मग्रंथी रहित होकर सर्वज्ञोक्त समाधि और मुक्ति को प्राप्त कर सकता है ।

प द्रहवाँ अध्ययन : आदानीय

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम और उसका हेतु क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन के 'आदानीय' एव 'यमकीय' दो नाम हक्त । दोनों नाम के दो दो कारण हक्त–

यमकीय– (१) 'जमतीत' शब्द से इस अध्ययन की प्रथम गाथा का प्रार भ हुआ है अत: आद्य पद की अपेक्षा इसका नाम यमतीत है । जमतीत और 'जमईय' ये दोनों आर्ष प्राकृत रूप है । जिसका मूल शब्द यमकीय है । (२) इस अध्ययन की गाथाओं में यमक नामक अल कार का प्रयोग हुआ है, उस कारण से इस का नाम 'यमकीय' सार्थक है ।

कुल २५ गाथाओं में से २१ गाथाओं में पूर्व गाथा से आगे की गाथा में शब्द स ब ध होकर यमक अल कार है अर्थात् पूर्व गाथा के अ तिम शब्द से या अ तिम चरण में आये शब्द से आगे की गाथा का प्रार भ हुआ है । शेष चार गाथा [१२,१६,१७,१८] में पूर्वापर गाथा स ब ध नहीं है कि तु उसी गाथा के दूसरे चरण के अ तिम शब्द से तीसरे चरण का प्रार भ है । इस प्रकार अपेक्षा से २५ ही गाथाओं में यमक अल कार का प्रयोग है ।

आदानीय– (१) प्रथम गाथा के पद को अगली गाथा में आदान–ग्रहण किया जाता है, इसलिये इस अध्ययन को 'आदानीय' कहा है । (२)

धन आदि का ग्रहण द्रव्य आदान है । क्रोधादि या कर्मब ध ये अप्रशस्त भाव आदान है । मोक्षार्थी के योग्य गुण वृद्धि एव सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र ये प्रशस्त भाव आदान है । इस अध्ययन में प्रशस्त भाव आदान की प्रमुखता वाला वर्णन है । इस कारण इस अध्ययन का नाम **आदानीय** है । इस अध्ययन की गाथाओं का उच्चारण श्रृ खलाबद्ध होता है, इस कारण व्याख्याकार ने इसे 'स कलिका' अथवा 'श्रृ खला' कहा है । सा कल की कडियों के समान गाथाएँ आपस में जुडी हुई है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन का मुख्य विषय क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में गाथा रचना में अल कार प्रयोग के कारण शब्दों की मुख्यता होने से विषयबद्धता नहीं है । फिर भी अध्यात्म प्रधानता और मोक्षमार्ग की प्रमुखता युक्त वर्णन है । जिसमें सम्यक् श्रद्धा, सम्यग् साधना, मनुष्यत्व और धर्माचरण की दुर्लभता, मुक्तात्माओं का अपुनरागमन और स यम साधना का परिणाम दिखाया गया है ।

प्रश्न–३ : सम्यक् श्रद्धा प्रेरक कथन इस अध्ययन में किस प्रकार है ?

उत्तर– इस अध्ययन की प्रार भिक गाथाओं में बताया गया है कि तीर्थंकर के घातीकर्म का क्षय हो जाने से उनका ज्ञान और उपदेश सत्य से परिपूर्ण होता है ऐसा सत्य हितावह उपदेश सर्वत्र, अन्यत्र सुलभ नहीं होता है । तीर्थंकरों के सर्व स शय भी नष्ट हो जाते हक्त । वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हक्त । अत: उनके कहे गये सर्व पदार्थ सत्य एव श्रद्धा योग्य होते हक्त । उनके द्वारा कहे गये जीव स्वरूप को जानकर, सर्व प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखते हुए, उन प्राणियों के प्रति कि चित् भी विरुद्ध न करते हुए, भावों की शुद्धि के साथ स यम आराधन करना चाहिये । इस प्रकार दृढ श्रद्धा के साथ आगे बढने वाला नौकाभूत बन जाता है अर्थात् नौका अगाध जल को पार करके विश्राम लेती है उसी प्रकार श्रद्धा युक्त स यम साधक स सार पार करके दु:खों से मुक्त हो जाता है ।

प्रश्न–४ : सम्यक् साधना का माहात्म्य किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर– बुद्धिमान साधक साधना करते हुए नये कर्म स ग्रह कम करता है । जिससे उसके पापकर्मों का क्षय और जन्म मरण का अभाव होता है ।

वीर आत्मसाधक स यम साधना करते हुए स्त्री स सार से पूर्ण ऊपर उठ जाता है । वह कामभोगों का उल्ल घन कर जाता है । स्त्री सेवन से मुक्त एव दृढता से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला वह शीघ्र मोक्षगामी होता है ।

परमार्थदर्शी वह साधक मन वचन काया से किसी भी प्राणी के साथ विरोध भाव न करके सर्व जीवों के प्रति सदाचरण करता है ऐसा साधक मनुष्यों में चक्षुभूत बन जाता है ।

धीर–धैर्यवान साधक अ त-प्र त-अमनोज्ञ आहार, पानी, मकान, वस्त्र आदि का सेवन करके स तुष्ट रहता है, वह कर्मों का अ त कर धर्माराधक बनता है । वह निष्ठितार्थी साधक सर्व कर्म क्षय करके मुक्त होता है अथवा देवगति प्राप्त करता है ।

प्रश्न–५ : धर्म की विराधना का फल किस प्रकार बताया है ?

उत्तर– प्राप्त धर्म एव प्राप्त मनुष्य जन्म को जो प्राणी यों ही खो देता है, उसे पुनः मनुष्य जन्म और धर्मबोधि-धर्मज्ञान मिलना दुर्लभ हो जाता है और मोक्ष प्राप्ति के लिये प्राप्य मुख्य साधन ये दो ही हक्त । बिना मनुष्य जन्म के भी मुक्ति स भव नहीं है और धर्म समझ के बिना भी मोक्ष साधना शक्य नहीं है । इसलिये प्राप्त मानव जन्म एव प्राप्त धर्मज्ञान को सार्थक करने में पुरुषार्थ करना चाहिये, आलस्य प्रमाद में इसे नहीं गुमाना चाहिये ।

प्रश्न–६ : धर्म की आराधना का फल किस प्रकार बताया है ?

उत्तर– प डित पुरुष तीर्थंकर भगवान के उपदेश को पाकर स यम ग्रहण करते हक्त । स यम में पुरुषार्थ कर कर्मों की निर्जरा करते हक्त । नये कर्म-ब ध नहीं होने से अनुक्रम से उनके पूर्व कर्म क्षीण होते जाते हक्त । वे मोक्ष सम्मुख साधना में आगे बढते जाते हक्त । ऐसे वीर साधक भूतकाल में अनेक हुए हक्त और भविष्य में भी होंगे जो स यम साधना में सफल होकर शल्यों को, कर्मों को काटकर स सार सागर को पार करते हक्त । इस प्रकार आराधना करने वाले अपने लक्ष्य को पूर्ण कर शाश्वत सुखों को प्राप्त करते हक्त और स सार दुःखों से मुक्त हो जाते हक्त ।

सोलहवाँ अध्ययन : गाथा

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम और इसकी विशेषता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम 'गाथा' है । इसमें एक भी गाथा–श्लोक नहीं है । यह अध्ययन गद्यात्मक है । जब कि प द्रह अध्ययन पद्यमय है । यह अध्ययन सभी अध्ययनों से छोटा है पर तु इसमें श्रमणों के विशाल गुणों का स कलन है ।

गाथा शब्द के प्राप्त होने वाले अनेक अर्थों में एक अर्थ है– 'प्रश सा' है । इस अध्ययन में स यम साधक आत्माओं की अनेक गुणों के माध्यम से प्रश सा की गई है ।

गाथा शब्द का एक अर्थ है– 'उपदेश' । इस अध्ययन में अनेक श्रमण गुणों के स कलन द्वारा श्रमणों को इन गुणों को धारण करने की प्रेरणा प्रकट होती है और इन गुणों से समन्वित साधक ही सच्चे अर्थ में मोक्षसाधक मुनि है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन में विषय विभाजन किस प्रकार है ?

उत्तर– इस अध्ययन में मोक्ष साधक मुनि के चार पर्याय शब्दों के माध्यम से गुणों का विभाजन है । यथा– (१) माहण–अहिंसक (२) श्रमण (३) भिक्षु (४) निर्ग्रंथ । माहण, श्रमण, भिक्षु और निर्ग्रंथ किसे कहा जा सकता है ? वास्तव में इन शब्दों से कहलाने योग्य कौन है ? यह इस अध्ययन में बताया गया है ।

प्रश्न–३ : 'माहण' किसे कहा जा सकता है ?

उत्तर– इस पद में दो पद हक्त– मा+हण । इसका अर्थ है कि– 'किसी भी प्राणी की हिंसा न करो' इस प्रकार का जो उपदेश अन्य को देता है और स्वय भी सूक्ष्म, स्थूल, त्रस-स्थावर किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता है वह माहण-माहन कहलाता है । यहाँ 'माहण' शब्द का ब्राह्मण अर्थ नहीं समझना चाहिये । ब्रह्मचर्य में निवास करने वाला भी ब्राह्मण कहा जाता है । प्रस्तुत में अहिंसक अर्थ में **माहण** शब्द का प्रयोग हुआ है ।

सूत्र में बताया गया है कि, जो हिंसा प्रमुख अठारह पापों का

त्याग करता है, पाँच समिति का सम्यक् पालन करता है, ज्ञानादि को सम्यग् धारण करता है, सदा जीवों की यतना करता है, दया पालता है तथा जो गुस्सा घम ड नहीं करता है; वह **माहण** कहा जाता है ।

प्रश्न–४ : श्रमण कौन कहा जाता है ?

उत्तर– (१) मोक्ष मार्ग में श्रम करने वाला (२) सर्व जीवों प्रत्ये समभाव रखने वाला या सदा समभाव में रहने वाला तथा (३) जो अपने परिणामों को, मन को शुद्ध–पवित्र रखने वाला होता है वह श्रमण, शमन, समन कहा जाता है । श्रमण शब्द के ये तीन प्रकार से शब्दार्थ होते हक्त ।

सूत्र में बताया गया है कि जो किसी के आश्रित न हो या जो किसी भी पदार्थ में आसक्त न हो, इहलोक परलोक की आशा-आका क्षा से रहित हो, सर्व कर्म ब ध के स्थानों से निवृत्त हो, रागद्वेष वर्धक समस्त प्रवृत्तियों, चि तनों से जो मुक्त हो; सर्व पापों का तथा कषायों का त्यागी हो, इन्द्रियों एव मन पर विजय प्राप्त करने वाला हो, शरीर सुश्रुषा और ममत्व से रहित हो; ऐसा मोक्षार्थी स यमी साधक **श्रमण** कहलाने योग्य होता है ।

प्रश्न–५ : भिक्षु कौन कहा जाता है ?

उत्तर– भिक्षा द्वारा शरीर निर्वाह करते हुए मोक्ष साधना करने वाला भिक्षु होता है । यह सामान्य अर्थ है ।

सूत्र में बताया गया है कि जो अपने गुणों का कभी अभिमान नहीं करता है, अपने को बडा बताने का प्रयत्न नहीं करता है, विनय स पन्न होकर सदा नम्र व्यवहार करता है, इन्द्रियों को एव मन को वश में रखता है, शरीर ममत्व छोडकर कर्म धुनने में लीन बन जाता है; परीषह उपसर्ग में नहीं घबराता है अर्थात्(समभाव) प्रसन्न भावों से सहन करता है, स यम भावों में उपस्थित रहता है, दृढता–स्थिरता के साथ स यम में आगे बढता है, विचारपूर्वक तथा विवेकपूर्वक स यम आराधन करता है, स यम आराधना के विचारो से ही जो परदत्तभोजी होता है, क्यों कि परदत्तभोजी बने बिना अस यम से छूटा नहीं जा सकता अर्थात् जो स्व उत्पादित भोजी होगा, उसे अनेक आश्रवों का सेवन अवश्य करना पडेगा । इसलिये भिक्षु के गुणों का उपस हार करते

हुए सूत्र में कहा गया है कि जो स यम विचारों के साथ परदत्तभोजी होता है । ऐसा गुण स पन्न साधक भिक्षु कहाने के योग्य होता है ।

प्रश्न–६ : निर्ग्रंथ कौन कहा जाता है ?

उत्तर– रागद्वेष रूपी ग्र थी, विषमभाव रूपी ग्र थी, अज्ञान रूपी ग्र थी, आश्रव रूपी ग्र थी से जो मुक्त होता है; ये भाव ग्र थियाँ जिस आत्मा में से निकल जाती है, वह निर्ग्रंथ होता है ।

सूत्र में बताया गया है कि– जो द्रव्य से सहाय रहित अकेला और भाव से रागद्वेष रहित होने से एकाकी हो, जो आत्मा के एकाकीपन को अच्छी तरह जानता समझता हो कि जीव अकेला आया और अकेला जायेगा; स्वय अकेला ही अपने कर्म भोगता है इत्यादि, जो सदा जागृत हो–सावधान हो, आश्रवों का भलीभाँति निरोध करने वाला हो, इन्द्रियों के प्रति सम्यक् स यमवान हो, समितियों का सम्यक् पालन करता हो, समभावी हो, आत्मार्थी हो, आत्मवाद को अच्छी तरह समझा हो, पदार्थों के स्वभाव का ज्ञाता हो–अनुभवी हो, रागद्वेष से कर्मों का ब ध नहीं करता हो, पूजा प्रश सा की चाहना से रहित हो, मात्र धर्मार्थी, धर्म को चाहने वाला हो, धर्म के रहस्य को समझने वाला हो, एक मात्र मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य हो, स यम में सम्यक् प्रकार विचरण करता हो एव पूर्व सूत्रोक्त गुणों से भी युक्त हो, वह साधक निर्ग्रंथ कहलाने के योग्य होता है ।

इस प्रकार चार सूत्रों के द्वारा जैन श्रमण के अनेक गुणों का स कलन करके श्रमण को इन गुणों से युक्त होने की प्रेरणा की गई है । इस अध्ययन का यही तात्पर्य है कि श्रमण सच्चे गुणों से स पन्न बनकर सफल साधना करे ।

॥ प्रथम श्रुतस्क ध स पूर्ण॥

द्वितीय श्रुतस्क ध : परिचय

प्रश्न–१ : दूसरे श्रुतस्क ध के सात अध्ययनों के नाम और विषय क्या है ?

उत्तर– अध्ययनों के नाम और विषय इस प्रकार है–

क्रम	नाम	विषय
१.	पु डरीक कमल	कमल प्राप्ति के इच्छुक पाँच पुरुषों की उपमा से चार मता तर एव जिनमत के श्रमण ।
२.	क्रियास्थान	तेरह क्रिया स्थान एव धर्म अधर्म पक्ष-स्वरूप
३.	आहार परिज्ञा	समस्त जीवों के आहार वषयक विविध विचारणा
४.	प्रत्याख्यानक्रिया	अप्रत्याख्यानी जीवों का स्वरूप एव प्रत्याख्यान माहात्म्य ।
५.	अनाचार श्रुत	अनाचरणीय–श्रद्धा, प्ररूपणा एव प्रवृत्तिया।
६.	आर्द्रकीय	अनार्य क्षेत्रीय आर्द्रकुमारकी दीक्षा एव अन्यतीर्थिक स वाद ।
७.	उदक-पेढालपुत्र (नाल दीय)	नाल दा में गौतमस्वामी और उदक पेढाल पुत्र पार्श्वस्थविर की धर्म चर्चा ।

प्रथम अध्ययन : पु डरीक कमल

प्रश्न–१ : इस अध्ययन के नाम की सार्थकता किस प्रकार है ?

उत्तर– अध्ययन के प्रार भ में जल से परिपूर्ण पुष्करणी का वर्णन है । वह पुष्करणी कमल पुष्पों से आकीर्ण है, व्याप्त है ।उन पुष्पों के मध्य एक अति सु दर अति विशालकाय पु डरीक-श्वेत-अतिश्वेत श्रेष्ठ कमल है । इस प्रकार कमल वाली पुष्करणी की कल्पना की गई है । फिर उस पु डरीक कमल को ग्रहण करने की लालसा-इच्छा वाले पुरुषों का सा गोपा ग विवरण दिया गया है । इस प्रकार ‘‘पु डरीक कमल’’ की प्रधानता से प्रार भ किये इस अध्ययन का **पु डरीक कमल** यह सार्थक नाम है ।

प्रश्न–२ : प्रथम श्रुतस्क ध के प्रथम अध्ययन से इस अध्ययन की समानता किस प्रकार है ?

उत्तर– वहाँ पर भी मत मता तरों स ब धी विविध चर्चा विचारणाएँ है और यहाँ इस अध्ययन में कमल ग्रहण करने के इच्छुक पाँच पुरुषों के रूप में प्रमुख अन्यमतों की चर्चा करके स्वमत की(स यम धर्म से मुक्ति की)चर्चा की गई है । इस प्रकार दोनों जगह के विषयों में अ तर मानसता स्वमत एव परमत के स्वरूप को समझाने की है।इस अपेक्षा से दोनों का विषय समान है ।

प्रश्न–३ : पु डरीक कमल का दृष्टा त किस प्रकार समझाया है ?

उत्तर– यह कल्पित दृष्टा त कहा गया है कि मानो कोई एक पुष्करणी है । वह कमल पुष्पों से व्याप्त है । उन पुष्पों के मध्य एक बहुत बडा मनोहर श्वेत कमल पुष्प है । उस पुष्करणी में चारों दिशाओं से प्रवेश मार्ग है । चारों दिशाओं से क्रमशः एक-एक पुरुष आता है, वह पुष्करणी के दृश्य को देखकर प्रसन्न हो जाता है और मध्य के कमल पर उसका मन मोहित हो जाता है, उस कमल को लेने के लिये लालायित हो जाता है । प्रथम पुरुष अपने आप को होशियार दक्ष कुशल समझकर पुष्करणी में उतर जाता है । पुष्करणी अतिविशाल एव दुर्गम्य है । वह पुरुष कमल तक नहीं पहुँच पाता है, बीच ही कीचड में फँस जाता है । न वह आगे जा सकता, न वापिस आ सकता, दुःखी-खेदयुक्त बन जाता है । दूसरी दिशाओं से भी इसी तरह एक- एक पुरुष आता है । वह पूर्व वाले व्यक्ति को फँसा हुआ देखकर सोचता है कि यह पुरुष अकुशल है, मक्त कुशल होशियार हूँ, कमल प्राप्त कर सकता हूँ । ऐसा सोचकर वह कमल लेने जल में प्रवेश करता है तथा पूर्व पुरुष की भा ति वह भी कीचड में फँस जाता है । चारों दिशाओं से आने वाले चारों पुरुषों की यही दशा होती है ।

पाँचवाँ पुरुष आता है वह भी कमल को प्राप्त करना चाहता है और पूर्व फँसे पुरुषों की दशा को भी देखता है । वह सावधान हो जाता है, पुष्करणी के किनारे ही स्थित हो जाता है और उच्चारण करता है कि हे कमल ! बाहर आ जा, हे श्वेत कमल ! तूँ बाहर आजा । पूर्ण मनोयोग एव लगन से किये उच्चारण के साथ ही वह कमल उसे प्राप्त हो गया ।

इस दृष्टा त की कल्पना को पूर्ण करके शास्त्रकारने बताया है कि पुष्करणी को मक्तने स सार समुद्र कहा है, कमल पुष्प को मोक्ष कहा है । चार पुरुष को मक्तने विविध एका तवादी मतमता तर कहा है और पाँचवाँ पुरुष मक्तने मोक्षमार्ग एव उसमें उपस्थित भिक्षु कहा है ।

प्रश्न–४ : मत मता तर कौन कौन से कहे हक्त ?

उत्तर– स क्षिप्त में चार मता तर कहे हक्त– (१) जीव और शरीर को एक ही मानने वाला– उसके मत में आत्मा नामकी कोई अन्य वस्तु नहीं है । (२) पाँच महाभूतों को स्वीकार करने वाला– उसी से सब कुछ बनता है। (३) ईश्वरवादी– सब कुछ ईश्वर करे वहीं होवे। (४) नियतीवादी– जो होनहार है वही होवे, किसी के किये कुछ नहीं होवे ।

प्रश्न–५ : इन मत–मता तरों की विस्तृत मान्यता और उस का सम्यग् समाधान क्या है ?

उत्तर– इस सूत्र के श्रुतस्क ध-१, अध्य.१ में प्रश्न न . ४ से १५ तक अनेक मत मता तरों की चर्चा विचारणा की गई है, वहीं पर देखना चाहिये ।

प्रश्न–६ : पाँचवें पुरुष के स ब ध में यहाँ क्या निरूपण है ?

उत्तर– पाँचवें पुरुष के समान भिक्षु है । जो स पूर्ण सावद्य योगों का, आश्रवों का, कामभोगों का एव धन-परिग्रह का त्यागी होता है । स सार प्रवाह रूपी किसी भी कीचड में नहीं उतरता है । किनारे रहकर ही आत्मशक्ति का विकास करके स्वय स सार से मुक्त होता है । एव भव्यजनों को नि:स्पृह भाव से स सार कीचड से निकलने का बोध देता है । तदन तर विरक्तात्मा मुनि की सम्यग् श्रद्धा, अ तर जागृति, विविध आत्मबोध एव स यम के नियमोपनियमों का, दया भाव का, समभाव का एव धर्म पराक्रम का स्वरुप बताया गया है ।

अ त में कहा गया है कि वह भिक्षु अपने पास में आने वाले ज्ञानी या अज्ञानी जिज्ञासुओं को– तत्त्वों का स्वरुप, विरति(पाप त्याग), कषायों की उपशा ति, आत्मशा ति, भावों की निर्मलता या पवित्रता, सरलता, नम्रता और समस्त चराचर प्राणियों की रक्षा रूप अहिंसा का उपदेश देवे । वह उपदेश भी नि:स्वार्थ भाव से एव रुचि पूर्वक देवे ।

प्रश्न–७ : इस अध्ययन में भिक्षु के लिये कितने शब्दों का प्रयोग है ।

उत्तर– इस अध्ययन में एक जगह एक वाक्य में अनेक नये-नये शब्दों

से भिक्षु का कथन किया गया है, यथा– (१) श्रमण (२) माहन (३) क्षमा-शील (४) दमितात्मा (५) गुप्त (६) मुक्त (७) महर्षि (८) मुनि (९) सुकृति(यति) (१०) विद्वान (११) भिक्षु (१२) रूक्ष(स सार से उदासीन) (१३) मोक्षार्थी (१४) चरण-करण-पारवेत्ता । इन नामों से कहा जाने वाला अणगार ही पाँच पुरुषों में योग्य एव सर्वश्रेष्ठ प चम पुरुष है ।

प्रश्न–८ : भिक्षु के लिये वैराग्य पूर्ण चि तन क्या बताये हक्त ?

उत्तर– इस लोक में कोई भी मनुष्य चाहे वह आर्य हो या अनार्य, छोटा हो या बडा, एव गोत्र या वर्ण से भी कैसा भी हो, अल्प परिग्रही या विशाल परिग्रही हो, स्वजन सामग्री प्रचुर हो या नहींवत् हो तो भी जिसके पास जो कुछ है उसे छोडकर वैराग्य से दीक्षित होता है वह यह समझता है कि– **(१)** स सार के प्राणी यह समझते हक्त कि– यह मेरा, यह मेरा, भाई, पति, पुत्र, माता आदि धन स पत्ति, मित्र, ज्ञातीजन मेरे, पर तु रोग, दु:ख, स कट आने पर या मृत्यु आने पर कोई त्राण, शरणभूत नहीं हो सकते । **(२)** जो कुछ सु दर भोग-उपभोग की सामग्री है, सुख सुविधाएँ और पाँच इन्द्रिय के विषय हक्त, नृत्य गान आदि स योग हक्त, वे भी स कट में त्राण शरण भूत नहीं होते और अ तराय कर्मस योग हो तो ये सभी पदार्थ मानव को छोड कर चले जाते हक्त । अत: ये सब अन्य है, मेरी आत्मा अन्य है, फिर इनमें क्यों मूर्च्छित होऊँ !!! **(३)** कोई किसी के दु:ख को ले नहीं सकता । अन्य के कर्म अन्य भोग नहीं सकता । अकेला ही जीव जन्मता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही अन्यान्य गतियों में भ्रमण करता है । **(४)** प्राप्त शरीर में भी प्राणी ममत्व करता है, पर तु इसे भी छोडकर जाना ही पडता है । यह शरीर भी अनेक प्रकार से दु:खप्रद बन जाता है । **(५)** इसलिये जो कुछ जैसा भी मिला है, उसे यथा समय त्याग कर, उसका ममत्व त्याग कर आत्म विकास कर लेना चाहिये । आत्म विकास के लिये की गई साधना, ज्ञान-स यम-तप का प्रतिफल भव-भवा तर तक साथ चलकर सुखदाई हो सकता है और अ त में स पूर्ण दु:खों से और दु:ख पर परा से मुक्त करा सकता है ।

प्रश्न–९ : एतेसि चेव णिस्साए ब भचेरवास वसिस्सामो । कस्स ण त हेउ ? जहा पुव्व तहा अवर , जहा अवर तहा पुव्व । अ जू चेते अणुवरया अणुवट्ठिया, पुणरवि तारिसगा चेव । *इस वाक्य का सरलार्थ तथा तात्पर्यार्थ क्या है ?*

उत्तर– सरलार्थ– [सार भी सपरिग्रही जो गृहस्थ तथा श्रमणादि हक्त] उनका ही आश्रय करके हम स यम का पालन करेंगे । इसका क्या कारण है ? **उत्तर–** ये लोग जैसे पहले आर भ परिग्रही थे वैसे ही बाद में भी हक्त और जैसे अभी(बाद में) हक्त वैसे ही आर भ परिग्रही पहले थे । अ जू= अत: स्पष्ट है कि ये लोग आर भ परिग्रह से विरत नहीं है और स यम धर्म में उपस्थित नहीं हक्त । **पुणरवि**=ये श्रमणादि प्रव्रजित होने पर भी गृहस्थ जैसे ही हक्त ।

तात्पर्य यह है कि गृहस्थ तो आर भ परिग्रह वाले होते ही हक्त और विविध स न्यासी भी गृहस्थ जैसे ही अनेक प्रकार का परिग्रह, खेती आदि प्रवृतियाँ एव स्त्री आदि से युक्त होते हक्त । अत: उनके पास आहार-पानी मकान आदि अपनी मालिकी की अनेक वस्तुएँ होती है । जब तक उम्र है, शरीर है तब तक जीवित रहने हेतु भिक्षु को इन परिग्रह सामग्री तथा आर भ प्रवृत्ति वालों के आधार से जीवन की अत्य त आवश्यक वस्तुएँ भोजन मकान आदि यथासमय प्राप्त होते हक्त, इन्हीं से याचना करके प्राप्त करने की आशा रहती है । अत: भिक्षुओं का स यमजीवन, आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति की अपेक्षा गृहस्थों–सा सारियों के आश्रित होता है, निश्रागत होता है । इसलिये कहा है– **एतेसि चेव णिस्साए ब भचेरवास (स यम) वसिस्सामो ।**

प्रश्न–१० : भिक्षु की स यम चर्या के विषय में क्या निरूपण है ?

उत्तर– (१) सभी जीवों को आत्मवत् समझकर हिंसा आदि(परिग्रह तक)से पूर्ण विरत रहे । ते विरत भिक्षु द तप्रक्षालन, आँखों में अ जन-म जन तथा वमन, विरेचन, धोतिणेति वगेरे प्रवृत्ति नहीं करता है **(२)** फलाका क्षा नहीं करता **(३)** अठारह पापों का सेवन नहीं करता **(४)** छकाया के जीवों का तीन करण तीन योग से हनन नहीं करता (५) भोगोपभोग सामग्री इकट्ठी नहीं करता । **(६)** सा सारिक प्रवृत्तियाँ नहीं करता । **(७)** अपने लिये बना आहार नहीं लेता एव अन्य भी सामने लाये आहार आदि नहीं लेता । पर तु गृहस्थ जो अपने प्रयोजनों से बनाता है उसमें से ही आहार निर्दोष ग्रहण कर जिनाज्ञानुसार उसका सेवन करता है । **(८)** यथासमय आगम निर्दिष्ट विषयों पर उपस्थित जनपद को उपदेश देता है । यथा– जीवादि के अस्तित्व का=सम्यग्श्रद्धान का, त्याग प्रत्याख्यान का, देश विरति-सर्वविरति का, उपशा ति(क्षमा),

मुक्ति(निर्वाण)–मोक्ष का, भावों की पवित्रता, सरलता, नम्रता, अल्प स ग्रहता तथा अहिंसा का । समस्त जीवों का विवेक लक्ष्य रखकर, किसी भी आशा बिना मात्र निर्जरा के लिये प्रसन्न भाव से उपदेश देता है । उपदेश सुनकर जो मुमुक्षु आत्माएँ स यम धर्म में उपस्थित होते हक्त वे स सार से मुक्त हो जाते हक्त । इस प्रकार वह भिक्षु मोक्ष रूपी श्रेष्ठ पद्मकमल को प्राप्त करने वाला होता है ।

दूसरा अध्ययन : क्रियास्थान

प्रश्न–१ : इस अध्ययन के नाम की सार्थकता एव विषय वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– तेरह प्रकार की क्रियाओं का एव धर्म-अधर्म क्रिया का वर्णन होने से इस अध्ययन का नाम **क्रियास्थान** सार्थक है । तेरह क्रियास्थान के वर्णन के बाद धर्मी, अधर्मी और मिश्र ये तीन प्रकार के पुरुष कौन है, उसको दो विकल्पों से विस्तार पूर्वक समझाया है । अ त में धर्म अधर्म रूप दो पक्ष करके अधर्म पक्ष वालों को अहिंसा का पाठ मार्मिक ढ ग से पढाया है ।

प्रश्न–२ : तेरह क्रियास्थान व उनके अर्थ क्या है ?

उत्तर– (१) अर्थद ड– किसी भी प्रयोजन से की गई सावद्य प्रवृत्ति अर्थ द ड क्रिया है । **(२) अनर्थद ड–** बिना प्रयोजन आदत मात्र से, कुतुहल से या अनुपयोग से की जाने वाली सावद्य प्रवृत्ति अनर्थद ड क्रिया है । यथा– व्यर्थ में कुत्ते, हिरण आदि को मारपीट करना या प्राण रहित करना । रास्ते चलते वनस्पति तोडना, उस पर पत्थर फेंकना, आग लगाना निष्प्रयोजन । **इन दोनों भेद में समस्त (१२) क्रियाओं का विभाजन समाविष्ट हो सकता है ।(३) हिंसाद ड–** भूत, भविष्य या वर्तमान में अपने को मारने वाले को मारना, हिंसाद ड क्रिया है । यथा– बिच्छु, सा प, शत्रु, मच्छर आदि ।**(४) अकस्मात्द ड–** अन्य को मारते समय बीच में ही किसी का मर जाना अकस्मात्द ड क्रिया है । यथा– हिरण को मारते समय बीच में ही पक्षी का मर जाना । एक वनस्पति को काटते समय बीच में अन्य घास आदि कट जाना ।

(५) दृष्टिविपर्यासद ड– अन्य को अन्य समझकर भूल से मारना, दृष्टि चूक हो जाना, दृष्टिविपर्यासद ड क्रिया है । यथा– शत्रु के भ्रम से मित्र को मारना । चोर के भ्रम से अचोर को द ड करना ।

(६) मृषावाद क्रिया– झूठ बोलने से जो पाप होता है वह मृषावाद प्रत्ययिक क्रिया है । **(७) अदत्तादान क्रिया–** चोरी करने से जो पाप होता है वह अदत्तादान प्रत्ययिक क्रिया है ।**(८) अध्यात्म क्रिया–** स्वत: लगने वाली क्रिया अध्यात्म प्रत्ययिकी क्रिया है । यथा– किसी के द्वारा कुछ भी परेशान किये बिना स्वत: सुख स योग हेतु या कषायों के कारण आर्तध्यान, रौद्र ध्यान, स कल्प विकल्प करके जीव कर्म ब ध करता है । **(९) मान क्रिया–** स्वय के जाति, कुल, बल, आदि का अभिमान रखते हुए अन्य का तिरस्कार, हीलना करने से मान प्रत्ययिक क्रिया लगती है । **(१०) मित्रद्वेष क्रिया–** स्वजन, मित्र वगैरह को महाद ड देने से यह मित्रद्वेष प्रत्ययिक क्रिया लगती है । यथा– परिवार के व्यक्ति या मित्र आदि के लघुतम अपराध में भी क्रूर द ड देने से (गर्म या ठ डे पानी में डुबाना, अग्नि से शरीर जलाना, चाबुकों से मारना आदि) **(११) माया क्रिया–** कपट युक्त प्रवृत्तियाँ करने से माया प्रत्ययिकी क्रिया लगती है । यथा– अन्य होते हुए अपने को अन्य माने, बतावे(गोशालकवत्)। अन्य बात पूछने पर अन्य ही कुछ जवाब देवे । आर्य होते हुए भी अनार्य भाषा बोले । कहना कुछ अन्य हो और करे कुछ दूसरा ही । पाप कृत्य करके छिपावे । **(१२) लोभ क्रिया–** इन्द्रिय विषयों की लोलुपता से, कामभोगों के सेवन से और व्रतप्रत्याख्यान रहित आसक्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करने से, यह लोभ प्रत्ययिक क्रिया लगती है । **(१३) ईर्यापथिकी क्रिया–** कषायों के सर्वथा अभाव में मात्र सामान्य योग जन्य जो प्रवृत्ति, वीतरागी महात्माओं के होती है, उससे यह ईर्यापथिकी क्रिया लगती है । इस क्रिया से दो समय जितने लघुतम शातावेदनीय कर्म का ब ध होता है । अन्य कोई भी कर्मब ध नहीं होता है । जो स्वत: एक समय वेदन होकर नष्ट हो जाता है ।

प्रश्न–३ : प्रथम प्रकार के धर्म-अधर्म मिश्र पक्ष में कौन है ?

उत्तर– (१) प्रथम अधर्म पक्ष विकल्प में– हिंसक, क्रूर, भोगासक्त, धर्म से द्वेष युक्त आचार विचार वाला पुरुष । **(२)** द्वितीय धर्म पक्ष

विकल्प में– शुद्ध स यमी या धर्मी पुरुष ।**(३)** तृतीय मिश्र पक्ष विकल्प में– अज्ञान तपस्वी, क दमूल भक्षक, तापस इत्यादि मिथ्या मत समर्थक साधक पुरुष ।

प्रश्न–४ : द्वितीय प्रकार के धर्म-अधर्म मिश्र विकल्प में कौन है ?

उत्तर– **(१)** प्रथम अधर्म विकल्प में उपरोक्त पहले तीसरे दोनों विकल्प वाले पुरुष । **(२)** द्वितीय धर्म विकल्प में श्रमण । **(३)** तृतीय मिश्र विकल्प में श्रमणोपासक ।

प्रश्न–५ : तृतीय धर्म-अधर्म दो विकल्प के साथ अहिंसा का पाठ किस तरह पढाया है ?

उत्तर– यहाँ प्रथम विकल्प रूप अधर्म पक्ष में ३६३ पाख ड मत को कहा है और दूसरे विकल्प रूप धर्म पक्ष में स्वमत को कहा है ।

३६३ पाख ड मत वालों को एक सभा होल में एकत्रित करने की कल्पना की गई है । उन सभी धर्म स स्थापकों को वहाँ म डलाकार बिठाया गया है । एक पुरुष एक बर्तन में अ गारे भर कर स डासी से पकड कर उस म डल में चलते हुए एक-एक धर्म प्रवर्तक को हाथ सामने करने का कहकर उसमें अ गारे डाले तो वे हाथ को खींच लेवे । तब वह पुरुष उन्हें पूछे कि हाथ क्यों खींचा ? उत्तर मिलता है कि हाथ जल जायेगा ।तो क्या होगा ? दु:ख होगा । तब वह पुरुष कहे कि यही तुल्य प्रमाण प्रत्येक के लिये है । सभी जीवों को अपने समान ही दु:ख अप्रिय है । अत: छोटे बडे सूक्ष्म बादर किसी भी प्राणी को कष्ट देना या प्राण हीन करना धर्म तो है ही नहीं पर तु पाप स्पष्ट है और ऐसा करने से पाप फलदायी कर्मों का ब ध होता है । जिससे जीव नहीं चाहते हुए भी इस भव या पर भव में दु:ख पाता है । अत: दु:ख से मुक्त होने का सच्चा उपाय अहिंसा है, जीव दया है । प्राणी मात्र की सुरक्षा के उत्तम विचार–आचार ही श्रेष्ठ धर्म है ।

इस प्रकार यहाँ यह स्पष्ट कर दिया है कि जहाँ कहीं भी हिंसा की प्रेरणा है, त्रस, स्थावर जीवों के पीडन की प्रवृत्ति का आदेश, स देश है, वह अधर्म है, मुक्ति मार्ग नहीं है, स सार भ्रमण का ही वह रास्ता है ।

प्रश्न–६ : अध्ययन का उपस हार किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर– अहिंसा का निरूपण एव आचरण करने वाला मोक्ष प्राप्त

करता है । अ त में कहा है–१२ क्रियाओं में वर्तता हुआ प्राणी मुक्त नहीं हो सकता पर तु तेरहवीं क्रिया में रहने वाला जीव एक दिन अवश्य मुक्त हो जाता है । इसलिये आत्मार्थी, आत्महितैषी, आत्मरक्षक, आत्म अनुक पक, आत्मगुप्त, आत्मयोगी एव आत्मा का उद्धार करने में लगा आत्मपराक्रमी पुरुष, १२ क्रियाओं से आत्मा को निवृत्त कर लेवे ।

तात्पर्य यह है कि धर्मशील साधक श्रावक हो या श्रमण हो उन्हें इन क्रिया स्थानों को भलीभाँति समझकर, इनसे बचने का पूर्ण लक्ष्य बनाकर, उसमें सफलता प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

तीसरा अध्ययन : आहार परिज्ञा

प्रश्न–१ : इस अध्ययन के नाम की सार्थकता किस प्रकार है ?

उत्तर– दस औदारिक द डकों के जन्म से आहार ग्रहण करने की विधि स ब धी परिज्ञान होने से इस अध्ययन का सार्थक नाम **आहार परिज्ञा** है ।यहाँ नारकी एव देवता के आहार स ब धी वर्णन नहीं है । क्यों कि उनमें आहार स ब धी विशेष भिन्नताएँ नहीं है । सभी जन्म समय में उत्पत्ति स्थान से ओजाहार और बाद में रोमाहार ग्रहण करतेहक्त । पर तु औदारिक के दस द डकों के आहार में अनेक विशेषताएँ जानने योग्य है, जो इस अध्ययन के मनन पूर्वक वा चन से स्वत: ज्ञात हो जाती है ।

प्रश्न–२ : औदारिक द डको के जिन जीवों के आहार स ब धी वर्णन इस अध्ययन में है, वह किस क्रम से है– द डक के क्रम से या एकेंद्रिय आदि के क्रम से ? या अक्रम है तो क्यों ?

उत्तर– इस अध्ययन का वर्णन क्रम इस प्रकार है– (१) वनस्पति (२) मनुष्य (३) तिर्यंच प चेन्द्रिय में जलचर (४) चतुष्पद स्थलचर (५) उरपरिसर्प (६) भुजपरिसर्प (७) खेचर (८) विकलेंद्रिय (९) अप्काय (१०) तेउकाय (११) वायुकाय (१२) पृथ्वीकाय ।

अनुशीलन करने से यह ज्ञात होता है कि इस अध्ययन की वर्णन भगवती सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र, जीवाभिगम सूत्र आदि के किसी भी क्रम पद्धति का अनुसरण नहीं करता है, बल्कि स्वत त्र एव अक्रमिक ढ ग से है । जिसका वास्तविक कोई कारण तर्क शक्ति से भी ज्ञात होना

कठिन सा लगता है । तथापि ऐसी कल्पना की जा सकती है कि कभी किसी के प्रमाद से भी ऐसा व्युत्क्रम बन गया हो । यदि ऐसा न हुआ हो तो फिर यह मानना ही अवशेष रहेगा कि– **सूत्राणा विचित्रगतिः ।** सूत्र रचनाकार को जिस गु थन में, जब जो पद्धति उचित, उपयोगी और किन्हीं अज्ञात कारणों से प्रास गिक लगे, वही क्रम विषय गु थन का किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में क्रम अक्रम सभी निर्दोष हो जाता है और इच्छित किसी भी क्रम व्युत्क्रम से वह तत्त्व स ब धी परिज्ञान तो हो ही जाता है । यहाँ भी वनस्पति से प्रार भ कर पृथ्वी तक विषय को पूर्ण करने के मध्य में त्रस जीवों के आहार का परिज्ञान है तो भी कुल मिला कर दस ही द डकों के आहार स बधी बहुत कुछ ज्ञेय तत्त्व का अनुपम अनुभव हो जाता है । अत: जो भी क्रम उपलब्ध है वह ज्ञान वर्धक ही है, उसमें कुछ भी हानि नहीं है, यह मान कर स तोष किया जाना ही समाधान कारक है ।

प्रश्न–३ : उपरोक्त १२ जीव के आहार स ब धी ज्ञातव्य क्या है ?

उत्तर– वनस्पति :– (१) सर्व प्रथम जो जीव पृथ्वी पर उत्पन्न होता है वह पृथ्वी के स्नेह का आहार करता है अर्थात् जैसी भी वह पृथ्वी सचित्त या अचित्त है और जैसा भी उसका वर्ण ग ध रस स्पर्श आदि है उसी के सार को खींच कर बीज में आने वाला मुख्य जीव अ कुरित होता है । उसकी निश्रा में फिर मूल(जड)और क द के जीव आकर उत्पन्न होते हक्त । वे भी पृथ्वी के अ दर होने से पृथ्वी का स्नेह खींच कर आहार ग्रहण करते हक्त । उसके बाद स्क ध आदि के जीव पृथ्वी से आहार लेने वाले मूल-क द के जीवों के स्नेह का आहार ग्रहण करते हक्त । इसके अतिरिक्त ये सभी वनस्पति विभागों के जीव स्वत त्र भी छकाया के जीवों का स योग अनुसार आहार करते हक्त और अपने शरीर रूप में परिणत करते हक्त । इस प्रकार की आहार पद्धति के अनुसार यहाँ वनस्पति जीवों के चार प्रकार होते हक्त–(१) पृथ्वीयोनिक वनस्पति जीव अर्थात् पृथ्वी का स्नेह खींचकर आहार ग्रहण करने वाले (पृथ्वीयोनिक वृक्ष) (२) पृथ्वीयोनिक वनस्पति जीवों से आहार ग्रहण करने वाले वनस्पति जीव(पृथ्वीयोनिक वृक्ष में वृक्ष) (३) वनस्पति जीव योनिक वनस्पति जीवों से क्रमिक आहार लेने वाले वनस्पति जीव(वृक्ष योनिक

वृक्ष में वृक्ष) (४) वृक्षयोनिक वृक्ष से आहार लेने वाले वनस्पति के फल-बीजपर्यंत के दस विभागों के वनस्पति जीव ।

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वनस्पति का मुख्य जीव एक होता है जो सर्वत्र व्याप्त होता है । उसके सिवाय उस वनस्पति के कण-कण में जीव होते हक्त, वे अपने से पूर्व के पृथ्वी की दिशा वाले जीवों से स्नेह रूप में आहार ग्रहण करते हक्त ।उसके अतिरिक्त भी अपनी क्षमता स योग अनुसार छ काया के जीवों में से किसी का भी आहार कर सकते हक्त ।

(२) वृक्ष में कलम करके उसमें अन्य कोई वनस्पति रोपी जा सकती है । यह कलम स्क ध शाखा-प्रशाखा में की जा सकती है । इसे आगम शब्दों में वृक्ष में **अध्यारोह** कहा गया है । इस अध्यारोह की आहार पद्धति भी उपरोक्त अनुसार है सिर्फ प्रार भ पृथ्वी के आहार की जगह वृक्ष से शुरू होता है । इसके भी चार प्रकार हक्त– (१) वृक्षयोनिक अध्यारोह के वनस्पति जीव(वृक्ष से आहार लेने वाले) (२) वृक्षयोनिक अध्यारोह में वनस्पति जीव(वृक्षयोनिक अध्यारोह से आहार लेने वाले) (३) अध्यारोह योनिक वनस्पति जीवों में वनस्पति जीव(अध्यारोह योनिक अध्यारोह वनस्पति से आहार ग्रहण करने वाले) (४) अध्यारोह योनिक अध्यारोह के वनस्पति जीवों से आहार लेने वाले फल-बीज पर्यंत के दस विभाग के जीव । स्नेह खींचने के सिवाय भी छकाया जीवों का स योग क्षमतानुसार आहार करते हक्त । इस प्रकार (१) घास (२) धान्य (३) हरियाली(हरितकाय) स ब धी ४-४ आलापक है ।

इस प्रकार आय, काय, कुहणा, भू फोडा, सर्पछत्रा आदि वनस्पति के आहार स ब ध में केवल एक ही आलापक समझना, चार नहीं ।

(३) पृथ्वी के समान जल में भी वृक्ष उत्पन्न होते हक्त । वे पृथ्वीयोनिक की जगह उदक योनिक कहलाते हक्त । इसके भी चार आलापक वृक्ष के, चार अध्यारोह के, चार तृण के, चार धान्य के, एव चार हरियाली के आलापक होते हक्त । आय, काय आदि का एक आलापक ही होता है ।

(४) इन उपरोक्त स्थलज, जलज सभी वनस्पति भेदों के निश्रा में त्रस जीव उत्पन्न हो सकते हक्त । वे उस वनस्पति के स्नेह का आहार करते हक्त और स योगानुसार छकाया जीवों का भी आहार करते हक्त ।

मनुष्य :– माता–पिता के शुक्र शोणित के मिश्रण के स्नेह का सर्व प्रथम आहार करता है । बाद में माता द्वारा किये गये आहार से उत्पन्न

रस के ओज का आहार करता है । गर्भ से बाहर आने पर स्तनपान से माता के दूध और स्नेह(घी) का आहार करता है । अनुक्रम से बडा होने पर नाना प्रकार के आहार एव छः काया का आहार करता है ।

तिर्यंच प चेन्द्रिय :– मनुष्य के वर्णन के समान समझना । कुछ विशेषताएँ इस प्रकार है– जलचर जीव गर्भ के बाहर आने पर स्तनपान नहीं करते कि तु जल के स्नेह का आहार करते हक्त । अनुक्रम से वृद्धि पाने पर वनस्पति और त्रस, स्थावर प्राणियों का आहार करतेक्त और छः काय के मुक्त शरीर का आहार करतेक्त ।

पक्षी भी स्तनपान नहीं करते कि तु वे प्रार भ में माता के शरीर के स्नेह का आहार करते हक्त । उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प प्रार भ में वायु के स्नेह का आहार करते हक्त ।

विकलेंद्रिय :– विकलेन्द्रिय जीव त्रस-स्थावर प्राणियों के सचित्त या अचित्त शरीर में उत्पन्न होते हक्त और उसी शरीर के स्नेह का प्रथम आहार करते हक्त । कुछ समय बाद(पर्याप्त होने बाद) यथा स योग अन्य त्रस-स्थावर प्राणियों के शरीर से भी आहार प्राप्त करते हक्त । इसके अतिरिक्त अशुचि में, पसीने में, ग दे स्थानों में और चर्म कीट आदि रूप में भी उत्पन्न होते हक्त और वहीं का आहार ग्रहण करते हक्त ।

चार स्थावर :– (१) अप्काय– त्रस स्थावर प्राणियों के सचित्त-अचित्त शरीर में जहाँ पोलार, वायु हो, वहाँ पानी के जीव उत्पन्न होते हक्त और फिर उस अप्काय में अन्य अप्काय के जीव उत्पन्न होते हक्त । इस प्रकार (१) त्रस स्थावर योनिक जल (२) जल योनिक जल, इन दोनों में (३) त्रस जीव उत्पन्न होते हक्त । प्रार भ में सभी जीव अपने उत्पत्ति स्थान के स्नेह का आहार करते हक्त । बाद में यथायोग्य छः काया जीवों के शरीर का आहार करते हक्त । वनस्पति के समान पानी स ब धी चार आलापक हक्त– (१) त्रस स्थावर योनिक जल जीव (२) त्रस-स्थावर योनिकजल में जल जीव (३) जलयोनिक जल में जल जीव (४) जलयोनिक जल में त्रस जीव । **(२) अग्निकाय :–** त्रस-स्थावर प्राणियों के सचित्त-अचित्त शरीर में या उनके आश्रय में उत्पन्न होते हक्त तथा उन्हीं के स्नेह का आहार करते हक्त । फिर उस अग्नि में अन्य अग्निकाय के जीव और क्रमशः त्रस जीव पैदा होते हक्त ।चारों आलापक पूर्ववत् समझना । **(३) वायुकाय (४) पृथ्वीकाय :–** अग्नि के समान ही वायु तथा पृथ्वी के चार-चार आलापक जानना ।

अध्ययन के अ त में उपस हार करते हुए कहा गया है कि इस प्रकार स सार के समस्त प्राणी कर्म विपाक अनुसार जन्म मरण और आहार करते हक्त । इस तत्त्व को जानकर मुमुक्षु साधक आहार के विषय में गुप्ति करे अथवा योग्य समिति करे और स यम-तप द्वारा मोक्ष की साधना में सदा प्रयत्नशील रहे ।

प्रश्न–४ : इस अध्ययन में बार बार आने वाले शब्दों का अर्थ बतावें ।

उत्तर– प्रार भ के सूत्र में आये शब्दों का पुन: पुन: प्रयोग आगे के सूत्रों में हुआ है । अत: सर्व प्रथम उस सूत्र के शब्दों का अर्थ देकर फिर अन्य शब्दों का अर्थ करते हक्त–

तेसि च ण =उन चार प्रकार की वनस्पतियों में से **अहाबीएण** =अपने अपने योग्य बीज से, **अहावगासेण** =योग्य भूमि एव समय आदि स योग से, **इह एगइया सत्ता**=इस स सार में कई एक प्राणी **पुढवि-जोणिया**=जो पृथ्वी योनिक है, **पुढविस भवा**=पृथ्वी में उत्पन्न होने योग्य हक्त **पुढवि-वकम्मा**=पृथ्वी में विकास करने वाले हक्त **तज्जोणिया तस्स भवा तव्वक्कमा** =वे उस उस प्रकार की योनि, उत्पत्ति और विकास की योग्यता वाले **कम्मोवगा**=कर्माधीन कर्मयुक्त जीव **कम्मणियाणेण** =अपने कर्मों के अनुसार **तत्थवकम्म**=अपने योग्य क्षेत्र में आकर **णाणाविहजोणिएसु**= अपने अपने योग्य विविध योनियों की **पुढवीसु**=पृथ्वी में यथास्थान पर **रुक्खत्ताए=वृक्ष के रूप में विउट्ट ति**=उत्पन्न होते हक्त **ते जीवा... सिणेहमाहर ति**=वे जीव उन अनेक प्रकार की योनियों वाली किसी एक पृथ्वी से स्नेह का आहार करते हक्त अर्थात् कवलाहार नहीं होने से एव ओजाहार होने से उत्पत्ति स्थान के पुद्गलों में से सत्त्व खींच लेते हक्त। **ते जीवा आहारेंति पुढवि सरीर ...तस थावराण पाणाण** =उसके बाद पर्याप्त हो जाने पर जीव स योग अनुसार त्रस स्थावर प्राणियों के शरीर का आहार करते हक्त **अचित्त कुव्व ति**=पहले उन शरीरों को अचित्त करते हक्त**परिविद्धत्थ त सरीरग** =जीव रहित उस शरीर को **पुव्वाहारिय**=जो कि पहले ग्रहण किया है **तयाहारिय** =अल्प मात्रा में ग्रहण किया, त्वचा से क्षार ग्रहण किया है **विपरिणय सारूवीकड** =वर्ण आदि को बदल कर पचाकर अपने शरीर योग्य कर दिया है । **स्त**= उस आहार को **सव्वप्पणा आहारेंति**=सर्वात्मना आहार करते हक्त अर्थात् वह पाचन हुआ आहार सभी आत्म प्रदेशों में पहुँच जाता हक्त । **तेसि पुढविजोणियाण रुक्खाण**

सरीरा=उन पृथ्वी योनिक वृक्षों के शरीर, **अवरे वि य ण णाणा वण्णा**= अन्य अनेक वर्ण ग ध रस स्पर्श और स स्थान वाले होते हक्त । **णाणाविह सरीर पोग्गल विउव्वित्ता**=विविध पुद्गलों से विविध प्रकार के शरीरों की स रचना करते हक्त **ते जीवा**=वे जीव **कम्मोववण्णया**=कर्मानुसार, कर्मयुक्त उत्पन्न अर्थात् कर्मानुसार जन्म धारण करते रहते हक्त**अक्खाय** = ऐसा कहा गया है, तीर्थंकरों ने कहा है ।

अज्झारुहत्ताए=अध्यारोह रूप में, वृक्ष पर स्वत: उगने वाली वनस्पति, एव कलम करने से वृक्ष पर उत्पन्न होने वाली, वनस्पति को लता आदि को अध्यारूह कहा गया है ।

आयत्ताए...कूरत्ताए=आय काय आदि ये दस भेद हक्त । कुहणा जाति के दस नाम प्रज्ञापना सूत्र में बताये हक्त । नामों में कुछ अ तर है । राजस्थानी भाषा में ये सभी भुँफोडा कहे जाते हक्त ।– **प्रज्ञापना वृत्ति में एव लाडनू के सूयगडा ग सूत्र में। अणुसूयत्ताए**=आश्रय में उत्पन्न, निश्रा में । **वायस सिद्ध** =वायु से निष्पन्न **वायस गहिय** =वायु द्वारा स गृहीत **वायपरिगय** =वायु में स्थित **उड्ढवाएसु उड्ढभागी**=उर्ध्व वायु में=आकाश में बादलों के रूप में होने वाले **अहेवाएसु अहेभागी**=नीचे पृथ्वी के अ दर जहाँ वायु हो वहाँ नीचे भी उत्पन्न होते हक्त । **तिरिय वाएसु तिरियभागी**=तिरछे लोक में जहाँ वायु पोलार है वहाँ उत्पन्न होते हक्त ।

चौथा अध्ययन : प्रत्याख्यान क्रिया

प्रश्न–१ : इस अध्ययन के नाम की सार्थकता किस प्रकार है ?

उत्तर– इस अध्ययन में प्रत्याख्यान और क्रिया स ब धी निरूपण है । प्रत्याख्यान करने से पाप क्रिया-आश्रव रुक जाता हक्त । प्रत्याख्यान नहीं करने से पापक्रिया, अव्रत क्रिया लगती रहती है इसे दृष्टा त के साथ समझाया है । इस प्रकार अध्ययन का नाम पूर्ण सार्थक है ।

प्रश्न–२ : प्रत्याख्यान का तात्पर्य स्पष्ट करें ?

उत्तर– प्रत्याख्यान का अर्थ है– विरति, त्याग । पाप प्रवृत्तियों का त्याग, उपभोग परिभोग का त्याग, विषयों का त्याग, विषयासक्ति का त्याग, आहार का त्याग आदि ।

अप्रत्याख्यान अविरति है, आश्रव है, कर्म आगमन का मार्ग है । कर्म ही स सार है, दु:खजनक है । प्रत्याख्यान विरति रूप स वर है, कर्म आगम के द्वार को रोकता है, कर्मब ध के अभाव में दु:ख और स सार से मुक्ति हो जाती है ।

प्रश्न–३ : कर्मब ध के साधन तो मन वचन काया है । पापकर्म उसी के होना चाहिये जो मन से चि तन कर सकता है वचन से बोल सकता है काया से स कल्प पूर्वक प्रवृत्ति कर सकता है ।

उत्तर– मन वचन काया कर्मब ध के साधन होते हुए भी उसका मूल कारण अप्रत्याख्यान, अविरति है । एकेन्द्रिय जीव भी अठारह पापों से अनिवृत्त है उनके सभी आश्रवद्वार खुले हक्त । उनको प्रवृत्ति रूप कर्म ब ध न भी हो तो भी अनिवृत्ति रूप कर्म ब ध अवश्य होता है । एकेन्द्रिय आदि जीवों में छकाया के जीवों के प्रति प्रत्याख्यानात्मक अवधक चित्त जब तक उत्पन्न नहीं होता है तब तक वे अविरत होते हक्त । और जो अविरत हक्तमिथ्यात्व भावित हक्त उनको कर्मब ध होगा । क्यों कि उनका चित्त निर तर अठारह पापों के प्रति अव्यक्त रूप से बना ही रहता है । विरति-प्रत्याख्यान करने पर ही उनकी समाप्ति हो सकती है ।

प्रश्न–४ : प्रत्याख्यान के महत्त्व को समझाने के दृष्टा त क्या हे ?

उत्तर– किसी व्यक्ति ने राजा को मारने का स कल्प किया । वह अवसर की प्रतिक्षा करता है । प्रतीक्षा में १० वर्ष व्यतीत हो गये अवसर नहीं मिला । वह व्यक्ति राजा का अमित्र, वधक ही कहलायेगा । मित्र नहीं कहलायेगा । स कल्प का त्याग नहीं करने से वह खाने–पीने के एव ऐसो-आराम के समय भी वैरी–वधक ही माना जाता है । जब वह विचार परिवर्तन से उस स कल्प का त्याग कर दे तो फिर वह वधक या वैरी नहीं रहेगा ।

स सार के प्राणी सन्नी असन्नि अवस्थाओं में भ्रमण करते रहते हक्त । अत: जो वर्तमान में असन्नि हक्त, जिनके हिंसाजन्य प्रवृत्तियों का स कल्प नही है; फिर भी वे हिंसा त्यागी नहीं है, पाप त्याग के स कल्प से युक्त हुए बिना भूतकाल के पापमय स कल्पों की पर परा ब ध नहीं होती है । एक असत्यभाषी चालाक व्यक्ति है, झूठ बोलने में प्रसिद्ध है । वह वाचा ब द होने से मूक हो गया । अब बोलने की प्रवृत्ति नहीं होने से वह असत्य का त्यागी नहीं है उसे सत्यवादी भी नहीं कहा

जायेगा । वह यदि असत्य का त्याग कर देगा, विरति परिणाम में स कल्प बद्ध हो जायेगा, महाव्रत धारी बन जायेगा; तो सत्यवादी, असत्य त्यागी कहा जा सकेगा । अत: पाप आश्रव रोकने के लिये जीव का अविरतिमय चित्त से परिवर्तित होकर विरतिमय परिणामों में आना आवश्यक है ।

राजा की हिंसा के स कल्प वाला प्रतिक्षा के समयों में वर्षों में राजा की कुछ भी हानि नहीं करता है, फिर भी वह वधक या अमित्र है । वैसे ही जीव में पापों के आचरण की योग्यता बनी रहती है जिससे वह अप्रत्याख्यान रूप क्रिया का भागी बनता है ।

प्रश्न–५ : जिसको कभी देखा नहीं, सुना नहीं, जाना नहीं है, उसके प्रति हिंसक चित्त कैसे ?

उत्तर– जैन सिद्धा तानुसार जीव सभी योनियों मे भ्रमण करता है, इसलिये उसके पूर्वभव के पापमय, चित्त के स स्कार की पर परा नष्ट नहीं होती है । इस कारण कोई जीव किसी का अनदेखा नहीं है । अत: वधक परिणामों की पर परा भवा तर से चली आती है । जिस प्रकार राजा की हिंसा का स कल्पबद्ध व्यक्ति गाढ निद्रा में भी सोता है, फिर भी उसे अहिंसक या राजा का मित्र तो नहीं कहा जा सकता । उसी तरह एकेन्द्रिय आदि सभी जीव विरति परिणाम के अभाव में अविरत है और अविरत जीव आश्रव–कर्माश्रव युक्त होता है ।

प्रश्न–६ : जब हम कभी झूठ बोलते नहीं है, किसी जीव को दु:ख देते नहीं है, मारते नहीं है तो त्याग का ढोंग और अह करके आत्मा को भारी क्यों करें ?

उत्तर– ऐसा सोचने वाले व्यक्ति अपने आप को निष्पापी और त्यागी होने का झूठा विश्वास करते हक्त । वे तीव्र मोह कर्म के नशे में सुप्त होते हक्त । वे पाप और त्याग को समझते ही नहीं अर्थात् पापों के सूक्ष्म बादर भेद प्रभेदों से वे अनभिज्ञ है और व्रत–त्याग के माहात्म्य से अजाण है । स सार का छोटा से छोटा प्राणी भी पाप रहित नहीं है । पूर्व तीसरे अध्ययन में बताया गया है कि एकेन्द्रिय जीव भी त्रस स्थावर प्राणियों के प्राणों को विध्वस्त कर उनके अचित्त शरीर का आहार करते हक्त । तो मानव की तो बात ही क्या ? उसके जीवन में कदम-कदम पर ज्ञानियों की दृष्टि में अनगिनत पाप रहे हुए हक्त । निष्पाप जीवन तो सच्चे त्यागी महाव्रतधारी का हो सकता है । अत:

स सारी मानव को यथाशक्य पापों का, उपभोग परिभोग का, ऐशोआराम का, इच्छाओं का त्याग-प्रत्याख्यान करना ही चाहिये । प्रत्याख्यान का चित्त ही जीव को आश्रवमुक्त, कर्मब ध मुक्त बना सकता है । प्रत्याख्यान के चित्त से अज्ञान और मिथ्यात्व=मिथ्या विचारों का खात्मा होता है । अन त तीर्थंकरों ने, महापुरुषों ने प्रत्याख्यान को जीवन में उत्तरोत्तर स्थान दिया है । अविरति– अप्रत्याख्यान से प्रत्याख्यान में पहुँच कर ही जीव वास्तव में जिनानुयायी होकर आत्म विकास साध सकता है । विरति को अह या ढोंग कहना या समझना भी अविरति की, अप्रत्याख्यान की जीव की अनादि टेव का प्रभाव है । उसी अनादि अज्ञान के गुप्त नशे में व्यक्ति अपने आपको ज्यादा ज्ञानी त्यागी या अपापी मानने का भ्रम करता है । उसे जिनवाणी के अध्ययन से सूक्ष्म, सूक्ष्मतम और स्थूल सभी पापों को समझकर वास्तविक और परिपूर्ण पाप त्यागी बनने का प्रयत्न करना चाहिये ।

प्रश्न–७ : इस अध्ययन का परमार्थ क्या है ?

उत्तर– आत्म कल्याण के इच्छुक आत्माओं को पाप और अविरति को जिनवाणी से भलीभाँति समझ कर पापों का स पूर्ण त्यागी–विरत बनना चाहिये । जब तक पूर्ण त्याग न हो सके तब तक अपने ज्ञान का विकास करके **जितना शक्य हो** उतना पाप का, प्रवृत्तियों का, भोग-उपभोग सामग्री का और मौज शौक का त्याग करना चाहिये । विरतिमय प्रत्याख्यानमय चित्त की वृद्धि करनी चाहिये । अन्यथा अनादि पाप और भोग स स्कार आत्मा पर हावी होकर उसे(अपने आपको अपापी होने का भ्रम रहते हुए भी) पापी और अविरत बनाये रखेंगे । पाप और अविरत का परिणाम स सार परिभ्रमण और दु:ख रूप है । जब कि प्रत्याख्यान का परिणाम कर्मब ध मुक्ति और स सार दु:ख मुक्ति रूप है ।

पाँचवाँ अध्ययन : आचारश्रुत

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम और उसकी सार्थकता क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन के विभिन्न नाम प्राप्त होते हक्त । जिसमें आचार-विचार स ब धी वर्णन के कारण **आचारश्रुत** नाम प्रसिद्ध है ।

निषिद्ध आचारों का अर्थात् अनाचारों का बहुलता से वर्णन होने से **अनाचार श्रुत** नाम भी है तथा अणगार स ब धी आचार-विचार तथा अणगार के अनाचरणीय वचन आदि वर्णन होने से इस अध्ययन का नाम **अणगार श्रुत** भी पढने में आता है ।

प्रश्न–२ : इस अध्ययन का विषय-वर्णन क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में श्रद्धा-प्ररूपणा, मान्यता तथा भाषाप्रयोग स ब धी विधिनिषेधात्मक वर्णन सरल तथा स्पष्ट भाषा में है । जिसमें साधु को एका तिक वाक्य प्रयोग नहीं करने की प्रेरणा की गई है और आवश्यक होने पर आग्रह मुक्त अनेका तिक वाक्यप्रयोग की सूचना की गई है, ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न–३ : अध्ययनगत भाषास ब धी अनाचरणीयों का सार क्या है ?

उत्तर– (१) लोक द्रव्यापेक्षया शाश्वत है नित्य है और पर्यायापेक्षया अशाश्वत–अनित्य है । (२) तीर्थंकर महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा सदा रहते हक्त । भरत–एरवत क्षेत्र की अपेक्षा उनका विच्छेद होता है । (३) सभी प्राणी जीवत्व की अपेक्षा, आत्म तत्त्व की अपेक्षा समान है । वर्तमान भव–अवस्था की अपेक्षा समान-असमान दोनों प्रकार के हो सकतेहक्त। (४) कुछ जीव सदा कर्म ब धन युक्त ही रहने वाले हक्त और कुछ जीव कर्म रहित भी हो सकते हक्त । (५) छोटे-बडे प्राणी की हिंसा से कभी समान और कभी हीनाधिक कर्मब ध हो सकता है अर्थात् समिति युक्त सावधानी पूर्वक प्रवृत्ति करने पर भी सहसा छोटे या बडे जीव की विराधना हो जाय तो उससे कभी समान और कभी असमान कर्म ब ध होता है । ग्यारहवाँ, बारहवाँ और तेरहवाँ इन गुणस्थानवर्ती जीवों को समान ब ध होता है । शेष गुणस्थानवर्ती जीवों को कभी समान और कभी असमान दोनों प्रकार के कर्म ब ध होते हक्त । (६) आधाकर्मी आहार-पानी आदि किसी भी वस्तु का उपयोग करने वाले श्रमणों में से आशय की शुद्धि या अशुद्धि के कारण तथा अनजाने या भूल आदि के कारण कभी किसी को पापकर्म का ब ध होता है, कभी किसी को ब ध नहीं होता है यह सर्वज्ञों के ज्ञान का विषय है अत: छद्मस्थ साधक इस विषय में आग्रह युक्त कथन नहीं कर सकता । (७) औदारिक आदि पाँचों शरीर परस्पर कथ चित् भिन्न, कथ चित् अभिन्न एकमेक होकर रहते हक्त तथा पाँचों शरीरों की शक्ति-सामर्थ्य में भी विभिन्नता होती है ।

[यहाँ पाँच शरीरों में से आदि, मध्य, अ त के तीन शरीरों का कथन है तथापि उपलक्षण से पाँचों शरीर का ग्रहण कर लिया जाता है ।] (८) लोक और अलोक दोनों का अस्तित्व स्वीकारना चाहिये उसी तरह लोक में जीव-अजीव, धर्म-अधर्म, ब ध-मोक्ष, पुण्य-पाप, आश्रव-स वर, वेदना-निर्जरा ये सभी तत्त्व हक्त इनका स्वीकार करना चाहिये अर्थात् इनका निषेध नहीं करना चाहिये । (९) स सारी जीवों को क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष आदि होते हक्त और उनका यथायोग्य कर्मब ध रूप फल भी जीवों को भोगना पडता है । (१०) चार गतिरूप स सार का अस्तित्व है, देव-देवियाँ और सिद्ध भगवान का अस्तित्व भी लोक में है और सिद्धि स्थान रूप जीवों का निजस्थान भी लोकाग्र में है, ऐसा स्वीकारना चाहिये । (११) लोक में साधु–सुसाधु भी होते हक्त और असाधु-कुसाधु भी होते हक्त अर्थात् सच्चा साधुपणा कोई पालन कर ही नहीं सकता, ऐसा नहीं बोलना चाहिये । (१२) स सार में अच्छे कार्य–आचरण भी है, खराब आचरण भी है और उनका यथायोग्य परिणाम–फल भी जीव को प्राप्त होता है, ऐसा स्वीकारना चाहिये । कुछ अज्ञानी लोग स्वय को प डित मानकर ऐसा कथन करते हक्त कि अच्छा खराब ऐसा कुछ भेद नहीं करना चाहिये । जीव के स्वभाव से जो प्रवृत्ति हो जाय उसे होने देना चाहिये । सहज भाव में वर्तते रहना चाहिये । अच्छे-खराब के विकल्पों में नहीं फँसना चाहिये । ऐसा कथन करने वाले कर्मब ध को समझते नहीं है। जिससे वे स्वय अज्ञान दशा से यथेच्छ पाप-प्रवृत्ति करते हक्त और दूसरों को भी स्वच्छ द वृत्ति में स लग्न करते हक्त । ऐसे प्राणी प्रत्याख्यान या आत्म साधना, इन्द्रिय-निग्रह, कषाय-विजय आदि कुछ भी नहीं करते हुए मिथ्यात्व, अज्ञान के कारण दुर्गति के भागी बनते हक्त । वास्तव में अनादिकाल से स सारप्रवाह में प्रवहमान जीवों के पाप आचरण परिचित हो जाते हक्त, उन्हें ज्ञानियों की स गति से समझना चाहिये और अनादि कुटेवों का, कुस स्कारों का विवेकपूर्वक त्याग करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि आत्मा को निर कुश नहीं छोडकर ज्ञान रूप अ कुश में रखकर जिनेश्वरों द्वारा दिखाये गये मार्ग का अनुसरण करके आत्म साधना स यम साधना-आराधना युक्त जीवन जीना चाहिये । तभी आत्म-कल्याण और मोक्ष प्राप्ति स भव होती है । (१३) स सार के समस्त पदार्थ हक्त जैसे ही रहते हक्त, उनमें परिवर्तन होना भ्रम मात्र है, ऐसा कथन

करना अज्ञानभरा है । वास्तव में प्रत्येक पदार्थों की पर्यायों का अवस्थाओं का परिवर्तन होता रहता है । (१४) जगत में सुख दु:ख दोनों है, सुखी-दु:खी दोनों प्रकार के प्राणी है, ऐसा समझना चाहिये । कि तु सभी आत्माएँ दु:खी ही है, कोई सुखी है ही नहीं, ऐसा कथन नहीं करना चाहिये । (१५) सभी जीव अपनी उम्र अनुसार जीते-मरते हक्त अत: किसी भी प्राणी को मारने से कुछ नहीं होता, ऐसा कथन नहीं करना चाहिये । क्यों कि किसी भी प्राणी के प्राणों को नष्ट करना हिंसा पाप है । जो १८ पापों में प्रथम पाप है । स्वय के पाप के परिणाम और पाप की प्रवृत्ति से कर्मब ध होता है तथा कर्म ही दु:ख का मूल है, स सार है । (१६) कोई पापी अपराधी प्राणी राजद ड से मृत्यु का आभागी है उसे यह अवद्य है, मारने योग्य नहीं है, ऐसे व्यवहार से विपरीत वचन भी साधु को नहीं बोलना चाहिये । कि तु मौन रहकर, तत्स ब धी चि तन से मुक्त रहकर साधना में लीन रहना चाहिये और कदाचित् वैराग्यपूर्ण अनुक पा के भावों को उपस्थित करके स सार भावना के स्वरूप का विचार करना चाहिये । (१७) जिनाज्ञा अनुसार स यम का यथार्थ पालन करने वालों के प्रति अपनी अज्ञानता से या मलिन विचारों से 'यह तो ढोंगी है' कपट क्रिया करने वाले हक्त, ऐसी मान्यता-विचारधारा रखनी नहीं चाहिये । (१८) किसी भी प्रकार की भविष्यवाणी रूप कथन भी साधु को नहीं करना चाहिये । यथा– अमुक व्यक्ति के पास से दान-दक्षिणा प्राप्त होगी ही या प्राप्त नहीं होगी । क्यों कि दोनों व्यक्तियों के अ तराय कर्म के क्षयोपशम अनुसार होता है । उसे सर्वज्ञ ही जान सकते हक्त । अत: छद्मस्थ को ऐसे कथन करने में कभी मिथ्या कथन का दोष लग सकता है । अत: इस प्रकार के भावी विषयक कथन से साधु को दूर ही रहना चाहिये ।

प्रश्न–४ : इस अध्ययन के उपस हार में क्या कहा गया है ?

उत्तर– उपरोक्त सभी विषयों में जैसी आगम आज्ञा है जैसा जिनेश्वर का आदेश है तदनुसार ही अपनी श्रद्धा-प्ररूपणा एव आचरण तथा भाषा का प्रयोग करने चाहिये । ऐसा विवेक व्यवहार और शुद्ध स यमानुष्ठान साधक को मोक्ष प्राप्ति पर्यंत निर तर करते रहना चाहिये । इस प्रकार की शिक्षा अध्ययन की अ तिम तेतीसवीं गाथा में दी गई है ।

छट्ठा अध्ययन : आर्द्रकीय

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम क्या है ?

उत्तर– इस अध्ययन में आर्द्रकुमार से स ब धित वर्णन होने से इसका नाम **आर्द्रकीय** है ।

प्रश्न–२ : आर्द्रकुमार से स ब धित कौन सा विषय है ?

उत्तर– यह अध्ययन पद्यमय है जिसमें दीक्षित आर्द्रमुनि की गोशालक, बौद्ध, वेदा तिक, सा ख्य तथा हस्तितापस आदि मतावल बियों के साथ हुई चर्चा अर्थात् सवाल जवाब है ।

प्रश्न–३ : क्या आर्द्रक मुनि का जीवन परिचय इस अध्ययन में है ?

उत्तर– अध्ययन की ५५ गाथाओं में मात्र तात्त्विक स वाद ही है । जिसमें आर्द्रक मुनि का नाम स बोधन रूप में उपलब्ध है उसके सिवाय उनके जीवन स ब धी वर्णन इस अध्ययन की व्याख्या निर्युक्ति भाष्य में है । मूल में नाम के अतिरिक्त कोई भी स केत नहीं है ।

प्रश्न–४ : निर्युक्ति भाष्य में आर्द्रकमुनि का जीवन वृत्ता त किस प्रकार वर्णित है ?

उत्तर– आर्द्रक मुनि के वर्तमान भव का तथा पूर्वभव का वर्णन है । पूर्वभव में वे **सामायिक** नाम के श्रावक थे । पत्नि सहित उन्होंने सम तभद्र आचार्य के पास दीक्षा अ गीकार की थी । स यम में विचरण करते हुए एक समय पत्नि साध्वी के प्रति मोहभाव उत्पन्न हुआ । कि तु स भलकर दोनों ही स थारा कर के दसवें देवलोक में उत्पन्न हुए । वहाँ से आयुष्य पूर्ण कर दोनों ने भरतक्षेत्र में जन्म लिया । अनार्य क्षेत्र में आर्द्रक राजकुमार बना और उसकी पत्नि आर्य क्षेत्र में श्रेष्ठी पुत्री बनी । आर्द्रक के पिता को श्रेणिक राजा से मित्रता थी । प्रस गवश आर्द्रक ने श्रेणिक पुत्र अभयकुमार से मित्रता की । अभयकुमार ने सामायिक के उपकरण भेजे । जिससे आर्द्रक को जातिस्मरण ज्ञान और दीक्षा लेने के भाव दृढ हो गये । पिता की स्वीकृति मिलने की आशा नहीं होने से अश्ववशाला से घोडा लेकर आर्द्रक आर्यक्षेत्र में पहुँचकर, स्वय दीक्षित होकर विचरने लगे । एक समय स यम से पतित होकर भोगावली कर्म के उदय से पूर्वभव की पत्नी,वर्तमान में श्रेष्ठी पुत्री कामम जरी के साथ दाम्पत्य जीवन स्वीकार किया । काला तर में पुत्र जन्म के बाद

स्वत: दीक्षा लेकर एकाकी विचरण करते हुए ५०० व्यक्तियों को प्रतिबोधित किया एव दीक्षित करके भगवान महावीर स्वामी की सेवा में पहुँचने के लक्ष्य से विहार किया । उसी विहार क्षेत्रो में गोशालक आदि से हुई चर्चा इस अध्ययन में दर्शाई गई है ।

प्रश्न–५ : गोशालक आदि ने किस विषय में चर्चा की ?

उत्तर– गोशालक ने भगवान महावीर स्वामी के जीवन वृत्त को लेकर मनघड त दोषारोपण किये, यथा– (१) महावीर पहले अकेले रहते थे अब अनेक शिष्यों को साथ में रखते हक्त । (२) पहले मौन रखते थे अब परिषद् में व्याख्यान देते हक्त । (३) पहले कठोर तप करते थे अब तपस्या नहीं करते हक्त । (४) इस प्रकार महावीर ने पूर्वापर विरोधी आचरण स्वीकार किये हक्तअत: वे अस्थिर चित्तवाले हक्त ।

समाधान– आर्द्रकमुनि ने कहा कि आत्मशुद्धि के लिये भगवान ने पहले तप,ध्यान, एका त, एव मौन साधना स्वीकार की थी । अब केवलज्ञान प्राप्ति एव तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से जगज्जीवों के कल्याण के लिये प्रवचन देना एव शिष्य समुदाय में रहना स्वीकार किया है । भगवान पहले और अभी दोनों अवस्थाओं में समभावों में ही लीन रहते हक्त । उनके विरोधाभाव उत्पादक मोहकर्म और अज्ञानकर्म क्षय हो चुके हक्त । अत: वे जनकल्याणार्थ हजारों शिष्यों तथा स घ समुदाय में रहते हुए अभी भी एकत्व भाव में ही रमण करते हक्त ।

गोशालक– सचित जल, सचितबीज, आधाकर्मी आहार और स्त्रियों का सेवन करते हुए भी जो एका त सेवी तपस्वी साधक हो तो उसे हमारे धर्म में पाप नहीं लगता ।

आर्द्रकमुनि– ऐसे आचरण करने वाले तो गृहस्थ है श्रमण नहीं । स्त्री सेवन आदि करने वालों को यदि श्रमण कहेंगे तो गृहस्थ भी श्रमण कहे जायेंगे । वास्तव में ऐसा करने वाले अपने शरीर एव इच्छाओं का पोषण करते हक्त । वे कर्मों का अ त करने वाले नहीं है ।

गोशालक– ऐसा बोलकर तुम सभी धर्म वालों की निंदा करते हो ?

आर्द्रकमुनि–हम किसी की भी व्यक्तिगत निंदा नहीं करते है कि तु एका तिक तथा पापकारी दृष्टि की मात्र निंदा करते हक्त । हम स सार के छोटे बडे सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा भाव में रहते हुए पाप को और पापकारी सिद्धा त को त्याज्य बताते हक्त पर तु स सार के कोई भी

प्राणी के प्रति वैर-विरोध भाव से किसी व्यक्ति की निंदा नहीं करते । हमारा उद्देश्य मात्र सत्यधर्म को प्रगट करना है ।

गोशालक– महावीर तो डरपोक हैक्त, वे धर्मशाला आदि सार्वजनिक स्थानों में नहीं ठहरते । क्यों कि वहाँ अनेक विद्वान विचक्षण लोगो से चर्चा वार्ता होती है ?

आर्द्रकमुनि–भगवान सर्वज्ञाता सर्वदृष्टा हक्त, मोहकर्म को नष्ट कर चुके हक्त । उनको कहीं भी कोई भी भय नहीं होता है । उन्हें ज्ञान से जैसी फरसना एव लाभ की स भावना लगती है वैसा आचरण करते हक्त । कोई भी स्थान में रहना या नहीं रहना ऐसा उन्हे कोई स कल्प नहीं होता है ।

गोशालक– लाभ देखकर प्रवृति करने वाले तो वणिक तुल्य होते हक्त ?

आर्द्रकमुनि– भगवान तो सच्चे आत्मसाधक एव वीतरागी पुरुष हक्त वणिक तो धन के स्वार्थी होकर अनेक पापाचरण करने वाले गृहस्थ होते हक्त । अत: भगवान को वणिक तुल्य तो तुम्हारे जैसे अपनी आत्मा को द डित करने वाले ही कह सकते हक्त । सर्वज्ञ सर्वदर्शी वीतराग भगवान को वणिक तुल्य कहना अपनी ही अज्ञानता और विषमभाव का प्रगटीकरण है ।

इस प्रकार गोशालक चाहते हुए भी आर्द्रकमुनि को अपनी तरफ आकृष्ट नहीं कर सका और भगवान के प्रति विक्षुब्ध नहीं कर सका । तदन तर विहार करते हुए आर्द्रकमुनि को बौद्ध श्रमण मिले ।

बौद्ध भिक्षुक–हमारे सिद्धा त अनुसार भावों से ही पापकर्म लगता है । जैसे कि कोई खोलपिंड को मनुष्य समझकर छेदन भेदन करे या पकावे अथवा तुम्बडे को बालक समझकर छेदनादि करे तो भी वह पापकर्म से लिप्त होता है । इसके विपरीत जो पुरुष को खोल पिंड समझकर एव बालक को तु बडा समझकर छेदन-भेदन आदि क्रिया करता है तो भी वह पाप कर्म से लिप्त नहीं होता है ।वह मा सपिंड भी पवित्र होने से बुद्ध श्रमणों के लिये भक्ष्य होता है । जो २००० बौद्ध स्नातक भिक्षुओं को भोजन करावे तो वह महान पुण्य उपार्जन करके ऋद्धि स पन्न देव बनता है ।

आर्द्रकमुनि– आपका यह सिद्धा त स यमी पुरुषों के लिये सर्वथा अयोग्य है । जैन श्रमण एव श्रमणोपासक प्रत्येक कार्य देखभाल कर उपयोग पूर्वक विवेक के साथ करते हक्त । विवेकी पुरुष बालक को तुम्बडा

समझकर काट छा ट कर भी नहीं सकता और जीव त मानव को कोई खोलपिंड समझकर काटे पकावे तो वह पुरुष धर्मी भी नहीं होगा । कि तु अविवेकी, निर्दयी और पापी प्राणी ही ऐसी अज्ञानता कर सकता है । हमारे सिद्धा त अनुसार ऐसे अनार्य वचन बोलना और सुनना भी बोधि बीज का नाशक है । दो हजार स्नातकों को मा स का भोजन कराने वाला तो खून से लिप्त हाथवाला लोक में निंदित होता है । जैन श्रमण तो समस्त जीवों की दया हेतु उद्दिष्ट भक्त(साधु के लिये बनाये हुए) भोजन का त्याग करते हक्त । ४२ दोष टालकर निष्पाप भिक्षा ग्रहण करते हक्त । निर्ग्रंथ धर्म की प्रव्रज्या रूप समाधिमय आचार में उपस्थित मुनि सूक्ष्म-स्थूल स पूर्ण हिंसा का त्याग करता है और इस लोक में भी यश-कीर्ति प्राप्त करता है एव परलोक का आराधक बनता है ।

वेदवादी ब्राह्मण– तत्पश्चात् विचरण करते हुए आर्द्रकमुनि को वेदवादी ब्राह्मण मिले और वे कहने लगे कि हमारे मत अनुसार हमेशा २००० स्नातक ब्राह्मणो को भोजन कराने वाला व्यक्ति महान पुण्योपार्जन करके देव बनता है ।

आर्द्रकमुनि– दयाप्रधान धर्म की निंदा करने वाले और हिंसाप्रधान धर्म की प्रश सा करने वाले एव अनेक पापकार्यों के प्रेरक ऐसे एक भी ब्राह्मण को भोजन कराना आत्मा को अ धकार में पहुँचाना है । अत: देवलोक में जाने की बात योग्य नहीं है । ब्राह्मण जाति में जन्म मात्र से कोई महान नहीं हो जाता है । जो ब्रह्मचर्य अहिंसा आदि धर्मो का आचरण करता है, वह कोई भी जाति का व्यक्ति अपने सुस स्कारो से महान बन सकता है । अत: जाति का अर्थात् ब्राह्मण कुल का मान-अभिमान करना योग्य नहीं है ।

सा ख्यमतवादी– उसके बाद विहार करते हुए आर्द्रकमुनि को सा ख्यमत वाले मिले । वे कहने लगे कि आपका और हमारा धर्म तो आचार से एव आत्म तत्त्व के स्वरूप स्वीकार करने में समान है अर्थात् हमारे मत में आचारशील को ही सच्चा ज्ञानी माना है । आत्मा को हमने भी अरूपी नित्य माना है । चार गति रूप स सार-लोक स्वरूप में भी हमारा और आपका कथन समान है ।

आर्द्रकमुनि– आपके मत में आत्मा को एका त नित्य और सर्वलोक व्यापी मानते हक्त । जिससे आत्मा में सुख-दु:ख जन्ममरण और विविध

योनियों में गमनागमन तथा कर्मब ध वगैरह सिद्ध नहीं हो सकते । केवलज्ञान से पदार्थो को जाने बिना जो कोई धर्म का निरूपण करता है वह सत्य धर्म तत्त्व का प्रकाश नहीं कर सकता । अत: सर्व ज्ञानीयों द्वारा बताये गये धर्म को तथा छद्मस्थो के द्वारा बताये गये धर्म को समान कहना योग्य नहीं है । एव इसी कारण आपके हमारे आचरण में भी अत्यधिक विभिन्नता है । एसे भिन्न धर्मों को एकरूप कहना योग्य नहीं है ।

हस्ति तापस– तत्पश्चात् आर्द्रकमुनि को हस्ति तापस मतावल बी मिले । उन्होंने कहा कि हमारी मान्यता में शेष समस्त जीवों की रक्षा दया के लिये वर्ष भर में मात्र एक हाथी को मार कर उसके मा स से वर्षभर आजीविका करते हक्त ।

आर्द्रकमुनि– आपका यह कथन और मानना असत्य तथा अज्ञानभरा है। क्यों कि एक प चेन्द्रिय विशालकाय हाथी को मारना भी स्वार्थवश क्रूरताभरा व्यवहार होता है । उस में जीव दया अनुक पा का खातमा कर दिया जाता है । उस कलेवर में वर्ष भर स मूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते रहते हक्त । मा स को पकाकर खाने में पृथ्वी पानी अग्नि आदि अन्य अनेक छकाया जीवों की हिंसा तो हो ही जाती है । इस प्रकार अन्य जीवों की दया भी नहीं होती तथा हाथी जैसे प्राणी को मारना तो स्पष्ट ही अनार्यपणा है । साथ ही मा साहार की लोलुपता नरकगति प्राप्त कराने वाली है । ऐसा आपका धर्म अज्ञानभरा एव दुर्गति दायक है । आत्म कल्याण का सच्चा रस्ता नहीं है ।

प्रश्न–६ : उपरोक्त चर्चाओं का सार क्या है ? और अध्ययन का उपस हार क्या है ?

उत्तर– आर्द्रकमुनि जातिस्मरण ज्ञान के कारण शुद्ध वीतराग धर्म में स्थिर बन चुके थे । अ त में भगवान महावीर की सेवा में पहुँचकर अपना आत्मकल्याण कर लिया । अन्यान्य दार्शनिको के अभिप्रायो को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु का उपदिष्ट धर्म ही निर्दोष तथा पूर्ण शुद्ध धर्म है । छद्मस्थो के द्वारा चलाये गये धर्म अपूर्ण एव दोषयुक्त होते हक्त । अत: आत्मकल्याण की अभिलाषा वाले साधकों को अन्य समस्त तर्क वितर्क छोडकर केवली प्ररूपित धर्म को स्वीकार करके अपनी शक्ति अनुसार उसी धर्म में ओतप्रोत रहना

चाहिये । वर्तमान समय में वीतराग धर्म में भी अनेक भेद प्रभेद जो दिखते हक्त उनमें से भी आगमाधार से अनेका तिक अहिंसामूलक सुमेल युक्त मार्ग को स्वीकार कर व्रत-प्रत्याख्यान, त्याग-तप की आराधना में लीन बनकर साधु या श्रावक के ठाणा ग सूत्र कथित तीन मनोरथ को पूर्ण करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये ।

सातवाँ अध्ययन : उदक-पेढालपुत्र

प्रश्न–१ : इस अध्ययन का नाम क्या है तथा उसकी सार्थकता किस प्रकार है ?

उत्तर– इस अध्ययन का नाम **उदक–पेढालपुत्र** है । क्यों कि इस में पार्श्वनाथ भगवान के शासन में दीक्षित निर्ग्रंथ श्री पेढालपुत्र उदकमुनि की गौतमस्वामी गणधर प्रभु के साथ हुई चर्चा का विस्तृत कथन है । यह चर्चा राजगृहीनगरी के नालन्दा नामक उपनगर में हुई थी । इसलिये आगम में इस अध्ययन का नाम **नाल दीय** ऐसा भी कहा गया है ।

प्रश्न–२ : गौतमस्वामी का और उदक मुनि का मिलन कैसे और कहाँ हुआ ?

उत्तर– एकबार भगवान महावीर स्वामी नाल दा उपनगर के ईशान कोण में लेप नामक श्रमणोपासक की शेष द्रव्या नामक प्याऊ के ईशान कोण में आये वनख ड में अर्थात् बगीचे में विराजमान थे । उस समय गणधर गौतम प्रभु उस उद्यान के किसी गृह(कमरे) में विराजमान थे । वहाँ पर उदक मुनि किसी प्रकार की सूचना बिना अचानक आकर उपस्थित हुए । और खडे खडे ही गौतम स्वामी से निवेदन किया कि मुझे कोई विषय में आप से चर्चा सहित समझना है । गौतम स्वामीने कहा कि प्रश्न सुनने के बाद देखा जायेगा ।

प्रश्न–३ : शास्त्र में अपात्र को ज्ञान देने का निषेध है और योग्य विनय नहीं करने वाला भी एक प्रकार का अपात्र है, तो गणधर प्रभु ने उसे इन्कार क्यों नहीं किया ?

उत्तर– पात्रता में विनय व्यवहार के सिवाय अन्य गुण भी विचारणीय होते हक्त । विनय व्यवहार नहीं करने में व्यक्ति का क्या आशय है ?

क्या सिद्धा त है ? क्या समाचारी का हेतु रहा है या अन्य कोई भ्रम आदि है ? इसको अपनी बुद्धिबल से समझना होता है । कभी सच्ची जिज्ञासा भी व्यक्ति को विशेष पात्र साबित कर देती है । इसके उपरा त अपने ज्ञानबल से सामने वाले व्यक्ति के भविष्य स ब धी परिणाम का विचार करके भी व्यवहार किया जाता है । स्वय गौतम स्वामी चार ज्ञान के धारक और चौदह पूर्वी थे । अत: उदक मुनि की पात्रता वे समझते थे। शास्त्रोक्त वचन उपरा त भी व्यवहार कृत्यों में व्यक्ति की विचक्षणता अनुसार अनेक सत्ता–अधिकार स्वत: सिद्ध होते हक्त । जिनशासन में बहुश्रुत विद्वान बुद्धिमान श्रमणों को ऐसे अधिकार हों इसमें कोई स देह नहीं है । इसी कारण गौतमस्वामी को उदकमुनि से चर्चा करने में भगवान महावीर की स्वीकृति भी लेनी आवश्यक नहीं हुई ।

श्री भगवती सूत्र शतक ९ उद्दे.३३ अनुसार स्वय भगवान महावीर स्वामी ने विनय व्यवहार व दन आदि नहीं करके आकर खडे होते ही सीधे प्रश्न खडे करने वाले गा गेय अणगार को अनेक भ ग स ख्यामय प्रश्नों का विस्तृत उत्तर दिया था । वास्तव में उस समय की परिस्थिति ऐसी ही विचित्र बनी हुई थी कि गौशालक ने भी चौवीसवें तीर्थंकर होने का चतुर्विध स घ का माहोल तथा आठ महा प्रतिहार्य, अतिशय आदि बना रखे थे । पार्श्वनाथ भगवान के शासन के साधुओं के समक्ष बडी उलझन खडी हो रही थी कि सच्चा कौन है ? किसे स्वीकार करना या नहीं ? इसी श का की स्थिति के कारण पार्श्वनाथ भगवान के साधु व दन करने का निर्णय नहीं कर पाते थे । उदकमुनि तो अपनी जिज्ञासा का समाधान हेतु ही आये थे फिर भी उक्त उलझन के कारण व दन करने के लिये उनकी आत्मा तत्पर नहीं बन शकी थी । ऐसी परिस्थिति को समझकर ही परम दिलावर स्वय तीर्थंकर प्रभु एव गणधर आदि श्रमण आग तुक का तिरस्कार किये बिना सहज सरलता एव निरभिमानता के साथ जिज्ञासु को समझने का प्रयत्न करते थे । पाठकों को यह उदारता और विचक्षणता समीक्षा करने योग्य है ।

प्रश्न–४ : उदक मुनि ने गौतम स्वामी की स्वीकृति मिलने पर कौन सा प्रश्न किया ?

उत्तर– उदकमुनि का प्रश्न तात्त्विक उलझन युक्त या भ ग जालमय नहीं था कि तु सीधा सरल एव श्रावक जीवन से स ब धित था । सामान्य

प्रश्न होते हुए भी शीघ्र समाधान न मिलने से और उदय कर्म स योग से वह क्लिष्ट बन जाता है एव क्रमश: एकपक्षीय चि तन से आग्रह भरा बन जाता है । श्रावक की स्थूल हिंसा त्याग व्रत में निरपराधी त्रस जीवों की हिंसा का त्याग होता है । उदकमुनि का चि तन ऐसा था कि त्रस जीव की हिंसा के त्याग से वर्तमान में त्रस पर्याय में मौजूद सभी जीवों को मारने का प्रत्याख्यान हो जाता है फिर भले वह जीव स्थावरकाय में भी चला जाय तो भी वह श्रावक उस जीवों की हिंसा नहीं कर सकता और एकेन्द्रिय रूप उस त्रस जीव की जो उस श्रावक से हिंसा होगी तो उसका वह प्रत्याख्यान भ ग हो जाता है । अत: केवल **त्रस जीव की हिंसा का त्याग** ऐसा नहीं बोलकर **त्रसभूत (त्रस अवस्था में रहे हुए) जीवों की हिंसा का त्याग** ऐसा बोलकर प्रत्याख्यान कराना चाहिये ।

समाधान– श्री गौतम स्वामी ने उदकमुनि की उलझन को समझ लिया और वे उसे समझाने लगे कि प्रत्याख्यान के पीछे जो आशय होता है वही उस शब्द से प्रत्याख्यान होता है । अत: त्रस जीवों की हिंसा का त्याग कराने वाले मुनि का एव श्रावक का आशय त्रसनाम कर्म वाले जीवों से ही है । जब उन जीवों के त्रस नामकर्म का उदय नहीं रहेगा स्थावर नामकर्म का उदय होगा, तब उनकी हिंसा का त्याग नहीं रहने से उस स्थावर जीवों की हिंसा से श्रावक का व्रत भ ग नहीं होगा और व्रत कराने वाला भी दुष्प्रत्याख्यान कराने का भागी नहीं होगा । इसी बात को स्पष्ट करते हुए गौतम स्वामी ने दृष्टा त के साथ समझाया कि किसी व्यक्ति को मुनि,श्रमण,सन्यासी की हिंसा करने का त्याग है । यदि उस समय कोई एक मुनि स यम त्याग कर पुन: गृहस्थ बन गया तो फिर उसकी हिंसा का त्याग उस व्यक्ति को नहीं रहेगा और यदि वह गृहस्थ पुन: दीक्षा ग्रहण कर लेता है तो फिर वह व्यक्ति अपने प्रत्याख्यान अनुसार उसकी हिंसा नहीं कर सकेगा । अत: इस प्रत्याख्यान में मुनिभूत ऐसा बोले बिना भी आशय स्पष्ट हो जाता है । वैसे ही **त्रस** के साथ भूत शब्द नहीं बोलने पर भी त्रसनाम कर्म वाले एव त्रस पर्याय में स्थित जो भी जीव हों उनकी हिंसा का त्याग रहेगा । अत: दुष्प्रत्याख्यान होने का कोई कारण नहीं है ।

प्रश्न–५ : उदकमुनि के अन्य और क्या प्रश्न थे ?

उत्तर– अपनी उलझन युक्त अवस्था में उनका यह भी तर्क था कि त्रस में रहे जीव सभी स्थावर काय में चले जायेंगे तो श्रावक व्रत रहित हो जायेगा ?

समाधान– गौतम स्वामीने समझाया कि श्रावक के क्षेत्र सीमा होती है । उसके बाहर त्रस स्थावर सभी जीवों की हिंसा का त्याग होता है । और सीमा के अ दर भी स्थावर जीवों की हिंसा की मर्यादा होती है । अतः श्रावक हिंसा के त्याग रहित कभी नहीं बनता । श्रावक की उम्र स ख्याता वर्ष की ही होती है इतनी सी उम्र में समस्त त्रस जीव स्थावर बन जाय यह भी स भव नहीं है ।

इस प्रकार प्रथम समाधान में समझाया गया कि त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करना दुष्प्रत्याख्यान नहीं है और त्रस के साथ भूत शब्द लगाना आवश्यक नहीं है एव योग्य भी नहीं है । और दूसरे समाधान में समझाया गया है बारह व्रतधारी श्रावक के विविध प्रकार की हिंसा का जो त्याग होता है उसमें त्याग ज्यादा है और आगार कम है दिशाव्रत और देशावकासिक व्रत की अपेक्षा ।

प्रश्न–६ : क्या त्रस जीवों की हिंसा का त्याग कराने में और स्थावर जीवों की छूट रखने से साधु को उन जीवों की हिंसा की अनुमोदना होती है ?

उत्तर– उदकमुनि के इस प्रश्न के समाधान में मूलपाठ में प्रयुक्त **गाथापति चोर विमोक्षण** न्याय का अर्थ विश्लेषण व्याख्याकार ने कथानक द्वारा समझाया है कि कोई गाथापति के छ पुत्रों को किसी अपराध में राजाने फाँसी की सजा घोषित कर दी । गाथापति ने स्वय उपस्थित होकर राजा से अत्यधिक अनुनय विनय करी । राजा नहीं माना । फिर भी उसने अपना प्रयत्न चालू रखा । अ त में राजा ने एक पुत्र को छोडना स्वीकार किया । सेठ ने ज्येष्ठ पुत्र को जीवित बचा लिया । फिर भी सेठ जिस तरह पा च पुत्रों की हिंसा का अनुमोदक नहीं कहलाता है । वैसी ही परिस्थिति से श्रावकों के स्थूल हिंसा का त्याग कराने में अवशेष हिंसा के प्रेरक या अनुमोदक वे श्रमण नहीं बन जाते । श्रावक अपनी शक्ति अनुसार ज्यादा से ज्यादा हिंसा का त्याग करे यही भाव श्रमणों का होता है ।अतः श्रमण ऐसे प्रत्याख्यान कराने पर अपनी श्रमण मर्यादा से च्युत नहीं कहला सकते ।

प्रश्न–७ : गौतम स्वामी की उदारता और परिश्रम का परिणाम क्या हुआ ?

उत्तर– उदक मुनि की सारी समस्या हल हो गई । उन्हें समझ में आ गया कि जो भी प्रत्याख्यान कराने की पद्धति है वह गलत नहीं है । त्रसभूत लगाना जरूरी नहीं है । और श्रावक के गृहस्थ जीवन की परिस्थिति अनुसार मुनि उसे शक्य प्रत्याख्यान आगार सहित करवा सकते हक्त । समाधान हो जाने पर उदक मुनि ने गौतम स्वामी को श्रद्धा पूर्वक व दन व्यवहार किया और भगवान महावीर के शासन में सम्मिलित होने के अर्थात् पुनः दीक्षित होने के भाव व्यक्त किये । तब गौतम स्वामी उस गृह प्रदेश(कमरे) में से निकलकर उदक मुनि को लेकर बगीचे में भगवान की सेवा में पहुँच गये । फिर भगवान महावीर की सेवा में उदकमुनि ने चातुर्याम धर्म से प च महाव्रत रूप धर्म स्वीकार किया एव क्रमशः आत्मकल्याण की साधना में लीन बन गये । इसके बाद में उदकमुनि की गति का वर्णन प्राप्त नहीं है । शक्यता मोक्ष गति की अधिक लगती है ।

इस प्रकार इस अध्ययन की समाप्ति पर १६ अध्ययन युक्त प्रथम श्रुतस्क ध और सात अध्ययन युक्त द्वितीय श्रुतस्क ध यों दोनों मिलकर कुल २३ अध्ययनात्मक शुद्ध आचार एव शुद्ध श्रद्धान का प्रेरक तथा अनेक मतमता तरो का परिचायक यह गणधरकृत द्वितीय अ ग शास्त्र रूप सूत्रकृता ग सूत्र पूर्ण होता है ।

॥ द्वितीय श्रुतस्क ध स पूर्ण ॥

॥ सूत्रकृता ग सूत्र स पूर्ण ॥

॥ जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग–१ स पूर्ण ॥

सौजन्य दाताओं की शुभ नामावली

(१) श्री अक्षयकुमारजी सामसुखा, मु बई
(२) श्री बी.गौतमचन्दजी का करिया
(३) श्री प्रतापमुनि ज्ञानालय, बडीसादडी
(४) श्री केवलचन्दजी जवानमलजी सामसुखा
(५) श्री एल. आशकरणजी गोलेछा, राजना दगाव
(६) श्री पूनमचन्दजी बरडिया, अहमदाबाद
(७) श्री बी. मोहनलालजी अजितमलजी भुरट, बेंगलोर
(८) श्री च पालालजी ता तेड, मद्रास
(९) श्री केवलचंदजी बाबूलालजी कटारिया, प जागुटा
(१०) श्री शा तिलालजी दुग्गड, नासिक
(११) श्री एस. रोशनलालजी जैन (गोलेछा), रायपुर
(१२) श्री मोहनलालजी डागा, पाली मारवाड
(१३) श्री चा दमलजी भ साली, बेंगलोर
(१४) श्रीमती कमलादेवी माणेकचन्द सा. चोपडा, जोधपुर
(१५) श्री ताराचन्दजी स कलेचा, मद्रास
(१६) श्री माणेकचन्दजी जैन, मद्रास
(१७) श्री एल.महावीरचन्दजी जैन रा का, गुडियातम
(१८) श्रीमती निर्मलाबेन नीलमचन्दजी ओस्तवाल, मद्रास
(१९) श्रीमती आशालता बाफणा, धूलिया
(२०) श्री पारसमलजी किशोरकुमारजी सोल की, कोयम्बतूर
(२१) श्री हनव तराजजी डोसी(सा चोर वाले)दिल्ली
(२२) श्री धर्मीचन्दजी मारु, दिल्ली
(२३) श्री जी. सुरेशकुमारजी नाहर, अ कलेश्वर

अग्रिम ग्राहक :-

(१) श्री तिलोकचन्दजी कानूगा, अहमदाबाद
(२) श्री महावीर जैन वाचनालय, झाबुआ
(३) श्री हरखचन्दभाई लालजी सा वला, न्यू बोम्बे
(४) श्री रामरतन जैन ग्र थालय, उज्जैन

(५) श्री एस. एस. जैन सभा, फरीदाबाद
(६) श्री क चन मिश्रीलालजी चोपडा, जलगाँव
(७) श्री आचार्य विनयचन्द ज्ञानभ डार, जयपुर
(८) श्री जैन धार्मिक उपकरण केन्द्र, हैदराबाद
(९) श्री हरखचन्दभाई माडण, मुम्बई
(१०) श्री स्था. जैन श्रावक स घ, धार
(११) श्री केवलमलजी लोढा, जयपुर
(१२) श्री लालचन्दजी बाबूलालजी भटेवरा, धूलिया
(१३) श्री व्या. वा. श्री चन्दनमुनिजी म.सा. नीमचसीटी
(१४) श्री किसनलाल रतनचन्द मुणोत, बीड
(१५) श्री अमोल जैन ज्ञानालय, धुले
(१६) श्रीमती म गला नवीनचन्द्र जैन(बोथरा)म डलेश्वर
(१७) श्री सोहनलाल सियानी ग्र थालय, बेंगलोर
(१८) श्री अमितराय जैन, बडौत(मेरठ)
(१९) श्री प्रेमचन्दजी धूपिया, रायपुर(राज.)
(२०) श्री ऊकचन्दजी बाफणा, गन्टूर
(२१) श्री एस. कन्हैयालाल गोलेछा, मद्रास
(२२) श्री प्रेमसुख सुवालाल छाजेड, पूना
(२३) श्री के. ह सराज गोलेछा, ईरोड
(२४) श्री धर्मीचन्दजी ब ब, व्यावर
(२५) श्री मनोहरलालजी जैन, धार
(२६) श्री अशोककुमारजी सामरा, अमरावती
(२७) श्री एम. मोहनलाल जैन, तिरुवन्नामली
(२८) श्री किशनलाल रूपचन्द कोठारी, जामनेर
(२९) श्री मरुधर केसरी स्था.जैन गुरु सेवा समिति, सोजत
(३०) श्री दुलीचन्दजी जैन, मद्रास
(३१) श्री मोहनलालजी लालचन्दजी चोपडा, नासिकरोड
(३२) श्री शरदचन्द छोटालाल अवलाणी, जुनागढ
(३३) श्री घेवरचन्दजी चम्पालालजी बागरेचा, जोधपुर
(३४) श्री साबदरा एन्ड साबदरा, नासिक
(३५) श्री एच.प्रकाशचन्द खींचा, बेंगलोर

(३६) श्री समरथमलजी सागरमलजी लोढा, महागढ
(३७) श्री शोभा नेमीचन्दजी सा खला, विशाखापटनम
(३८) श्री आदर्श महिला म डल, अहमदनगर
(३९) श्री धर्मीचन्दजी जैन, चित्तूर
(४०) श्री जबरचन्दजी जैन, धमधा
(४१) श्री प्रवीण जैन, सुजालपुर सीटी
(४२) श्री कु वरचन्द जैन एडवोकेट, हनुमानगढ
(४३) श्री कुलव तराय जैन, का धला
(४४) श्री चन्दनबाला स्वाध्याय म डल, पूना
(४५) श्री हनुमानचन्दजी जैन, बेंगलोर
(४६) श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावक स घ, कल ब
(४७) श्री सतीदानजी शा तिलालजी कोठारी, राजना दगाँव
(४८) श्री तिलोकचन्द किशोर चोरडिया, मद्रास
(४९) श्री गणेश टुकमदास गु देचा, बार्शी
(५०) श्री एस.एस. जैन सभा, नारनौल
(५१) श्री भ्राता फूलचन्दजी जैन, लुधियाना
(५२) श्री गणेश जैन पुस्तकालय, जालना
(५३) श्री भ वरलालजी महेन्द्रकुमारजी कोचर, रायपुर
(५४) श्री शा तिलाल नथमल जैन, चालीसगाँव
(५५) श्री कजोडीमल जैन (नेता) खेरली
(५६) श्री महेश नाहटा, नगरी(एम.पी)
(५७) श्री सुशील बहु म डल, जलगाँव (५ सेट)
(५८) श्री जगदीश जैन(श्री सुभद्रमुनि)दिल्ली
(५९) श्री धर्मराजजी सुराणा, भ डारा
(६०) श्री जीतमल न दलाल जैन, बीजापुर(कर्नाटक)
(६१) श्री का तिलाल जैन, दुग्गड(कुर दीवाला)जगदलपुर
(६२) श्री शा तिकुमार जैन, दिल्ली
(६३) श्री आदर्शज्योति धार्मिक एव परमार्थिक ट्रस्ट, इन्दौर
(६४) श्री राजेन्द्र खाबिया, कुशलगढ
(६५) श्री बस त एन्टरप्राईजेज, केसिंगा
(६६) श्री विमलचन्दजी बोल्या, सूरत
(६७) श्री प्रकाशचन्दजी पटवा, हुसूर

बत्रीस आगम सारा श और प्रश्नोत्तर सर्जक
आगम मनीषी मुनि श्री त्रिलोकचन्दजी म.सा. द्वारा स पादित
उपलब्ध साहित्य

क्रम	पुस्तक का नाम	मूल्य
(१)	उत्तराध्ययन सूत्र सारा श	५-००
(२)	दशवैकालिक सूत्र सारा श	५-००
(३)	आचारा ग सूत्र सारा श	५-००
(४)	ठाणा ग सूत्र सारा श	५-००
(५)	समवाया ग सूत्र सारा श	५-००
(६)	भगवती सूत्र सारा श	५०-००
(७)	ज्ञाता सूत्र सारा श	६-००
(८)	उपासकदशा सूत्र सारा श	१०-००
(९)	अ तगड सूत्र सारा श	२०-००
(१०)	राजप्रश्नीय सूत्र सारा श	१०-००
(११)	ऐतिहासिक स वाद	१०-००
(१२)	जीवाभिगम सूत्र सारा श	७-००
(१३)	जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र सारा श	७-००
(१४)	ज्योतिषराज प्रज्ञप्ति सूत्र सारा श	७-००
(१५)	चार छेद सूत्र सारा श(परिशिष्ट युक्त)	५०-००
(१६)	बृहत्कल्प सूत्र सारा श	५-००
(१७)	व्यवहार सूत्र सारा श	५-००
(१८)	उपदेश शास्त्र जैनागम नवनीत	५०-००
(१९)	गुणस्थान स्वरूप	२-००
(२०)	ध्यान स्वरूप	२-००
(२१)	चौद नियम	२-००
(२२)	बार व्रत	२-००
(२३)	संवत्सरी एकता विचारणा	२-००
(२४)	सामायिक सूत्र सरल प्रश्नोत्तर	२-००
(२५)	सामायिक प्रतिक्रमण विशिष्ट प्रश्नोत्तर	२-००

(२६)	सविधि हिन्दी श्रावक प्रतिक्रमण	२-००
(२७)	आगम विपरीत मूर्ति पूजा	२-००
(२८)	श्रमण प्रतिक्रमण हिन्दी	२-००
(२९)	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर-१	१०-००
(३०)	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर-२	१०-००
(३१)	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर-३,४	२०-००
(३२)	चरणाणुयोग संपूर्ण -२ भागों में	१०००-००
(३३)	द्रव्यानुयोग संपूर्ण -३ भागों में	२०००-००
(३४)	त्रीणि छेद सूत्राणि विवेचन सहित	३००-००
(३५)	निशीथ सूत्र विवेचन सहित	३००-००
(३६)	जैनागम प्रश्नोत्तरी (अग्रिम ग्राहक) (दस भागों में संपूर्ण-३२ आगम)	६००-००

ગુજરાતી સાહિત્ય

ક્રમ	પુસ્તકનું નામ	કિંમત
(૧)	જૈનાગમ નવનીત પ્રશ્નોત્તર, ભાગ–૧, ૨	૨૦–૦૦
(૨)	જૈનાગમ નવનીત પ્રશ્નોત્તર, ભાગ–૩,૪	૨૦–૦૦
(૩)	ચૌદનિયમ	૨–૦૦
(૪)	બારવ્રત	૨–૦૦
(૫)	જૈન શ્રમણોની ગોચરી તથા શ્રાવકાચાર	૫–૦૦
(૬)	બત્રીસ આગમોનો ગુજરાતી સારાંશ (૮ ભાગોમાં)	૪૦૦–૦૦
(૭)	બત્રીસ આગમ : ગુજરાતી વિવેચન(૩૫ ભાગોમાં)	૭૦૦૦–૦૦
(૮)	ચરણાનુયોગ સંપૂર્ણ (બે ભાગોમાં)	૧૬૦૦–૦૦
(૯)	જૈનાગમ નવનીત પ્રશ્નોત્તરી(અગ્રિમ ગ્રાહક) (દસ ભાગોમાં–સંપૂર્ણ ૩૨ આગમ)	૬૦૦–૦૦
(૧૦)	વૈજ્ઞાનિક માન્યતા અને જૈનાગમ દષ્ટિ	૨–૦૦

बारहवाँ अध्ययन : समवसरण

सातवाँ अध्ययन

- ०० आत्म चि तन, दृढ स कल्प एव स्वाध्याय सर्वश्रेष्ठ उपचार पद्धति है ।
- ०० दवाईयों एव सौंदर्य प्रसाधनो के नाम पर हिंसा को प्रोत्साहन अनुचित है ।
- ०० खान–पान हमारे स्वस्थ्य को प्रभावित करते हैं ।
- ०० अभय दान सब दानों से श्रेष्ठ दान है ।
- ०० जो प्राण हम दे नहीं सकते, उसको लेने का हमें कोई अधिकार नहीं।
- ०० राग एव द्वेष रोगों के मूल कारण है ।
- ०० स्वाध्याय समस्त दु:खों का मुक्ति प्रदाता है ।
- ०० नम्रता और सरलता दो गुणों में अनेक अवगुण छिप जाते हैं, उनका प्रभाव नष्ट हो जाता है ।
- ०० अह भाव, अक्कडता और खोटी नियत समस्त गुणों को धुमिल कर सकती है ।

अभिमत

जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर पुष्प–१ मिला । पढकर बडी प्रसन्नता हुई । ५–७ प्रश्नों का समाधान आनायास हुआ । प डित प्रवर तिलोकमुनिजी म.सा. वास्तव में ज्ञानी निराभिमानी जैन आगमों के अगाध ज्ञान के भ डार है । ऐसे पूज्य स तरत्नों के चरणों में श्रद्धा से सिर झुक जाता है । पुस्तक भेजी उससे ज्ञान मिला । उसके हम आभारी हैं ।

महासती डो. मधुबालाजी म.स., निम्बोद (म.प्र.)

०० यदि आप कोइ भी स घ स स्था स्थानक के प्रमुख कार्यकर्ता हैं तो उसके लिये ४००/– भेजकर स पूर्ण सेट के अग्रिम ग्राहक बने

०० यदि आप दानवीर स पन्न श्रमणोपासक हैं तो दिल खोलकर इस योजना में भी एक दो पुस्तक का लाभ लें ।

१. ज्ञान प्राप्ति के लिये विनम्रता, श्रद्धा, जिनाज्ञा एव नियमितता आवश्यक है ।

२. जैसा आचरण हम दूसरे से चाहते हैं, वैसा व्यवहार स्वय दूसरों के प्रति रखे ।

३. किसी तथ्य को बिना सोचे समझे स्वीकारना अ धविश्वास है पर तु सत्य को बिना चिन्तन पूर्वाग्रह के कारण नकारना अज्ञानता का द्योतक है ।

४. अज्ञान सभी दु:खों का मूल है ।

कपट, प्रप च, असत्य, भाषण परनिंदा, घम ड, गुस्सा और स्वप्रश सा ये अवगुण जीवन की सफलता में सर्वत्र बाधक तत्त्व है । जीवन को दु:खी बनाने वाले हैं ।

इस जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर प्रकाशन स पादन वितरण की स पूर्ण सेवा व्यवस्था नि: स्वार्थ भाव से करने वाले आध्यात्म प्रेमी बारह व्रतधारी सुश्रावक श्री ललितभाई शेठ है जिसका पूर्ण पता :–
ललितचन्द्र एम। शेठ, श खेश्वर नगर, रतनपर, **पो। जोरावरनगर–३६३०२० जिला : सुरेन्द्रनगर (गुजरात)**

–: योजना :–

५००/– अग्रिम ग्राहक बनकर स पूर्ण सेट की ३२ पुस्तकें प्राप्त करें ।

१०००/–या अधिक उदार सहयोग से सहायक सदस्य बनकर प्रत्येक पुस्तक में नाम एव स पूर्ण सेट प्राप्त करें ।

४००/– स घ या स स्थाओं के लिये स पूर्ण सेट की अग्रिम ग्राहक योजना है ।

* परिश्रमी, नम्र, सरल व्यक्ति सर्वत्र सफल हो सकता है ।
* आलसी, मायावी और अक्कड व्यक्ति कहीं भी सफल नहीं होता है ।

एक समाधान

प्रश्न सभी शास्त्रों के प्रश्नोत्तर की पुस्तकें तैयार होने में कितने वर्ष लगेंगे ?

उत्तर करीब १० वर्ष लगने का अनुमान किया गया है । अर्थात् इ॰ स॰ १९९६ सितम्बर से प्रार भ होकर २००६ तक यह योजना चल सकती है ।